# हमारी हिन्दी पुस्तकें

## गांधीजी

| | |
|---|---|
| गोसेवा | १-८-० |
| दिल्ली-डायरी | ३-०-० |
| खुराककी कमी और खेती | २-८-० |
| राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी | १-८-० |
| वर्णव्यवस्था | १-८-० |
| सत्याग्रह आश्रमका अितिहास | १-४-० |
| आरोग्यकी कुंजी | ०-१०-० |
| रामनाम | ०-१०-० |
| रचनात्मक कार्यक्रम | ०-६-० |
| बापूके पत्र — १ : आश्रमकी बहनोंको | १-४-० |

## अन्य लेखक

| | | |
|---|---|---|
| अेक धर्मयुद्ध (दूसरा संस्करण) | महादेव देसाअी | ०-१२-० |
| महादेवभाअीकी डायरी — भाग १, २ | प्रत्येकका | ५-०-० |
| सरदार पटेलके भाषण | | ५-०-० |
| हिमालयकी यात्रा | काका कालेलकर | २-०-० |
| जीवनका काव्य | ” ” | २-०-० |
| बापूकी झाँकियाँ | ” ” | १-०-० |
| अीशु ख्रिस्त | किशोरलाल मशरूवाला | ०-१४-० |
| जड़मूलसे क्रान्ति | ” | १-८-० |
| जीवनशोधन | ” | ३-०-० |
| सयानी कन्याअें | नरहरि परीख | १-०-० |
| गांधीजी | मुक्ताराम दवे | ०-१२-० |
| हमारी बा | वनमाला परीख, सुशीला नय्यर | २-०-० |
| बापू — मेरी माँ | मनुबहन गांधी | ०-१०-० |
| मधुकुंज (दूसरा संस्करण) | मथुरादास त्रिकमजी | १-४-० |
| ग्रामसेवाके दस कार्यक्रम | जुगतराम दवे | १-४-० |

# सच्ची शिक्षा

मोहनदास करमचंद गांधी

अनुवादक

रामनारायण चौधरी

॥ सा विद्या या विमुक्तये ॥

"शिक्षामें स्वराज्यकी कुंजी है। . . . अिसमें हमारी जीत हुआी तो सब जगह जीत ही जीत समझिये।" — गांधीजी

नवजीवन प्रकाशन मंदिर

अहमदाबाद

मुद्रक और प्रकाशक
जीवणजी डाह्याभाअी देसाअी
नवजीवन मुद्रणालय, कालुपुर, अहमदाबाद

पहली बार : ५०००

दामो रुपये

जुलाअी, १९५०

# प्रकाशकका निवेदन

आज जब भारतकी विधान-सभाने हिन्दीको राष्ट्रभाषा मान्य कर लिया है, तब संपूर्ण गांधी-साहित्यको राष्ट्रभाषामें जनताके सामने रखनेकी हमारी जिम्मेदारी और भी बढ़ जाती है। हम पाठकोंके समक्ष वर्णव्यवस्था, गोसेवा, प्राकृतिक चिकित्सा और रामनाम, खुराककी कमी और खेती, तथा रचनात्मक कार्यक्रम सम्बन्धी गांधीजीके महत्त्वपूर्ण विचार हिन्दीमें रख चुके हैं। अब हमने गांधीजीके शिक्षा सम्बन्धी सर्वथा मौलिक और क्रान्तिकारी विचार राष्ट्रभाषामें देशके समक्ष रखनेका काम हाथमें लिया है।

महात्माजीके ये विचार आज भी अुतने ही नये और ताजे हैं, जितने कि वे पहले थे। भारतके स्वाधीन हो जानेके बादसे शिक्षा कैसी हो, अुसका आदर्श क्या हो, शिक्षाका योग्य माध्यम क्या हो, शिक्षामें अंग्रेजीका क्या स्थान होना चाहिये, धार्मिक शिक्षाको शिक्षण-संस्थाओंमें स्थान दिया जाय या नहीं — वगैरा अनेक प्रश्नों पर देशमें काफी चर्चा चल रही है। आजके अिन अुग्र प्रश्नोंका सही अुत्तर जनता और सरकारोंको अिस पुस्तकमें संग्रह किये गये लेखोंमें मिलेगा। अिसलिअे अिस पुस्तककी अुपयोगिता दुगुनी हो जाती है।

वैसे तो जीवनमात्र गांधीजीकी दृष्टिमें व्यापक शिक्षा ही था। जब १९१५ में वे दक्षिण अफ्रीकासे भारत लौटे, तभीसे वे हमारे देशके अेक समर्थ लोकशिक्षक बन गये थे। अुनके लेखों और भाषणोंमें हर जगह हमें शिक्षाकी झलक मिल ही जाती है। अिस पुस्तकके लेख शिक्षाकी अिस व्यापक व्याख्याके आधार पर नहीं, बल्कि साधारण तौर पर जिसे शिक्षा कहा जाता है, अुसे ध्यानमें रखकर ही चुने गये हैं। पुस्तकको तीन भागोंमें बाँटा गया है। पहले भागमें शिक्षाके आदर्शसे

सम्बन्ध रखनेवाले लेख हैं, दूसरेमें विद्यार्थियोंके प्रश्नोंकी चर्चा करनेवाले लेख दिये गये हैं, और तीसरे भागमें राष्ट्रभाषा प्रचार सम्बन्धी लेख संग्रह किये गये हैं। पुस्तकके अन्तमें विस्तृत सूची भी दी गअी है।

शिक्षाके क्षेत्रमें महात्माजीने देशव्यापी काम भी बहुत बड़े पैमाने पर किया था। हमारे देशकी शिक्षाकी समस्या हल करनेके लिअे अुन्होंने काफी मेहनत अुठाअी थी। अिस विषयसे सम्बन्ध रखनेवाले गांधीजीके लेख 'शिक्षाकी समस्या' नामक पुस्तकमें दिये जायेंगे।

असहयोग आन्दोलनमें केवल खण्डनात्मक ही लगनेवाले काममें से अुन्होंने राष्ट्रीय शिक्षाका सर्जन और अुसके विकासका विचार किया था। और सच्ची शिक्षाकी शोध करनेवाले प्रयोग भी वे पहलेसे ही करते रहे थे। अिन सब राष्ट्रव्यापी प्रयोगोंके फलस्वरूप ही गांधीजी देशकी शिक्षाके लिअे अेक क्रान्तिकारी योजना — वर्धा शिक्षा योजना — हमारे सामने रख सके थे। अिस योजनासे सम्बन्ध रखनेवाले लेख 'बुनियादी शिक्षा' नामक दूसरी पुस्तकमें संग्रह किये गये हैं, जिसे जल्दी ही पाठकोंके हाथमें रखनेकी हम अुम्मीद करते हैं। वर्तमान पुस्तकको पढ़कर गांधीजीकी वर्धा शिक्षा योजनाकी विचार-भूमिका पाठक अच्छी तरह समझ सकेंगे।

आशा है गांधीजीके शिक्षा सम्बन्धी लेखोंका यह हिन्दी संस्करण पाठकोंको पसन्द आयेगा और शिक्षाके महत्त्वपूर्ण विषयमें देशका सही मार्गदर्शन करेगा।

अन्तमें हम अिस पुस्तकका अध्ययन करनेवालों और शिक्षाके प्रश्नमें रस लेनेवालोंके सामने गांधीजीकी यह चेतावनी रखनेकी अिजाजत लेते हैं, जो अुन्होंने अपने हर लेखका अभ्यास करनेवालेको दी है:

"मेरे लेखोंका मेहनतसे अध्ययन करनेवालोंको और अुनमें दिलचस्पी लेनेवालोंको मैं यह कहना चाहता हूँ कि मुझे हमेशा अेक ही रूपमें दिखनेकी परवाह नहीं है। सत्यकी अपनी खोजमें मैंने बहुतसे

विचारोंको छोड़ा है और कअी नअी बातें मैं सीखा भी हूँ । अुमरमें भले में बूढ़ा हो गया हूँ, लेकिन मुझे अैसा नहीं लगता कि मेरा आन्तरिक विकास होना बन्द हो गया है या देह छूटनेके बाद मेरा विकास बन्द हो जायगा । मुझे अेक ही बातकी चिन्ता है, और वह है प्रतिक्षण सत्यनारायणकी वाणीका अनुसरण करनेकी मेरी तत्परता । अिसलिअे जब किसीको मेरे दो लेखोंमें विरोध जैसा लगे, तब अगर अुसे मेरी समझदारीमें विश्वास हो, तो वह अेक ही विषयके दो लेखोंमें से मेरे बादके लेखको प्रमाणभूत माने ।" (हरिजनबन्धु, ३०-४-'३३)

२०-७-'५०

# मेरी मान्यता *

शिक्षाके बारेमें मेरी मान्यता यह है:

## पहला काल

१. लड़कों और लड़कियोंको अेक साथ शिक्षा देनी चाहिये। यह बाल्यावस्था आठ वर्ष तक मानी जाय।

२. अुनका समय मुख्यतः शारीरिक काममें बीतना चाहिये और यह काम भी शिक्षककी देखरेखमें होना चाहिये। शारीरिक कामको शिक्षाका अंग माना जाय।

३. हर लड़के और लड़कीकी रुचिको पहचानकर अुसे काम सौंपना चाहिये।

४. हरअेक काम लेते समय अुसके कारणकी जानकारी करानी चाहिये।

५. लड़का या लड़की समझने लगे, तभीसे अुसे साधारण ज्ञान देना चाहिये। अुसका यह ज्ञान अक्षरज्ञानसे पहले शुरू होना चाहिये।

६. अक्षरज्ञानको सुन्दर लेखनकलाका अंग समझकर पहले बच्चेको भूमितिकी आकृतियाँ खींचना सिखाया जाय; और अुसकी अँगुलियों पर अुसका काबू हो जाय, तब अुसे वर्णमाला लिखना सिखाया जाय। यानी अुसे शुरूसे ही शुद्ध अक्षर लिखना सिखाया जाय।

७. लिखनेसे पहले बच्चा पढ़ना सीखे। यानी अक्षरोंको चित्र समझकर अुन्हें पहचानना सीखे और फिर चित्र खींचे।

८. अिस तरहसे जो बच्चा शिक्षकके मुँहसे ज्ञान पायेगा, वह आठ वर्षके भीतर अपनी शक्तिके अनुसार काफी ज्ञान पा लेगा।

---

* 'सत्याग्रह आश्रमका अितिहास' से

९. बच्चोंको जबरन कुछ न सिखाया जाय।

१०. वे जो सीखें, अुसमें अुन्हें रस आना ही चाहिये।

११. बच्चोंको शिक्षा खेल जैसी लगनी चाहिये। खेल-कूद भी शिक्षाका अंग है।

१२. बच्चोंकी सारी शिक्षा मातृभाषा द्वारा होनी चाहिये।

१३. बच्चोंको हिन्दी-अुर्दूका ज्ञान राष्ट्रभाषाके तौर पर दिया जाय। अुसका आरंभ अक्षरज्ञानसे पहले होना चाहिये।

१४. धार्मिक शिक्षा जरूरी मानी जाय। वह पुस्तक द्वारा नहीं, बल्कि शिक्षकके आचरण और अुसके मुँहसे मिलनी चाहिये।

## दूसरा काल

१५. नौसे सोलह वर्षका दूसरा काल है।

१६. दूसरे कालमें भी अन्त तक लड़के-लड़कियोंकी शिक्षा साथ-साथ हो तो अच्छा है।

१७. दूसरे कालमें हिन्दू बालकको संस्कृतका और मुसलमान बालकको अरबीका ज्ञान मिलना चाहिये।

१८. अिस कालमें भी शारीरिक काम तो चालू ही रहेगा। पढ़ाअी-लिखाअीका समय जरूरतके अनुसार बढ़ाया जाना चाहिये।

१९. अिस कालमें माता-पिताका धन्धा यदि निश्चित हुआ जान पड़े, तो बच्चेको अुसी धन्धेका ज्ञान मिलना चाहिये; और अुसे अिस तरह तैयार किया जाय कि वह अपने बापदादाके धन्धेसे आजीविका चलाना पसन्द करे। यह नियम लड़की पर लागू नहीं होता।

२०. सोलह वर्ष तक लड़के-लड़कियोंको दुनियाके अितिहास और भूगोलका तथा वनस्पतिशास्त्र, ज्योतिष, गणित, भूमिति और बीजगणितका साधारण ज्ञान हो जाना चाहिये।

२१. सोलह वर्षके लड़के-लड़कियोंको सीना-पिरोना और रसोई बनाना आ जाना चाहिये।

## तीसरा काल

२२. सोलहसे पच्चीस वर्षके समयको मैं तीसरा काल मानता हूँ। अुस कालमें प्रत्येक युवक और युवतीको अुसकी अिच्छा और स्थितिके अनुसार शिक्षा मिले।

२३. नौ वर्षके बाद आरंभ होनेवाली शिक्षा स्वावलम्बी होनी चाहिये। यानी विद्यार्थी पढ़ते हुअे अैसे अुद्योगोंमें लगे रहें, जिनकी आमदनीसे शालाका खर्च चले।

२४. शालामें आमदनी तो पहलेसे ही होने लगे। किन्तु शुरूके वर्षोंमें खर्च पूरा होने लायक आमदनी नहीं होगी।

२५. शिक्षकोंको बड़ी-बड़ी तनखाहें नहीं मिल सकतीं, किन्तु वे जीविका चलाने लायक तो होनी ही चाहियें। शिक्षकमें सेवाभावना होनी चाहिये। प्राथमिक शिक्षाके लिअे कैसे भी शिक्षकसे काम चलानेका रिवाज निन्दनीय है। सभी शिक्षक चरित्रवान होने चाहियें।

२६. शिक्षाके लिअे बड़ी और खर्चीली अिमारतोंकी ज़रूरत नहीं है।

२७. अंग्रेजीका अभ्यास भाषाके रूपमें ही हो सकता है और अुसे पाठ्यक्रममें जगह मिलनी चाहिये। जैसे हिन्दी राष्ट्रभाषा है, वैसे ही अंग्रेजीका अुपयोग दूसरे राष्ट्रोंके साथके व्यवहार और व्यापारके लिअे है।

*   *   *

## स्त्री-शिक्षा

२८. स्त्रियोंकी विशेष शिक्षा कैसी और कहाँसे शुरू हो, अिस विषयमें मैंने सोचा और लिखा है, तो भी अिस बारेमें किसी निश्चय पर नहीं पहुँच सका हूँ। यह मेरा दृढ़ मत है कि जितनी सुविधा पुरुषको मिलती है, अुतनी स्त्रीको भी मिलनी चाहिये। और विशेष सुविधाकी ज़रूरत हो, वहाँ विशेष सुविधा भी मिलनी चाहिये।

## प्रौढ़-शिक्षण

२९. प्रौढ़ अुम्रवाले निरक्षर स्त्री-पुरुषोंके लिअे वर्गोंकी जरूरत है ही। किन्तु मैं अैसा नहीं मानता कि अुन्हें अक्षरज्ञान होना ही चाहिये। अुनके लिअे भाषण वगैरा द्वारा साधारण ज्ञान मिलनेकी सुविधा होनी चाहिये; और जिसे अक्षरज्ञान लेनेकी अिच्छा हो, अुसे अुसकी पूरी सुविधा मिलनी चाहिये।

# अनुक्रमणिका



## पहला भाग

### शिक्षाका आदर्श

## दूसरा भाग

### विद्यार्थी-जीवनके प्रश्न



## तीसरा भाग

### राष्ट्रभाषा प्रचार

# सच्ची शिक्षा

भाग पहला

## शिक्षाका आदर्श

## १

# शिक्षा क्या है?

शिक्षा क्या है? अगर अुसका अर्थ केवल अक्षरज्ञान ही हो, तो वह अेक हथियार रूप बन जाती है। अुसका सदुपयोग भी हो सकता है और दुरुपयोग भी हो सकता है। जिस हथियारसे ऑपरेशन करके रोगीको अच्छा किया जाता है, अुसी हथियारसे दूसरोंकी जान भी ली जा सकती है। अक्षरज्ञानके बारेमें भी यही बात है। बहुतसे लोग अुसका दुरुपयोग करते हैं। यह बात ठीक हो तो यह साबित होता है कि अक्षरज्ञानसे दुनियाको लाभके बजाय हानि होती है।

शिक्षाका साधारण अर्थ अक्षरज्ञान ही होता है। लोगोंको लिखना, पढ़ना और हिसाब करना सिखाना, मूल या प्रारंभिक शिक्षा कहलाती है। अेक किसान अीमानदारीसे खेती करके रोटी कमाता है। अुसे दुनियाकी साधारण जानकारी है: माता-पिताके साथ कैसा बरताव करना चाहिये, अपनी पत्नीके साथ कैसा बरताव करना चाहिये, लड़के-बच्चोंके साथ किस तरह रहना चाहिये, जिस गाँवमें वह रहता है वहाँ कैसा बरताव रखना चाहिये — ये सब बातें वह अच्छी तरह जानता है। वह नीति यानी सदाचारके नियम समझता है और पालता है। अुसे अपनी सही करना नहीं आता। अैसे आदमीको आप अक्षरज्ञान किसलिअे देना चाहते हैं? अक्षरज्ञान देकर अुसके सुखमें और क्या बढ़ती करेंगे? क्या अुसकी झोंपड़ी या अुसकी हालतके प्रति अुसमें आपको असन्तोष पैदा करना है? अैसा करना हो तो भी आपको अुसे पढ़ाने-लिखानेकी ज़रूरत नहीं। पश्चिमके तेजसे दबकर हम यह सोचने लगते हैं कि लोगोंको शिक्षा देनी चाहिये, पर अिसमें हम आगे-पीछेका विचार नहीं करते।

अब अूंची शिक्षाको लें। मैंने भूगोलविद्या सीखी। बीजगणित भी मुझे आ गया। भूमितिका ज्ञान हासिल किया। भूगर्भशास्त्रको भी रट डाला। पर अुससे हुआ क्या? मेरा क्या भला हुआ और मेरे आसपासवालोंका मैंने क्या भला किया? अिससे मुझे क्या लाभ हुआ? अंग्रेजोंके ही अेक विद्वान हक्सलेने शिक्षाके बारेमें यह कहा है: ...

"अुस आदमीको सच्ची शिक्षा मिली है, जिसका शरीर अितना सधा हुआ है कि अुसके काबूमें रह सके और आराम व आसानीके साथ अुसका बताया हुआ काम करे। अुस आदमीको सच्ची शिक्षा मिली है, जिसकी बुद्धि शुद्ध है, शान्त है और न्यायदर्शी है। अुस आदमीने सच्ची शिक्षा पाअी है, जिसका मन कुदरतके कानूनोंसे भरा है और जिसकी अिन्द्रियाँ अपने वशमें हैं, जिसकी अन्तरवृत्ति विशुद्ध है और जो आदमी नीच आचरणको धिक्कारता है तथा दूसरोंको अपने जैसा समझता है। अैसा आदमी सचमुच शिक्षा पाया हुआ माना जाता है, क्योंकि वह कुदरतके नियमों पर चलता है। कुदरत अुसका अच्छा अुपयोग करेगी और वह कुदरतका अच्छा अुपयोग करेगा।"

अगर यही सच्ची शिक्षा हो, तो मैं सौगन्द खाकर कह सकता हूँ कि अूपर मैंने जो शास्त्र गिनाये हैं, अुनका अुपयोग मुझे अपने शरीर या अिन्द्रियों पर काबू पानेमें नहीं करना पड़ा। अिस तरह प्राथमिक शिक्षा लीजिये या अूंची शिक्षा लीजिये, किसीका भी अुपयोग मुख्य बातमें नहीं होता; अुससे हम मनुष्य नहीं बनते।

अिससे यह नहीं मान लेना चाहिये कि मैं अक्षरज्ञानका हर हालतमें विरोध करता हूँ। मैं अितना ही कहना चाहता हूँ कि अुस ज्ञानकी हमें मूर्तिपूजा नहीं करनी चाहिये। वह हमारे लिये कोअी कामधेनु नहीं है। वह अपनी जगह शोभा पा सकती है। और वह जगह यह है कि जब मैंने और आपने अिन्द्रियोंको वशमें कर लिया हो और जब हमने नीतिकी नींव मजबूत बना ली हो, तब यदि हमें लिखना-पढ़ना सीखनेकी अिच्छा हो, तो अुसे सीखकर हम अुसका सदुपयोग जरूर कर सकते हैं। वह

गहनेके तौरपर अच्छा लग सकता है। लेकिन यदि अक्षरज्ञानका यह अुपयोग हो, तो हमें अिस तरहकी शिक्षा लाजिमी तौर पर देनेकी ज़रूरत नहीं रह जाती। अुसके लिअे हमारी पुरानी पाठशालाअें काफी हैं। अुनमें सदाचारकी शिक्षाको पहला स्थान दिया गया है। वह प्रारंभिक शिक्षा है। अुसपर जो अिमारत खड़ी की जायगी, वह टिक सकेगी।

'हिन्द स्वराज' से।

## २

# हमारी शिक्षाके महत्त्वके मुद्दे

[ दूसरी गुजरात शिक्षा-परिषदका भाषण * ]

प्यारे भाअियो और बहनो,

अिस परिषदका सभापति बनाकर आप सबने मुझे आभारी बनाया है। मैं जानता हूँ कि अिस पदको सुशोभित करने लायक विद्वत्ता मुझमें नहीं है। मुझे अिस बातका भी खयाल है कि देशसेवाके दूसरे क्षेत्रोंमें मैं जो हिस्सा लेता हूँ, अुससे मुझे अिस पदकी योग्यता नहीं मिल जाती। मेरी योग्यता अेक ही हो सकती है; और वह है गुजराती भाषाके प्रेमकी। मेरी आत्मा गवाही देती है कि गुजरातीके प्रेमकी होड़में पहले दरजेसे कममें मुझे संतोष नहीं हो सकता; और अिसी मान्यताके कारण मैंने यह ज़िम्मेदारीका पद स्वीकार किया है। मुझे आशा है कि जिस अुदार वृत्तिसे आपने मुझे यह पद दिया है, अुसी वृत्तिसे आप मेरे दोषोंको दरगुज़र करेंगे; और आपके और मेरे अिस काममें पूरी मदद देंगे।

यह परिषद अभी अेक बरसकी बच्ची है। जैसे पूतके पाँव पालनेमें दिखाअी देते हैं, वैसे ही अिस बालकके बारेमें भी मालूम

---

* यह भाषण १९१७ में भड़ौंचमें हुअी दूसरी गुजरात शिक्षा-परिषदके अध्यक्षपदसे दिया गया था।

होता है। पिछले सालके कामकी रिपोर्ट मैंने पढ़ी है। वह किसी भी संस्थाको शोभा देनेवाली है। मंत्रियोंने समय पर परिषदकी कामकी रिपोर्ट छपवाकर बधाओीका काम किया है। यह हमारा सौभाग्य है कि हमें अैसे मंत्री मिले हैं। जिन्होंने यह रिपोर्ट न पढ़ी हो, अुन्हें अिसे पढ़ने और अिस पर मनन करनेकी मैं सिफ़ारिश करता हूँ।

श्री रणजीतराम वावाभाओीको पिछले साल यमराजने अुठा लिया, जिससे हमारा बड़ा नुकसान हुआ है। अुनके जैसा पढ़ा-लिखा आदमी जवानीमें चल बसा, यह शोचनीय और विचारणीय बात है। भगवान अुनकी आत्माको शान्ति प्रदान करे और अुनके कुटुम्बको अिस बातसे सान्त्वना मिले कि हम सब अुनके दुःखमें भागीदार हैं।

जिस संस्थाने यह परिषद की है, अुसने तीन अुद्देश्य अपने सामने रखे हैं :

१. शिक्षाके प्रश्नोंके बारेमें लोकमत तैयार करना और ज़ाहिर करना।

२. गुजरातमें शिक्षाके प्रश्नोंके बारेमें सदा हलचल करते रहना।

३. गुजरातमें शिक्षाके व्यावहारिक काम करना।

अिन तीनों अुद्देश्योंके बारेमें अपनी बुद्धिके अनुसार मैंने जो विचार किया है और राय कायम की है, अुसे यहाँ पेश करनेकी कोशिश करूँगा।

यह सबको साफ़ समझ लेना चाहिये कि शिक्षाके माध्यमका विचार करके निश्चय करना अिस दिशामें हमारा पहला काम है। अिसके बिना और सब कोशिशें लगभग बेकार साबित हो सकती हैं। शिक्षाके माध्यमका विचार किये बिना शिक्षा देते रहनेका नतीजा नींवके बिना अिमारत खड़ी करनेकी कोशिश जैसा होगा।

अिस बारेमें दो पक्ष पाये जाते हैं। अेक पक्ष कहता है कि शिक्षा मातृभाषा (गुजराती) के ज़रिये दी जानी चाहिये। दूसरा पक्ष कहता है कि यह अंग्रेज़ीके द्वारा दी जानी चाहिये। दोनों पक्षोंके हेतु पवित्र हैं। दोनों देशका भला चाहते हैं। लेकिन पवित्र हेतु ही काफ़ी

सिद्धिके लिओ काफी नहीं होते । दुनियाका यह अनुभव है कि पवित्र हेतु कओी बार अपवित्र जगह ले जाते हैं । अिसलिओ हमें दोनों मतोंके गुण-दोषोंकी जाँच करके, संभव हो तो अेकमत होकर, अिस बड़े प्रश्नको हल करना चाहिये । अिसमें कोअी शक नहीं कि यह प्रश्न महान है । अिसलिओ अुसके बारेमें जितना विचार किया जाय अुतना ही थोड़ा है ।

यह प्रश्न सारे भारतका है । पर हरअेक प्रान्त भी स्वतंत्र रूपसे अपने लिओ निश्चय कर सकता है । अैसी कोअी बात नहीं कि भारतके सारे भाग अेकमत न हो जायँ, तब तक अकेला गुजरात आगे कदम नहीं बढ़ा सकता ।

फिर भी दूसरे प्रान्तोंमें अिस बारेमें क्या हलचल हुअी है, अिसकी जाँच करनेसे हम कुछ मुश्किलें हल कर सकते हैं । बंगभंगके समय जब स्वदेशीका जोश अुमड़ रहा था, तब बंगालमें बंगलाके जरिये शिक्षा देनेकी कोशिश हुअी । राष्ट्रीय पाठशाला भी खुली । रुपयोंकी वर्षा हुअी । पर यह प्रयोग बेकार गया । मेरी यह नम्र राय है कि व्यवस्थापकोंको अपने प्रयोगके बारेमें श्रद्धा नहीं थी । वैसी ही दयाजनक स्थिति शिक्षकोंकी भी थी । बंगालमें शिक्षित लोगोंको अंग्रेज़ीका बड़ा मोह है । अैसा सुझाया गया है कि बंगला साहित्य जो बढ़ा है, अुसका कारण बंगालियोंका अंग्रेज़ी भाषा परका क़ाबू है । लेकिन हक़ीक़त अिस दलीलका खंडन करती है । सर रवीन्द्रनाथ टैगोरकी चमत्कारिक बंगला अुनकी अंग्रेजीकी ऋणी नहीं है । अुनके चमत्कारके पीछे अुनका स्वभाषाका अभिमान है । गीतांजलि पहले बंगला भाषामें ही लिखी गअी । यह महाकवि बंगालमें बंगलाका ही अुपयोग करते हैं । अुन्होंने हालमें भारतकी आजकी हालत पर कलकत्तेमें जो भाषण दिया था, वह बंगला भाषामें दिया था । बंगालके प्रमुख स्त्री-पुरुष अुसे सुनने गये थे । सुननेवालोंने मुझे कहा है कि डेढ़ घंटे तक अुन्होंने श्रोताओंको लावण्यकी धारासे मंत्रमुग्ध कर रखा था । अुन्होंने अपने विचार अंग्रेज़ी साहित्यसे नहीं लिये । वे कहते हैं कि मैंने ये विचार अिस देशके वातावरणसे

भाषाअें अधूरी हैं। भाषा मनुष्यकी बुद्धिके सहारे चलती है, अिसलिअे जब किसी विषय तक बुद्धि नहीं पहुँचती, तब भाषा अधूरी होती है। भाषाका साधारण नियम यह है कि लोगोंके मनमें जैसे विचार भरे होते हैं, वैसे ही अुनकी भाषामें बोले जाते हैं। लोग समझदार होंगे, तो अुनकी बोली भी समझदारी से भरी होगी; लोग मूढ़ होंगे, तो अुनकी बोली भी वैसी ही होगी। अंग्रेजीमें कहावत है कि मूर्ख बढ़अी अपने औजारोंको दोष देता है। भाषाकी कमी बतानेवाले कभी-कभी अैसे ही होते हैं। जिस विद्यार्थीको अंग्रेजी भाषा और अुसके साथमें अंग्रेजी विद्याका थोड़ा ज्ञान हो गया है, अुसे गुजराती भाषा अधूरी-सी लगती है, क्योंकि अंग्रेजीसे अनुवाद करना मुश्किल होता है। अिसमें दोष भाषाका नहीं, लोगोंका है। चूँकि नया शब्द, नया विषय या भाषाकी कोअी नअी शैली अुपयोग करने पर अुसे विवेकके साथ समझ लेनेका अभ्यास लोगोंको नहीं होता, अिसलिअे बोलनेवाला रुक जाता है, क्योंकि 'अंधेके आगे रोये तो अपने भी नैन खोये'। और जब तक लोग भला-बुरा, नया-पुराना परख कर अुसकी कीमत नहीं लगा सकते, तब तक लिखनेवालेका विवेक कैसे प्रफुल्लित हो सकता है?

"अंग्रेजीसे अनुवाद करनेवालोंमें कोअी-कोअी अैसा समझते दीखते हैं कि हमने गुजराती भाषाका ज्ञान तो माँके दूधके साथ पीया है और अंग्रेजी सीखी है, अिसलिअे साक्षात् द्विभाषी बन गये हैं। गुजरातीका अध्ययन किसलिअे करें! लेकिन परभाषाका ज्ञान प्राप्त करनेमें जो श्रम किया जाता है, अुससे स्वभाषामें प्रवीणता प्राप्त करनेका अभ्यास ज्यादा महत्व रखता है। शामळ आदि गुजराती कवियोंके ग्रंथ देखिये। अुनमें जगह-जगह अभ्यासका सबूत मिलता है। मनसे प्रयत्न करनेके पहले गुजराती कच्ची दीखेगी, परन्तु बादमें सचमुच पक्की जान पड़ेगी। प्रयत्न करनेवाला अधूरा होगा, तो अुसकी भाषा भी अधूरी होगी; पर अुपयोग करनेवालेका प्रयत्न पूरा होगा, तो गुजराती भी पूरी होगी। अितना ही नहीं, मजी तुअी भी दिखाअी देगी।

गुजराती आर्य कुलकी, संस्कृतकी बेटी और बहुत ही अुत्कृष्ट भाषाओंकी सगी ठहरी! अुसे कोअी कैसे नीच बता सकता है?

"परमात्मा अिसे आशीर्वाद दे। अनन्तकाल तक अिस भाषा द्वारा सद्विद्या, सद्ज्ञान और सद्धर्मका प्रचार हो। और कर्ता, माता, शोधक प्रभु सदा अिसका गुणगान सुनावें।"

अिस तरह हम देखते हैं कि बंगालमें बंगलाके जरिये सारी शिक्षा देनेकी हलचल जो असफल रही, अुसका कारण भाषाकी कमी या प्रयत्नकी अयोग्यता नहीं। कमीके बारेमें हम विचार कर चुके। बंगलाके प्रयत्नसे अयोग्यता सिद्ध नहीं होती। प्रयत्न करनेवालोंकी अयोग्यता या अश्रद्धा भले ही कहिये।

अुत्तरमें हिन्दी भाषाका विकास जरूर हो रहा है, फिर भी हिन्दी भाषाको शिक्षाका माध्यम बनानेका लगातार प्रयत्न सिर्फ आर्य-समाजियोंने ही किया मालूम होता है। गुरुकुलोंमें यह प्रयास जारी है।

मद्रासमें देशी भाषाओंके जरिये शिक्षा देनेकी हलचल थोड़े ही बरसोंसे शुरू हुअी है। तामिलोंसे तेलगू लोग ज्यादा जाग्रत हैं। सुशिक्षित तामिलों पर अंग्रेज़ीका अितना ज्यादा असर हो गया है कि अुनमें तामिल भाषासे अपना काम चला लेनेका अुत्साह ही नहीं रहा। तेलगू भागमें अंग्रेज़ी शिक्षा अितनी नहीं फैली है। अिसलिअे लोग मातृभाषाका अुपयोग ज्यादा कर रहे हैं। तेलगू भागमें सिर्फ तेलगूके जरिये शिक्षा देनेका प्रयोग ही नहीं हो रहा है, बल्कि तेलगू भाअियोंने भारतके भाषावार हिस्से करनेका आन्दोलन भी शुरू किया है। अिस विचारका प्रचार थोड़े ही समयसे शुरू हुआ है। फिर भी अुनका प्रयत्न अितना बहादुरी भरा है कि थोड़े दिनोंमें हम अुस पर अमल होता देखेंगे। अुनके काममें कठिनाअियाँ बहुत हैं, पर अुन्हें दूर करनेकी अुनमें शक्ति है, अैसी छाप अुनके नेताओंने मुझ पर डाली है।

महाराष्ट्रमें भी यह प्रयत्न हो रहा है। साधुचरित प्रोफेसर कर्वे अिस प्रयत्नके हिमायती हैं। भाअी नायकका भी यही दृष्टिकोण है।

खानगी पाठशालाअें अिस काममें लगी हुअी हैं। प्रोफेसर बीजापुरकरने बड़ी तकलीफें अुठा कर अपने साहसको फिरसे ताजा किया है और थोड़े समयमें हम अुनकी पाठशाला क़ायम हुअी देखेंगे। अुन्होंने पाठ्य-पुस्तकें लिखनेकी योजना बनाअी थी। कुछ पुस्तकें छप गअी हैं और कुछ लिखी हुअी तैयार हैं। अुस पाठशालाके शिक्षकोंने कभी अश्रद्धा नहीं दिखाअी। अगर दुर्भाग्यसे अुनका स्कूल बंद न हुआ होता, तो आज यह प्रश्न रहता ही नहीं कि मराठीके जरिये अूँचीसे अूँची शिक्षा दी जा सकती है या नहीं।

गुजरातमें मातृभाषाके जरिये शिक्षा देनेकी हलचल शुरू हो गअी है। अिस बारेमें हम रा० ब० हरगोविन्ददास कांटावालाके लेखोंसे जान सकते हैं। प्रो० गज्जर और स्व० दी० ब० मणिभाअी जसभाअी अिस विचारके नेता माने जा सकते हैं। यह विचार करना हमारा काम है कि अिन लोगोंके बोये हुअे बीजका पालन-पोषण करना चाहिये या नहीं। मुझे तो लगता है कि अिसमें जितनी देर हो रही है, अुतना ही हमारा नुक़सान हो रहा है।

**अंग्रेज़ी द्वारा शिक्षा** पानेमें कमसे कम सोलह वर्ष लगते हैं। वे ही विषय मातृभाषा द्वारा पढ़ाये जायँ, तो ज्यादासे ज्यादा दस वर्ष लगेंगे। यह राय बहुतसे प्रौढ़ शिक्षकोंने प्रकट की है। हजारों विद्यार्थियोंके छः वर्ष बचनेका अर्थ यह होता है कि अुतने हजार वर्ष जनताको मिल गये।

विदेशी भाषा द्वारा शिक्षा पानेमें जो बोझा दिमाग पर पड़ता है, वह असह्य है। यह बोझा हमारे ही बच्चे अुठा सकते हैं, लेकिन अुसकी कीमत अुन्हें चुकानी ही पड़ती है। वे दूसरा बोझा अुठानेके लायक नहीं रह जाते। अिससे हमारे ग्रेज्युअेट अधिकतर निकम्मे, कमजोर, निरुत्साही, रोगी और कोरे नकलची बन जाते हैं। अुनमें खोजकी शक्ति, विचार करनेकी ताकत, साहस, धीरज, बहादुरी, निडरता आदि गुण बहुत क्षीण हो जाते हैं। अिससे हम नअी योजनाअें नहीं बना सकते। बनाते हैं तो अुन्हें पूरी नहीं कर सकते। कुछ लोग, जिनमें अुपरोक्त

गुण दिखाअी देते हैं, अकाल मृत्युके शिकार हो जाते हैं। अेक अंग्रेज़ने लिखा है कि असल लेख और स्याहीसोख कागज़के अक्षरोंमें जो भेद है, वही भेद युरोप और युरोपके बाहरकी जनतामें है। अिस विचारमें जितनी सचाअी होगी, वह कोअी अेशियाके लोगोंकी स्वाभाविक अयोग्यताके कारण नहीं है। अिस नतीजेका कारण शिक्षाके माध्यमकी अयोग्यता ही है। दक्षिण अफ्रीकाकी सीदी जनता साहसी, शरीरसे कद्दावर और चारित्र्यवान है। बाल-विवाह आदि जो दोष हममें हैं, वे अुनमें नहीं हैं। फिर भी अुनकी दशा वैसी ही है जैसी हमारी है। अुनकी शिक्षाका माध्यम डच भाषा है। वे भी हमारी तरह डच भाषा पर फौरन क़ाबू पा लेते हैं और हमारी ही तरह वे भी शिक्षाके अंतमें कमजोर बनते हैं, बहुत हद तक कोरे नकलची निकलते हैं। असली चीज़ अुनमें भी मातृभाषाके साथ गायब हुअी दीखती है। अंग्रेज़ी शिक्षा पाये हुअे हम लोग ही अिस नुक़सानका अन्दाज़ नहीं लगा सकते। यदि हम यह अन्दाज़ लगा सकें कि सामान्य लोगों पर हमने कितना कम असर डाला है, तो कुछ खयाल हो सकता है। हमारे मातापिता जो हमारी शिक्षाके बारेमें कभी-कभी कुछ कह बैठते हैं, वह विचारने लायक होता है। हम बोस और रॉयको देखकर मोहांध हो अुठते हैं। मुझे विश्वास है कि हमने ५० वर्ष तक मातृभाषा द्वारा शिक्षा पाअी होती, तो हममें अितने बोस और रॉय होते कि अुनके अस्तित्वसे हमें अचंभा न होता।

यदि हम यह विचार अेक तरफ रख दें कि जापानका अुत्साह जिस ओर जा रहा है वह ठीक है या नहीं, तो हमें जापानका साहस स्तब्ध करनेवाला मालूम होगा। अुन्होंने मातृभाषा द्वारा जन-जाग्रति की है, अिसीलिअे अुनके हर काममें नयापन दिखाअी देता है। वे शिक्षकोंको सिखानेवाले बन गये हैं। अुन्होंने स्याहीसोख कागज़की अुपमा गलत साबित कर दी है। जनताका जीवन शिक्षाके कारण अुमंगें मार रहा है और दुनिया जापानका काम अचरजभरी आँखोंसे देख रही है। विदेशी भाषा द्वारा शिक्षा पानेकी पद्धतिसे अपार हानि होती है।

माँके दूधके साथ जो संस्कार मिलते हैं और जो मीठे शब्द सुनाअी देते हैं, अुनके और पाठशालाके बीच जो मेल होना चाहिये, वह विदेशी भाषा द्वारा शिक्षा लेनेसे टूट जाता है। अिसे तोड़नेवालोंका हेतु पवित्र हो, तो भी वे जनताके दुश्मन हैं। हम अैसी शिक्षाके शिकार होकर मातृद्रोह करते हैं। विदेशी भाषा द्वारा मिलनेवाली शिक्षाकी हानि यहीं नहीं रुकती। शिक्षित वर्ग और सामान्य जनताके बीचमें भेद पड़ गया है। हम सामान्य जनताको नहीं पहचानते। सामान्य जनता हमें नहीं जानती। हमें तो वह साहब समझ बैठती है और हमसे डरती है; वह हम पर भरोसा नहीं करती। यदि बहुत दिन यही स्थिति रही, तो लॉर्ड कर्जनका यह आरोप सही होनेका समय आ जायगा कि *शिक्षित वर्ग सामान्य जनताके प्रतिनिधि नहीं हैं।*

सौभाग्यसे शिक्षित वर्ग अपनी मूर्च्छासे जागते दिखाअी दे रहे हैं। आम लोगोंके साथ मिलते समय अुन्हें अूपर बताये हुअे दोष स्वयं दिखाअी देते हैं। अुनमें जो जोश है वह जनताको कैसे दिया जाय? अंग्रेजीसे तो यह काम हो नहीं सकता। गुजराती द्वारा देनेकी शक्ति नहीं है या बहुत थोड़ी है। अपने विचार मातृभाषामें जनताके सामने रखनेमें बड़ी कठिनाअी होती है। अैसी-अैसी बातें मैं हमेशा सुनता हूँ। यह रुकावट पैदा हो जानेसे प्रजा-जीवनका प्रवाह रुक गया है। अंग्रेजी शिक्षा देनेमें मैकॉलेका हेतु शुद्ध था। अुसके मनमें हमारे साहित्यके प्रति तिरस्कार था। अुस तिरस्कारकी छूत हमें भी लग गअी। हम अपनेको भूल गये। 'गुरु गुड़, चेला शकर' वाली हालत हमारी हो गअी। मैकॉलेका यह अुद्देश्य था कि हम पश्चिमी सभ्यताका जनतामें प्रचार करनेवाले बन जायँ। अुसकी कल्पना यह थी कि हममेंसे कुछ लोग अंग्रेजी सीखकर, अपने चारित्र्यमें वृद्धि करके जनताको नये विचार देंगे। वे देने लायक थे या नहीं, अिस बातका विचार करना यहाँ अप्रासंगिक होगा। हमें तो सिर्फ शिक्षाके माध्यमका ही विचार करना है। हमने अंग्रेजी शिक्षामें धनप्राप्ति देखी, अिसलिअे अुसके अुपयोगको हमने

प्रधान पद दिया। कुछ लोगोंमें अपने देशका अभिमान पैदा हुआ। अिस तरह मूल विचार गौण रहा और अंग्रेज़ी भाषाका प्रचार मैकॉलेकी धारणासे भी बढ़ गया। अिससे हम घाटेमें ही रहे।

हमारे हाथमें सत्ता होती, तो हम अिस दोषको तुरन्त देख लेते। हम मातृभाषाको आजकी तरह छोड़ते नहीं। सरकारी नौकरोंने अुसे नहीं छोड़ा। बहुतोंको शायद मालूम नहीं होगा कि हमारी अदालती भाषा गुजराती मानी जाती है। सरकार कानून गुजरातीमें भी बनवाती है। दरबारोंमें पढ़े जानेवाले भाषणोंका गुजराती अनुवाद अुसी समय पढ़ा जाता है। हम देखते हैं कि चलनके नोटोंमें अंग्रेज़ीके साथ गुजराती आदिका भी अुपयोग किया जाता है। जमीनकी पैमािअश करनेवालेको जो गणित वगैरा विषय सीखने पड़ते हैं, वे कठिन होते हैं। पर यह काम अंग्रेज़ीमें होता, तो माल-महकमेका काम बहुत खर्चीला हो जाता। अिसलिअे पैमािअशवालोंके लिअे परिभाषािअें बनाअी गअी हैं। वे शब्द हममें आनन्द और आश्चर्य पैदा करनेवाले हैं। हममें भाषाके लिअे सच्चा प्रेम हो, तो हमारे पास जो साधन हैं अुनका हम आज भी अुपयोग कर सकते हैं। वकील अपना काम गुजराती भाषामें करने लग जायँ, तो मुवक्किलोंका बहुतसा रुपया बच जाय, मुवक्किलोंको कानूनकी ज़रूरी शिक्षा मिले और वे अपने हक़ समझने लगें। दुभाषियेका खर्च बचे। भाषामें कानूनी शब्दोंका प्रचार हो। अिसमें वकीलोंको थोड़ा प्रयत्न ज़रूर करना पड़ेगा। मुझे विश्वास है, मेरा अनुभव है कि अिससे अुनके मुवक्किलोंको नुक़सान नहीं पहुँचेगा। यह डर रखनेका जरा भी कारण नहीं कि गुजरातीमें दी हुअी दलीलका असर कम पड़ेगा। हमारे कलेक्टरों वगैराके लिअे गुजराती जानना अनिवार्य है। परन्तु हमारे अंग्रेज़ीके झूठे मोहके कारण हम अुनके ज्ञानको ज़ंग चढ़ाते हैं।

अैसी शंका की गअी है कि रुपया कमाने और स्वदेशाभिमानके लिअे अंग्रेज़ीका जो अुपयोग हुआ, अुसमें कोअी दोष नहीं था। यह

शंका शिक्षाके माध्यमका विचार करते समय सच्ची नहीं मालूम होती। रुपया कमाने या देशकी भलाओके लिओ कुछ लोग अंग्रेज़ी सीखें, तो हम अुन्हें सादर प्रणाम करेंगे। परन्तु अिस परसे अंग्रेज़ी भाषाको शिक्षाका माध्यम तो नहीं कर सकते। यहाँ सिर्फ़ यही बताना है कि अूपरकी दो घटनाओंके कारण अंग्रेज़ी भाषाने माध्यमके रूपमें भारतमें जो घर कर लिया, वह अुसका दुःखद परिणाम हुआ है। कोओ कहते हैं कि अंग्रेज़ी जाननेवाले ही देशभक्त हुओ हैं। परन्तु थोड़े महीनोंसे हम दूसरी ही बात देख रहे हैं। फिर भी अंग्रेज़ीका यह दावा मानते हुओ अितना कहा जा सकता है कि औरोंको अंग्रेज़ी शिक्षा पानेका मौका ही नहीं मिला। अंग्रेज़ी स्वदेशाभिमान आम जनता पर असर नहीं डाल सका। सच्चा स्वदेशाभिमान व्यापक होना चाहिये। यह गुण अिसमें नहीं पाया गया।

जैसा कहा गया है कि अूपरकी दलीलें चाहे जैसी हों, फिर भी आज वे अव्यावहारिक हैं। "अंग्रेज़ीकी खातिर दूसरे विषयोंकी कुछ भी हानि हो, तो यह दुःखकी बात है। अंग्रेज़ी पर काबू पानेमें ही हमारा अधिकतर मानसिक बल खर्च हो जाय, तो यह बहुत बुरी बात है। परन्तु अंग्रेज़ीके सम्बन्धमें हमारी जो स्थिति है, अुसे ध्यानमें रखते हुओ मेरा यह नम्र मत है कि अिस नतीजेको राह कर ही रास्ता निकालनेके सिवाय और कोओ अुपाय नहीं है।" यह बात किसी ऐसे वैसे लेखककी कही हुओ नहीं है। ये वचन गुजरातके शिक्षित वर्गमें पहली पंक्तिमें बैठनेवालेके हैं, स्वभाषा-प्रेमीके हैं। आचार्य आनन्दशंकर ध्रुव जो कुछ लिखते हैं, अुस पर हम विचार किये बिना नहीं रह सकते। अुन्होंने जो अनुभव प्राप्त किया है, वह बहुत थोड़ोंके पास है। अुन्होंने साहित्यकी और शिक्षाकी बहुत बड़ी सेवा की है। अुन्हें सलाह देने और टीका करनेका पूरा अधिकार है। अैसी स्थितिमें मेरे जैसेको बहुत सोचना पड़ता है। फिर, ये विचार अकेले आनन्दशंकर भाओके ही नहीं हैं। अुन्होंने मीठी भाषामें अंग्रेज़ी भाषाके हिमायतियोंके विचार

रखे हैं। अुन विचारोंका आदर करना हमारा फर्ज़ है। अिसके अलावा, मेरी स्थिति कुछ विचित्र-सी है। अुनकी सलाहसे, अुनकी निगरानीमें मैं राष्ट्रीय शिक्षाका प्रयोग कर रहा हूँ। वहाँ मातृभाषामें ही शिक्षा दी जाती है। जहाँ अितना पासका सम्बन्ध हो, वहाँ टीकाके रूपमें कुछ भी लिखते समय मैं हिचकिचाता हूँ। सौभाग्यसे आचार्य ध्रुवने अंग्रेज़ी भाषा और मातृभाषा द्वारा दी जानेवाली शिक्षा, दोनोंको प्रयोगके रूपमें देखा है। दोनोंमें से अेकके बारेमें भी अुन्होंने पक्की राय नहीं दी। अिसलिअे अुनके विचारोंके विरुद्ध कुछ कहनेमें मुझे कम संकोच होता है।

अंग्रेज़ीके सम्बन्धमें हम अपनी स्थिति पर ज़रूरतसे ज्यादा ज़ोर देते हैं। यह बात मेरे ध्यानसे बाहर नहीं है कि अिस परिषदमें अिस विषय पर पूरी आज़ादीके साथ चर्चा नहीं हो सकती। जो राजनीतिक मामलोंमें नहीं पड़ सकते, अुनके लिअे भी अितना विचारना या कहना अनुचित नहीं कि अंग्रेज़ी राज्यका सम्बन्ध केवल भारतकी भलाअीके लिअे है। और किसी कल्पनासे अिस सम्बन्धका बचाव नहीं किया जा सकता। अेक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र पर राज्य करे, यह विचार दोनोंके लिअे असह्य है, बुरा है और दोनोंको नुक़सान पहुँचानेवाला है। यह बात अंग्रेज़ अधिकारियोंने भी मानी है। जहाँ परोपकारकी दृष्टिसे विवाद हो रहा हो, वहाँ यह बात सिद्धान्तके रूपमें मानी जाती है। अैसा होनेके कारण राज्य करनेवालों और प्रजा दोनोंको यदि यह साबित हो जाय कि अंग्रेज़ी द्वारा शिक्षा देनेसे जनताकी मानसिक शक्ति नष्ट होती है, तो अेक पलके लिअे भी ठहरे बिना शिक्षाका माध्यम बदल देना चाहिये। अैसा करनेमें जो जो रुकावटें हों, अुन्हें दूर करनेमें ही हमारा पुरुषार्थ है। यदि यह विचार मान लिया जाय, तो आचार्य ध्रुवकी तरह मानसिक बलकी हानि स्वीकार करनेवालोंको दूसरी दलील देनेकी ज़रूरत नहीं रह जाती।

मैं यह विचार करनेकी ज़रूरत नहीं मानता कि मातृभाषा द्वारा शिक्षा देनेसे अंग्रेज़ी भाषाके ज्ञानको धक्का पहुँचेगा। सभी पढ़े-लिखे हिन्दुस्तानियोंको अिस भाषा पर प्रभुत्व पानेकी ज़रूरत नहीं। अितना ही

नहीं, मेरी तो यह भी नम्र मान्यता है कि यह प्रभुत्व प्राप्त करनेकी रुचि पैदा करना भी ज़रूरी नहीं है।

कुछ भारतीयोंको अंग्रेज़ी ज़रूर सीखनी पड़ेगी। आचार्य ध्रुवने केवल ऊँची दृष्टिसे ही अिस प्रश्न पर सोचा है। परन्तु हम सब दृष्टियोंसे सोचने पर देख सकेंगे कि दो वर्गोंको अंग्रेज़ीकी ज़रूरत रहेगी :

१. स्वदेशाभिमानी लोग, जिनमें भाषा सीखनेकी अधिक शक्ति है, जिनके पास समय है, जो अंग्रेज़ी साहित्यमें से शोध करके अुसके परिणाम जनताके सामने रखना चाहते हैं या राज्य करनेवालोंके साथके सम्बन्धमें अुसका अुपयोग करना चाहते हैं; और

२. वे लोग जो अंग्रेज़ीके ज्ञानका रुपया कमानेके काममें अुपयोग करना चाहते हैं।

अिन दोनोंके लिअे अंग्रेज़ीको अेक वैकल्पिक विषय मानकर अिस भाषाका अच्छेसे अच्छा ज्ञान देनेमें कोअी हर्ज़ नहीं। अितना ही नहीं, अुनके लिअे अिसकी सुविधा कर देना भी ज़रूरी है। पढ़ाअीके अिस क्रममें शिक्षाका माध्यम तो मातृभाषा ही रहेगी। आचार्य ध्रुवको डर है कि हम यदि अंग्रेज़ी द्वारा सारी शिक्षा नहीं पायेंगे और अुसे परभाषाके रूपमें सीखेंगे, तो जैसा हाल फ़ारसी, संस्कृत आदिका होता है, वैसा ही अंग्रेज़ीका भी होगा। मुझे आदरके साथ कहना चाहिये कि अिस विचारमें कुछ दोष है। बहुतसे अंग्रेज़ अपनी शिक्षा अंग्रेज़ीमें पाकर भी फ्रेंच आदि भाषाओंका ऊँचा ज्ञान रखते हैं और अुनका अपने काममें पूरा अुपयोग कर सकते हैं। भारतमें अैसे भारतीय मौजूद हैं, जिन्होंने अंग्रेज़ीमें शिक्षा पाअी है, पर फ्रेंच आदि भाषाओं पर भी अुनका अधिकार अैसा-वैसा नहीं। सच तो यह है कि जब अंग्रेज़ी अपनी जगह पर चली जायगी और मातृभाषाको अपना पद मिल जायगा, तब हमारे मन, जो अभी दबे हुअे हैं, क़ैदसे छूटेंगे और शिक्षित और सुसंस्कृत होने पर भी ताजा रहे हुअे दिमागको अंग्रेज़ी भाषाका ज्ञान प्राप्त करनेका बोझ भारी नहीं लगेगा। और मेरा तो यह भी विश्वास है कि हुअ

समय सीखी हुअी अंग्रेज़ी हमारी आजकी अंग्रेज़ीसे ज्यादा शोभा देनेवाली होगी; और बुद्धि तेज होनेके कारण अुसका ज्यादा अच्छा अुपयोग हो सकेगा। लाभ-हानिके विचारसे यह मार्ग सब अर्थोंको साधनेवाला मालूम होगा।

जब हम मातृभाषा द्वारा शिक्षा पाने लगेंगे, तब हमारे घरके लोगोंके साथ हमारा दूसरा ही सम्बन्ध रहेगा। आज हम अपनी स्त्रियोंको अपनी सच्ची जीवन-सहचरी नहीं बना सकते। अुन्हें हमारे कामोंका बहुत कम पता होता है। हमारे माता-पिताको हमारी पढ़ाअीकी कुछ खबर नहीं होती। यदि हम अपनी भाषाके ज़रिये सारा अूँचा ज्ञान लेते हों, तो हम अपने धोबी, नाअी, भंगी, सबको सहज ही शिक्षा दे सकेंगे। विलायतमें हजामत कराते-कराते हम नाअीसे राजनीतिकी बातें कर सकते हैं। यहाँ तो हम अपने कुटुम्बमें भी अैसा नहीं कर सकते। अिसका कारण यह नहीं कि हमारे कुटुम्बी या नाअी अज्ञानी हैं। अुस अंग्रेज़ नाअीके बराबर ज्ञानी तो ये भी हैं। अिनके साथ हम महाभारत, रामायण और तीर्थोंकी बातें करते हैं, क्योंकि जनताको अिसी दिशाकी शिक्षा मिलती है। परन्तु स्कूलकी शिक्षा घर तक नहीं पहुँच सकती, क्योंकि अंग्रेज़ीमें सीखा हुआ हम अपने कुटुम्बियोंको नहीं समझा सकते।

आजकल हमारी धारासभाओंका सारा कामकाज अंग्रेज़ीमें होता है। बहुतेरे क्षेत्रोंमें यही हाल हो रहा है। अिससे विद्याधन कंजूसकी दौलतकी तरह गड़ा हुआ पड़ा रहता है। अदालतोंमें भी यही दशा है। न्यायाधीश हमेशा शिक्षाकी बातें कहते हैं। अदालतोंमें जानेवाले लोग अुन्हें सुननेको तैयार रहते हैं, परन्तु अुन्हें न्यायाधीशकी आखिरी शुष्क आज्ञा सुननेके सिवाय और कोअी ज्ञान नहीं मिलता। वे अपने वकीलों तकके भाषण नहीं समझ सकते। अंग्रेज़ी द्वारा चिकित्सा-शास्त्रका ज्ञान पाये हुअे डॉक्टरोंकी भी यही दशा है। वे रोगीको ज़रूरी ज्ञान नहीं दे सकते। अुन्हें शरीरके अवयवोंके गुजराती नाम भी नहीं आते। अिसलिअे अधिकतर दवाका नुसखा लिख देनेके सिवाय रोगीके साथ अुनका और

कोअी सम्बन्ध नहीं रहता। अैसा कहते हैं कि भारतमें पहाड़ोंकी चोटियों परसे चौमासेमें पानीके जो प्रपात गिरते हैं, अुनका हम अपने अविचारके कारण कोअी लाभ नहीं अुठाते। हम हमेशा लाखों रुपयेकी सोने जैसी कीमती खाद पैदा करते हैं और अुसका अुचित अुपयोग न करनेके कारण रोगोंके शिकार बनते हैं। अिसी तरह अंग्रेज़ी भाषा पढ़नेके बोझसे कुचले हुअे हम लोग, दीघदृष्टि न रखनेके कारण अूपर लिखे अनुसार जनताको जो कुछ मिलना चाहिये, वह नहीं दे सकते। अिस वाक्यमें अतिशयोक्ति नहीं। वह तो मेरी तीव्र भावना बतानेवाला है। मातृभाषाका जो अनादर हम कर रहे हैं, अुसका हमें भारी प्रायश्चित्त करना पड़ेगा। अिससे आम जनताका बड़ा नुक़सान हुआ है। अिस नुक़सानसे हमें बचाना मैं पढ़े-लिखे लोगोंका पहला फ़र्ज़ समझता हूँ।

जो नरसिंह महेताकी भाषा है, जिसमें नंदशंकरने अपना 'करणघेलो' अुपन्यास लिखा, जिसमें नवलराम, नर्मदाशंकर, मणिलाल, मलबारी आदि लेखकोंने अपना साहित्य लिखा है, जिस भाषामें स्व० राजचन्द्र कविने अमृतवाणी सुनाअी है, जिस भाषाकी सेवा कर सकनेवाली हिन्दू, मुसलमान और पारसी जातियाँ हैं, जिसके बोलनेवालोंमें पवित्र साधु हो चुके हैं, जिसका अुपयोग करनेवालोंमें अमीर लोग हैं, जिस भाषाके बोलनेवालोंमें जहाज़ों द्वारा परदेशोंमें व्यापार करनेवाले व्यापारी हो चुके हैं, जिसमें मूळू माणिक और जोधा माणिककी बहादुरीकी प्रतिध्वनि आज भी काठियावाड़के बरड़ा पहाड़में गूँजती है, अुस भाषाके विस्तारकी सीमा नहीं हो सकती। अैसी भाषाके द्वारा गुजराती लोग शिक्षा न लें, तो अुनसे और क्या भला होगा? अिस प्रश्नको विचारना पड़ता है, यही दुःखकी बात है।

अिस विषयको बन्द करते हुअे मैं डॉक्टर प्राणजीवनदास महेताने जो लेख लिखे हैं, अुनकी तरफ़ आप सबका ध्यान खींचता हूँ। अुनका गुजराती अनुवाद प्रकाशित हो चुका है और अुसे पढ़ लेनेकी मेरी आपसे सिफ़ारिश है। अुसमें अूपरके विचारोंका समर्थन करनेवाले बहुतसे मत मिलेंगे।

मातृभाषाको शिक्षाका माध्यम बनाना अच्छा हो, तो हमें यह सोचना चाहिये कि अुसपर अमल करनेके लिअे क्या अुपाय किये जायँ। दलीलें दिये बिना ये अुपाय मुझे जैसे सूझते हैं, वैसे यहाँ बताता हूँ:

१. अंग्रेज़ी जाननेवाले गुजराती जान या अनजानमें आपसके व्यवहारमें अंग्रेजीका अुपयोग न करें।

२. जिन्हें अंग्रेजी और गुजराती दोनोंका अच्छा ज्ञान है, अुन्हें अंग्रेजीमें जो-जो अच्छी अुपयोगी पुस्तकें या विचार हों, वे गुजरातीमें जनताके सामने रखने चाहियें।

३. शिक्षा-समितियोंको पाठ्य-पुस्तकें तैयार करानी चाहियें।

४. धनवान लोगोंको जगह-जगह गुजराती द्वारा शिक्षा देनेवाले स्कूल खोलने चाहियें।

५. अूपरके कामके साथ ही परिषदों और शिक्षा-समितियोंको सरकारके पास अर्जी भेजनी चाहिये कि सारी शिक्षा मातृभाषामें ही दी जाय। अदालतों और धारासभाओंका सारा कामकाज गुजरातीमें होना चाहिये और जनताका सब काम भी अिसी भाषामें होना चाहिये। आज यह जो रिवाज पड़ गया है कि अंग्रेजी जाननेवालेको ही अच्छी नौकरी मिल सकती है, अुसे बदलकर भाषाका भेदभाव रखे बिना योग्यताके अनुसार नौकरोंको चुना जाय। सरकारको यह अर्जी भी देनी चाहिये कि अैसे स्कूल खोले जायँ, जिनमें सरकारी नौकरोंको गुजराती भाषाका ज़रूरी ज्ञान मिल सके।

अूपरकी योजनामें अेक आपत्ति पाअी जायगी। वह यह है कि धारासभामें मराठी, सिंधी और गुजराती सदस्य हैं और किसी समय कर्नाटकके भी हो सकते हैं। आपत्ति बड़ी तो है, परन्तु अनिवार्य नहीं है। तेलगू लोगोंने अिस विषयकी चर्चा शुरू की है और अिसमें शक नहीं कि किसी न किसी दिन भाषाके अनुसार नये प्रान्त बनाने ही होंगे। परन्तु जब तक अैसा न हो, धारासभाके सदस्योंको हिन्दीमें या

अपनी मातृभाषामें बोलनेका अधिकार मिलना चाहिये। यह सुझाव आज हँसीके लायक़ मालूम हो, तो माफ़ी माँगकर अितना ही कहूँगा कि बहुतसे सुझाव शुरूमें हँसीके लायक़ ही मालूम होते हैं। मेरा यह मत है कि देशकी अुन्नतिका आधार शिक्षाके माध्यमके शुद्ध निर्णय पर है। अिसलिअे मुझे अपने सुझावमें बड़ा रहस्य मालूम होता है। जब मातृभाषाकी कीमत बढ़ेगी और अुसे राजभाषाका पद मिलेगा, तब अुसमें वे शक्तियाँ देखनेको मिलेंगी, जिनकी हमें कल्पना भी नहीं हो सकती।

जैसे हमें शिक्षाके माध्यमका विचार करना पड़ा, वैसे ही हमें **राष्ट्रभाषा**का भी विचार करना चाहिये। यदि अंग्रेज़ी राष्ट्रभाषा बननेवाली हो, तो अुसे अनिवार्य स्थान मिलना चाहिये।

अंग्रेजी राष्ट्रभाषा हो सकती है? कुछ विद्वान स्वदेशाभिमानी कहते हैं कि अंग्रेजी राष्ट्रभाषा हो सकती है या नहीं, यह प्रश्न ही अज्ञानता बताता है। अंग्रेजी तो राष्ट्रभाषा बन ही चुकी है। हमारे माननीय वाअिसरॉय साहबने जो भाषण दिया है, अुसमें तो अुन्होंने केवल अैसी आशा ही प्रकट की है। अुनका अुत्साह अुन्हें अूपर बताअी श्रेणीमें नहीं ले जाता। वाअिसरॉय साहब मानते हैं कि अंग्रेज़ी भाषा दिन-दिन अिस देशमें फैलेगी, हमारे घरोंमें घुसेगी और अन्तमें राष्ट्रभाषाके अूँचे पद पर पहुँचेगी। आज तो अूपर-अूपरसे देखने पर अिस विचारको समर्थन मिलता है। हमारे पढ़े-लिखे लोगोंकी दशाको देखते हुअे अैसा मालूम पड़ता है कि अंग्रेज़ीके बिना हमारा कारबार बन्द हो जायगा। अैसा होने पर भी जरा गहरे जाकर देखेंगे, तो पता चलेगा कि अंग्रेज़ी राष्ट्रभाषा न हो सकती है, न होनी चाहिये।

तब फिर हम यह देखें कि राष्ट्रभाषाके क्या लक्षण होने चाहियें।

१. वह भाषा सरकारी नौकरोंके लिअे आसान होनी चाहियें।

२. अुस भाषाके द्वारा भारतका आपसी धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक कामकाज हो सके।

३. अुस भाषाको भारतके ज्यादातर लोग बोलते हों।

४. वह भाषा राष्ट्रके लिअे आसान हो।

५. अुस भाषाका विचार करते समय क्षणिक या कुछ समय तक रहनेवाली स्थिति पर ज़ोर न दिया जाय।

अंग्रेज़ी भाषामें अिनमें से अेक भी लक्षण नहीं है।

पहला लक्षण मुझे अन्तमें रखना चाहिये था। परन्तु मैंने पहले अिसलिअे रखा है कि यह लक्षण अंग्रेज़ी भाषामें दिखाअी पड़ सकता है। ज्यादा सोचने पर हम देखेंगे कि आज भी राज्यके नौकरोंके लिअे वह आसान भाषा नहीं है। यहाँके शासनका ढाँचा अिस तरहका सोचा गया है कि अंग्रेज़ कम होंगे, यहाँ तक कि अन्तमें वाअिसरॉय और दूसरे अँगुलियों पर गिनने लायक अंग्रेज़ रहेंगे। अधिकतर कर्मचारी आज भी भारतीय हैं और वे दिन-दिन बढ़ते ही जायँगे। यह तो सभी मानेंगे कि अिस वर्गके लिअे भारतकी किसी भी भाषासे अंग्रेज़ी ज्यादा कठिन है।

दूसरा लक्षण विचारते समय हम देखते हैं कि जब तक आम लोग अंग्रेज़ी बोलनेवाले न हो जायँ, तब तक हमारा धार्मिक व्यवहार अंग्रेज़ीमें नहीं हो सकता। अिस हद तक अंग्रेज़ी भाषाका समाजमें फैल जाना असम्भव मालूम होता है।

तीसरा लक्षण अंग्रेजीमें नहीं हो सकता, क्योंकि वह भारतके अधिकतर लोगोंकी भाषा नहीं है।

चौथा लक्षण भी अंग्रेजीमें नहीं है, क्योंकि सारे राष्ट्रके लिअे वह अितनी आसान नहीं है।

पाँचवें लक्षण पर विचार करते समय हम देखते हैं कि अंग्रेजी भाषाकी आजकी सत्ता क्षणिक है। सदा बनी रहनेवाली स्थिति तो यह है कि भारतमें जनताके राष्ट्रीय काममें अंग्रेजी भाषाकी ज़रूरत थोड़ी ही रहेगी। साम्राज्यके कामकाजमें अुसकी ज़रूरत रहेगी। यह दूसरी बात है कि वह साम्राज्यके राजनीतिक कामकाज (डिप्लोमेसी) की भाषा होगी। अुस कामके लिअे अंग्रेजीकी ज़रूरत रहेगी। हमें अंग्रेजी भाषासे कुछ भी वैर

नहीं है । हमारा आग्रह तो अितना ही है कि अुसे हदसे बाहर न जाने दिया जाय । साम्राज्यकी भाषा तो अंग्रेजी ही होगी और अिसलिअे हम अपने मालवीयजी, शास्त्रीआर, बेनरजी आदिको यह भाषा सीखनेको मजबूर करेंगे और यह विश्वास रखेंगे कि ये लोग भारतकी कीर्ति विदेशोंमें फैलायेंगे । परन्तु राष्ट्रकी भाषा अंग्रेजी नहीं हो सकती । अंग्रेजीको राष्ट्रभाषा बनाना 'अेस्पेरेण्टो' दाखिल करने जैसी बात है । यह कल्पना ही हमारी कमजोरी बताती है कि अंग्रेजी राष्ट्रभाषा हो सकती है । 'अेस्पेरेण्टो' के लिअे प्रयत्न करना हमारी अज्ञानताका सूचक होगा । तो फिर कौनसी भाषा अुन पाँच लक्षणोंवाली है ? यह माने बिना काम नहीं चल सकता कि हिन्दी भाषामें ये सारे लक्षण मौजूद हैं ।

हिन्दी भाषा मैं अुसे कहता हूँ, जिसे अुत्तरमें हिन्दू और मुसलमान बोलते हैं और देवनागरी या अुर्दू (फ़ारसी) लिपिमें लिखते हैं । अिस व्याख्याका थोड़ा विरोध किया गया है ।

अैसी दलील दी जाती है कि हिन्दी और अुर्दू दो अलग भाषाअें हैं । यह दलील सही नहीं है । अुत्तर भारतमें मुसलमान और हिन्दू दोनों अेक ही भाषा बोलते हैं । भेद पढ़े-लिखे लोगोंने डाला है । यानी हिन्दू शिक्षित वर्गने हिन्दीको केवल संस्कृतमय बना डाला है और अिसलिअे कितने ही मुसलमान अुसे समझ नहीं सकते । लखनअूके मुसलमान भाअियोंने अुर्दूको फ़ारसीसे भरकर अैसी बना दी है कि हिन्दू अुसे समझ न सकें । ये दोनों केवल पण्डितोंकी भाषाअें हैं । आम जनतामें अुनके लिअे कोअी स्थान नहीं है । मैं अुत्तरमें रहा हूँ, हिन्दू-मुसलमानोंके साथ खूब मिला-जुला हूँ; और मेरा हिन्दी भाषाका ज्ञान बहुत थोड़ा होते हुअे भी मुझे अुन लोगोंके साथ व्यवहार रखनेमें जरा भी कठिनाअी नहीं पड़ी । जो भाषा अुत्तरी भारतमें आम लोग बोलते हैं, अुसे अुर्दू कहिये या हिन्दी, दोनों अेक ही हैं । फ़ारसी लिपिमें लिखिये, तो वह अुर्दू भाषाके नामसे पहचानी जायगी और वही वाक्य नागरीमें लिखिये तो वह हिन्दी कहलायेगी ।

अब रहा लिपिका झगड़ा। अभी कुछ समय तक तो मुसलमान लड़के अुर्दू लिपिमें लिखेंगे और हिन्दू अधिकतर देवनागरीमें लिखेंगे। 'अधिकतर' अिसलिअे कहता हूँ कि हजारों हिन्दू आज भी अपनी हिन्दी अुर्दू लिपिमें लिखते हैं और कितने ही तो देवनागरी लिपि जानते भी नहीं हैं। अंतमें जब हिन्दू-मुसलमानोंमें अेक दूसरेके प्रति शंकाकी भावना नहीं रह जायगी और अविश्वासके सारे कारण दूर हो जायँगे, तब जिस लिपिमें ज्यादा ज़ोर रहेगा, वह लिपि ज्यादा लिखी जायगी और वही राष्ट्रीय लिपि हो जायगी। अिस बीच जिन मुसलमान भाअियों और हिन्दुओंको अुर्दू लिपिमें अर्जी लिखनी होगी, अुनकी अर्जी राष्ट्रीय जगहोंमें स्वीकार करनी पड़ेगी।

ये पाँच लक्षण रखनेमें हिन्दीकी होड़ करनेवाली और कोअी भाषा नहीं है। हिन्दीके बाद दूसरा दर्जा बंगालीका है। फिर भी बंगाली लोग भी बंगालके बाहर हिन्दीका ही अुपयोग करते हैं। हिन्दी बोलनेवाले जहाँ जाते हैं, वहाँ हिन्दीका ही अुपयोग करते हैं और अिससे किसीको अचंभा नहीं होता। हिन्दीके धर्मोपदेशक और अुर्दूके मौलवी सारे भारतमें अपने भाषण हिन्दीमें ही देते हैं और अपढ़ जनता अुन्हें समझ लेती है। जहाँ अपढ़ गुजराती भी अुत्तरमें जाकर थोड़ी-बहुत हिन्दीका अुपयोग कर लेता है, वहाँ अुत्तरका 'भैया' बम्बअीके सेठकी नौकरी करते हुअे भी गुजराती बोलनेसे अिनकार करता है और सेठ 'भैया' के साथ टूटी-फूटी हिन्दी बोल लेता है। मैंने देखा है कि ठेठ द्राविड़ प्रान्तमें भी हिन्दीकी आवाज सुनाअी देती है। यह कहना ठीक नहीं कि मद्रासमें तो अंग्रेजीसे ही काम चलता है। वहाँ भी मैंने अपना सारा काम हिन्दीसे चलाया है। सैकड़ों मद्रासी मुसाफिरोंको मैंने दूसरे लोगोंके साथ हिन्दीमें बोलते सुना है। अिसके सिवाय, मद्रासके मुसलमान भाअी तो अच्छी तरह हिन्दी बोलना जानते हैं। यहाँ यह ध्यानमें रखना चाहिये कि सारे भारतके मुसलमान अुर्दू बोलते हैं और अुनकी संख्या सारे प्रान्तोंमें कुछ कम नहीं है।

अिस तरह हिन्दी भाषा राष्ट्रभाषा बन चुकी है। हमने बरसों पहले अुसका राष्ट्रभाषाके रूपमें अुपयोग किया है। अुर्दू भी हिन्दीकी अिस शक्तिसे ही पैदा हुअी है।

*मुसलमान बादशाह भारतमें फ़ारसी-अरबीको राष्ट्रभाषा नहीं बना* सके। अुन्होंने हिन्दीके व्याकरणको मानकर अुर्दू लिपि काममें ली और फ़ारसी शब्दोंका ज्यादा अुपयोग किया। परन्तु आम लोगोंके साथका व्यवहार अुनसे विदेशी भाषाके द्वारा न हो सका। यह हालत अंग्रेज अधिकारियोंसे छिपी हुअी नहीं है। *जिन्हें लड़ाकू वर्गोंका अनुभव है,* वे जानते हैं कि सैनिकोंके लिअे चीज़ोंके नाम हिन्दी या अुर्दूमें रखने पड़ते हैं।

अिस तरह हम देखते हैं कि हिन्दी ही राष्ट्रभाषा हो सकती है। फिर भी *मद्रासके पढ़े-लिखोंके लिअे यह सवाल कठिन है।*

दक्षिणी, बंगाली, सिंधी और गुजराती लोगोंके लिअे तो यह बड़ा आसान है। कुछ महीनोंमें वे हिन्दी पर अच्छा क़ाबू करके राष्ट्रीय कामकाज अुसमें कर सकते हैं। तामिल भाअियोंके लिअे यह अुतना आसान नहीं। तामिल आदि द्राविड़ी हिस्सोंकी अपनी भाषाअें हैं और अुनकी बनावट और अुनका व्याकरण संस्कृतसे अलग है। शब्दोंकी अेकताके सिवाय और कोअी अेकता संस्कृत भाषाओं और द्राविड़ भाषाओंमें नहीं पाअी जाती। परन्तु यह कठिनाअी सिर्फ आजके पढ़े-लिखे लोगोंके लिअे ही है। अुनके स्वदेशाभिमान पर भरोसा करने और विशेष प्रयत्न करके हिन्दी सीख लेनेकी आशा रखनेका हमें अधिकार है। भविष्यके लिअे तो यदि हिन्दीको अुसका राष्ट्रभाषाका पद मिले, तो हर *मद्रासी स्कूलमें हिन्दी पढ़ाअी जायगी और मद्रास और दूसरे* प्रान्तोंके बीच विशेष परिचय होनेकी संभावना बढ़ जायगी। अंग्रेजी भाषा द्राविड़ जनतामें नहीं घुस सकी। पर हिन्दीको घुसनेमें देर नहीं लगेगी। तेलगु जाति तो आज भी यह प्रयत्न कर रही है। यदि यह परिषद अिस बारेमें अेक विचार बना सके कि राष्ट्रभाषा कैसी होनी चाहिये, तब

तो कामको पूरा करनेके अुपाय करनेकी जरूरत मालूम होगी। जैसे अुपाय मातृभाषाके बारेमें बताये गये हैं, वैसे ही, जरूरी परिवर्तनके साथ, राष्ट्रभाषाके बारेमें भी लागू हो सकते हैं। गुजरातीको शिक्षाका माध्यम बनानेमें तो खास तौर पर हमींको प्रयत्न करना पड़ेगा। परन्तु राष्ट्रभाषाके आन्दोलनमें सारा हिन्द भाग लेगा।

हमने शिक्षाके माध्यमका, राष्ट्रभाषाका और शिक्षामें अंग्रेजीके स्थानका विचार कर लिया। अब यह सोचना बाकी रहा कि हमारी **पाठशालाओंमें दी जानेवाली शिक्षामें कमी है** या नहीं।

अिस विषयमें कोअी मतभेद नहीं है। सरकार और लोकमत सब आजकी पद्धतिको बुरी बताते हैं। अिस बारेमें काफ़ी मतभेद है कि क्या ग्रहण करने लायक है और क्या छोड़ने लायक है। अिन मतभेदोंकी चर्चामें पड़ने जितना मेरा ज्ञान नहीं है। मैंने जो विचार बनाये हैं, अुन्हें अिस परिषदके आगे रख देनेकी धृष्टता करता हूँ।

शिक्षा मेरा क्षेत्र नहीं कहा जा सकता। अिसलिअे मुझे अिस विषयमें कुछ भी कहते संकोच होता है। जब कोअी अनधिकारी स्त्री या पुरुष अपने अधिकारसे बाहर बात करता है, तो मैं अुसका खंडन करनेको तैयार हो जाता हूँ और अधीर बन जाता हूँ। वैद्य वकील बननेका प्रयत्न करे, तो वकीलको गुस्सा आना ठीक ही है। अिसी तरह मैं मानता हूँ कि शिक्षाके बारेमें जिसे कुछ भी अनुभव न हो, अुसे अुसकी टीका करनेका कोअी अधिकार नहीं है। अिसलिअे दो शब्द मुझे **अपने अधिकारके बारेमें** कहने पड़ेंगे।

आधुनिक शिक्षा पर मैं पच्चीस वर्ष पहले से ही विचार करने लगा था। मेरे और मेरे भाअी-बहनोंके बच्चोंकी शिक्षाकी जिम्मेदारी मेरे सिर आअी। हमारे स्कूलोंकी कमियाँ मुझे मालूम थीं, अिसलिअे मैंने अपने लड़कों पर प्रयोग शुरू किये। मैंने अुन्हें भटकाया भी जरूर। किसीको कहीं, तो किसीको कहीं भेजा। मैंने स्वयं भी किसी किसीको पढ़ाया।

मैं दक्षिण अफ्रीका गया । वहाँ भी मेरा असन्तोष ज्योंका त्यों बना रहा और मुझे अिस बारेमें विशेष विचार करना पड़ा । वहाँ 'भारतीय शिक्षा समाज' का कामकाज बहुत समय तक मेरे हाथमें रहा । मैंने अपने लड़कोंको स्कूलमें शिक्षा नहीं दिलवाओ । मेरे सबसे बड़े लड़केने मेरी अलग अलग अवस्थाअें देखी थीं । मुझसे निराश होकर अुसने कुछ समय तक अहमदाबादके स्कूलमें शिक्षा पाअी । परन्तु अुसे अैसा नहीं लगा कि अिससे अुसे लाभ हुआ । मैं अैसा मानता हूँ कि जिन्हें मैंने स्कूल नहीं भेजा, अुनका नुकसान नहीं हुआ और अुन्हें अच्छी शिक्षा मिली है । अुनकी कमीको मैं देख सकता हूँ, परन्तु अिसका कारण यही है कि वे मेरे प्रयोगोंकी शुरुआतमें पल-पुसकर बड़े हुअे । अिसलिअे सारे प्रयोगोंका सिलसिला अेक होने पर भी वे लोग अुसमें होनेवाले परिवर्तनोंके शिकार हो गये । दक्षिण अफ्रीकामें सत्याग्रहके समय मेरे पास लगभग पचास लड़के पढ़ते थे । अिस स्कूलकी अधिकतर रचना मेरे हाथों हुअी थी । अुसका दूसरे स्कूलों या सरकारी पद्धति के साथ कोअी सम्बन्ध न था । यहाँ भी अैसा ही प्रयत्न चल रहा है और आचार्य ध्रुव और दूसरे विद्वानोंका आशीर्वाद लेकर अहमदाबादमें अेक राष्ट्रीय स्कूल खोला है । अुसे पाँच महीने हुअे हैं । गुजरात कॉलेजके भूतपूर्व प्रो॰ सांकलचंद शाह अुसके आचार्य हैं। अुन्होंने प्रो॰ गज्जरकी देखरेखमें शिक्षा पाअी है और अुनके साथ दूसरे भी भाषा प्रेमी लोग हैं । अिस योजनाके लिअे खास तौर पर मैं जिम्मेदार हूँ । परन्तु अुसमें अिन सब शिक्षकोंकी सम्मति है और अुन्होंने अपनी जरूरतके लायक वेतन लेकर अिस कामके लिअे अपना जीवन अर्पण किया है । परिस्थितिवश मैं स्वयं अिस स्कूलमें पढ़ानेका काम नहीं कर सकता, परन्तु अुसके काममें मेरा मन हमेशा डूबा रहता है । अिस तरह मेरा काम तो सिर्फ *ढाँचा बनानेवालेका* है, पर मैं *मानता* हूँ कि वह बिलकुल विचार-रहित नहीं है । मैं चाहता हूँ कि यह बात ध्यानमें रख कर आप लोग मेरी टीका पर विचार करेंगे ।

मुझे सदा अैसा लगता रहा है कि आजकी शिक्षामें हमारी कौटुम्बिक व्यवस्था पर ध्यान नहीं दिया गया। अुसकी रचना करनेमें **हमारी ज़रूरतोंका विचार** नहीं किया गया यह स्वाभाविक था।

मैकॉलेने हमारे साहित्यका तिरस्कार किया, हमें वहमी समझा। जिन लोगोंने हमारी शिक्षाकी योजना बनाअी, अुनमें से अधिकांशको हमारे धर्मके बारेमें गहरा अज्ञान था। कितनों ही ने अुसे अधर्म समझा। हमारे धर्मग्रन्थ वहमोंके संग्रह माने गये। हमारी सभ्यता दोषोंसे भरी मालूम हुअी। यह समझा गया कि चूँकि हम गिरी हुअी प्रजा हैं, अिसलिअे हमारी व्यवस्थाओंमें खूब दोष होने चाहियें। अिससे शुद्ध भाव होते हुअे भी अुन्होंने ग़लत विधान बनाया। नअी रचना करनी थी, अिसलिअे योजकोंने आसपासके वातावरण पर ही ध्यान दिया। नअी रचना अिस विचारसे की गअी कि राज्य करनेवालोंकी मददके लिअे वकील, डॉक्टर और क्लर्कोंकी ज़रूरत होगी, हम सबको नये ज्ञानकी ज़रूरत होगी। अिसलिअे हमारे संसारका विचार किये बिना ही पुस्तकें तैयार की गअीं और अंग्रेजी कहावतके अनुसार घोड़ेके आगे गाड़ी रख दी गअी।

मलबारीने कहा है कि अितिहास-भूगोल पढ़ाना हो, तो पहले बच्चोंको घरका अितिहास-भूगोल सिखाना चाहिये। मुझे याद है कि मेरे भाग्यमें अिंग्लैंडकी 'काअुण्टियाँ' रटना पहले लिखा था। जो विषय बड़ा मज़ेदार है, वही मेरे लिअे जहरके बराबर हो गया था। अितिहासमें मुझे अुत्साह दिलानेवाली कोअी बात नहीं जान पड़ी। अितिहास स्वदेशाभिमान सिखानेका साधन होता है। हमारे स्कूलके अितिहास सिखानेके ढंगमें मुझे अिस देशके बारेमें अभिमान होनेका कोअी कारण नहीं मिला। अुसे सीखनेके लिअे मुझे दूसरी ही किताबें पढ़नी पड़ी हैं।

**अंकगणित आदि विषयों** में भी देशी पद्धतिको कम ही स्थान दिया गया है। पुरानी पद्धति लगभग छोड़ दी गअी है।

हिसाब सिखानेकी देशी पद्धति मिट जानेसे हमारे बुजुर्गोंमें हिसाब कर लेनेकी जो फुरती थी, वह हममें नहीं रही ।

**विज्ञान** रूखा है । अुसके ज्ञानसे हमारे बच्चे कोअी लाभ नहीं अुठा पाते । खगोल जैसे शास्त्र, जो बच्चोंको आकाश दिखा कर सिखाये जा सकते हैं, सिर्फ पुस्तकोंसे पढ़ाये जाते हैं । मैं नहीं जानता कि स्कूल छोड़नेके बाद किसी विद्यार्थीको पानीकी बूँदका पृथक्करण करना आता होगा ।

**स्वास्थ्यकी शिक्षा** कुछ भी नहीं दी जाती, यह कहनेमें अतिशयोक्ति नहीं । साठ सालकी शिक्षाके बाद भी हमें हैजा, प्लेग आदि रोगोंसे बचना नहीं आया । मैं अिसे हमारी शिक्षा पर सबसे बड़ा आक्षेप समझता हूँ कि हमारे डॉक्टर अिन रोगोंको दूर नहीं कर सके । हमारे सैकड़ों घर देखने पर भी मुझे यह अनुभव नहीं हुआ कि अुनमें स्वास्थ्यके नियमोंने प्रवेश किया है । साँप काटने पर क्या किया जाय, यह हमारे ग्रेज्युअेट बता सकेंगे अिसमें मुझे पूरा शक है । यदि हमारे डॉक्टरोंको छोटी अुम्रसे डॉक्टरी सीखनेका मौका मिला होता, तो आज अुनकी जो दीन स्थिति हो रही है, वह न होती । यह हमारी शिक्षाका भयंकर परिणाम है । दुनियाके दूसरे सब हिस्सोंके लोगोंने अपने यहाँसे महामारीको निकाल बाहर किया है, पर हमारे यहाँ वह घर कर रही है और हजारों भारतीय बेमौत मरते जा रहे हैं । यदि अिसका कारण हमारी गरीबी बताया जाय, तो अिस बातका जवाब भी शिक्षा विभागकी तरफसे मिलना चाहिये कि साठ सालकी शिक्षाके बाद भी भारतमें गरीबी क्यों है ।

*अब जिन विषयोंकी शिक्षा बिलकुल नहीं दी जाती,* अुनका विचार करें । शिक्षाका मुख्य हेतु चारित्र्य होना चाहिये । धर्मके बिना चरित्र कैसे बन सकता है, यह मुझे नहीं सूझता । हमें आगे अिसका पता लगेगा कि हम 'अतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्टः' होते जा रहे हैं । अिस बारेमें मैं ज्यादा नहीं लिख सकता । परन्तु सैकड़ों शिक्षकोंसे मैं मिला

हैं। अुन्होंने अुसँरों लेकर मुझे अपने अनुभव सुनाये हैं। अिसका गंभीर विचार अिस परिषदको करना ही पड़ेगा। यदि विद्यार्थियोंकी नैतिकता चली गअी, तो सब कुछ गया समझिये।

अिस देशमें ८५ से ९० फ़ीसदी स्त्री-पुरुष खेतीके धन्धेमें लगे हुअे हैं। अिस **धन्धेका ज्ञान** जितना हो अुतना ही थोड़ा समझना चाहिये। फिर भी अुसका हमारी हाअीस्कूल तककी पढ़ाअीमें स्थान ही नहीं है। अैसी विषम स्थिति यहीं निभ सकती है।

बुनाअीका धन्धा नष्ट होता जा रहा है। किसानोंके लिअे वह फुरसतका धन्धा था।' अुस धन्धेका हमारी पढ़ाअीमें स्थान नहीं है। हमारी शिक्षा सिर्फ क्लर्क पैदा करती है। और अुसका ढंग अैसा है कि सुनार, लुहार या मोची जो भी स्कूलमें फँस जाय, वह क्लर्क बन जाता है। हम सबकी यह कामना होनी चाहिये कि अच्छी शिक्षा सभीको मिले। परन्तु शिक्षित होकर सभी क्लर्क बन जायँ तब?

हमारी शिक्षामें **क्षत्रिय कला**का स्थान नहीं है। मेरे खुदके लिअे यह दुःखकी बात नहीं। मैंने तो अिसे अपने आप मिला हुआ सुख समझ लिया है। लेकिन जनताको हथियार चलाना सीखना है। जिसे सीखना हो अुसे अिसका मौका मिलना चाहिये। परन्तु यह तो शिक्षाक्रममें भुला ही दिया गया दीखता है।

**संगीत**के लिअे कहीं स्थान नहीं दीखता। संगीतका हम पर बहुत असर होता है। अिसका हमें ठीक-ठीक खयाल नहीं रहा, नहीं तो हम किसी न किसी तरह अपने बच्चोंको संगीत ज़रूर सिखाते। वेदोंकी रचना संगीतके आधार पर हुअी पाअी जाती है। मधुर संगीत आत्माके तापको शांत कर सकता है। हजारों आदमियोंकी सभामें हम कभी-कभी खलबलाहट देखते हैं। वह खलबलाहट हजारों कंठोंसे अेक स्वरमें कोअी राष्ट्रीय गीत गाया जाय तो बन्द हो सकती है। यदि शौर्य पैदा करनेके लिअे हजारों बालक अेक स्वरसे वीररसकी कविता' गा सकें, तो यह कोअी छोटी-मोटी बात नहीं है। खलासी और दूसरे मजदूर 'हरिहर',

'अल्लाबेली' जैसे नारे अेक आवाजसे लगाते हैं और अुनके सहारे अपना काम कर सकते हैं। यह संगीतकी शक्तिका सबूत है। अंग्रेज मित्रोंको मैंने गाना गाकर अपनी ठण्ड अुड़ाते देखा है। हमारे बालक नाटकके गाने चाहे जैसे और चाहे जब सीख लेते हैं और बेसुरे हारमोनियम वगैरा बाजे बजाते हैं। जिससे अुन्हें नुकसान होता है। अगर संगीतकी शुद्ध शिक्षा मिले, तो नाटकके गाने गानेमें और बेसुरे राग अलापनेमें अुनका समय नष्ट न हो। जैसे गवैया बेसुरा या बेसमय नहीं गाता, वैसे ही शुद्ध संगीत सीखनेवाला गन्दे गाने नहीं गायेगा। जनताको जगानेके लिअे संगीतको स्थान मिलना चाहिये। अिस विषय पर डॉक्टर आनन्दकुमार स्वामीके विचार मनन करने योग्य हैं।

**व्यायाम** शब्दमें खेल-कूद वगैराको शामिल किया गया है। परन्तु अिसका भी किसीने भाव नहीं पूछा। देशी खेल छोड़ दिये गये हैं और टेनिस, क्रिकेट और फुटबॉलका बोलबाला हो गया है। यह माननेमें कोअी हर्ज नहीं कि अिन तीनों खेलोंमें रस आता है। परन्तु हम पश्चिमी चीज़ोंके मोहमें न फँस गये होते, तो अितने ही मजेदार और बिना खर्चके खेलोंको, जैसे गेंदबल्ला, गिल्लीडंडा, खो-खो, सातताली, कबड्डी, हुतूतू आदिको न छोड़ते। कसरत, जिसमें आठों अंगोंको पूरी तालीम मिलती है और जिसमें बड़ा रहस्य भरा है, तथा कुश्तीके अखाड़े लगभग मिट गये हैं। मुझे लगता है कि यदि किसी पश्चिमी चीज़की हमें नकल करनी चाहिये, तो वह 'ड्रिल' या कवायद है। अेक मित्रने टीका की थी कि हमें चलना नहीं आता। और अेक साथ ठीक ढंगसे चलना तो हम बिलकुल नहीं जानते। हममें यह शक्ति तो है ही नहीं कि हजारों आदमी अेक ताल और शान्तिसे किसी भी हालतमें दो-दो चार-चारकी कतार बनाकर चल सकें। अैसी कवायद सिर्फ लड़ाअीमें ही काम आती है सो बात नहीं। बहुतेरे परोपकारके कामोंमें भी कवायद बहुत अुपयोगी सिद्ध हो सकती है; जैसे आग बुझाने, डूबे हुओंको बचाने, बीमारोंको डोलीमें ले जाने आदिमें कवायद बहुत ही

कीमती साधन है । अिस तरह हमारे स्कूलोंमें देशी खेल, देशी कसरतें, और पश्चिमी ढंगकी कवायद जारी करनेकी ज़रूरत है ।

जैसे पुरुषोंकी शिक्षाकी पद्धति दोषपूर्ण है, वैसे ही स्त्री-शिक्षाकी भी है । भारतमें स्त्री-पुरुषोंका क्या सम्बंध है, स्त्रीका आम जनतामें क्या स्थान है, अिन बातोंका विचार नहीं किया गया ।

प्रारंभिक शिक्षाका बहुतसा भाग दोनों वर्गोंके लिअे अेक-सा हो सकता है । अिसके सिवाय और सब बातोंमें बहुत असमानता है । पुरुष और स्त्रीमें जैसे कुदरतने भेद रखा है, वैसे ही शिक्षामें भी भेदकी आवश्यकता है । संसारमें दोनों अेक-से हैं । परन्तु अुनके काममें बँटवारा पाया जाता है । घरमें राज करनेका अधिकार स्त्रीका है । बाहरकी व्यवस्थाका स्वामी पुरुष है । पुरुष आजीविकाके साधन जुटानेवाला है, स्त्री संग्रह और खर्च करनेवाली है । स्त्री बच्चोंको पालनेवाली है, अुनकी विधाता है, अुस पर बच्चेके चरित्रका आधार है, वह बच्चेकी शिक्षिका है, अिस-लिअे वह प्रजाकी माता है । पुरुष प्रजाका पिता नहीं । अेक खास अुम्रके बाद पिताका असर पुत्र पर कम रहता है । परन्तु माँ अपना दरजा कभी नहीं छोड़ती । बच्चा आदमी बन जाने पर भी माँके सामने बच्चेकी तरह व्यवहार करता है । पिताके साथ वह अैसा सम्बन्ध नहीं रख सकता ।

यह योजना कुदरती हो, ठीक हो, तो स्त्रीके लिअे स्वतंत्र कमाअी करनेका प्रबंध नहीं होगा । जिस समाजमें स्त्रियोंको तारमास्टर या टाअिपिस्ट या कम्पोज़िटरका काम करना पड़ता हो, अुसकी व्यवस्था बिगड़ी हुअी होनी चाहिये, अुस जातिने अपनी शक्तिका दिवाला निकाल दिया है और वह जाति अपनी पूँजी पर गुजर करने लगी है अैसी मेरी राय है ।

अिसलिअे अेक तरफ हम स्त्रीको अँधेरेमें और नीच दशामें रखें तो यह गलत है । अिसी तरह दूसरी तरफ स्त्रीको पुरुषका काम सौंपना निर्बलताकी निशानी है और स्त्री पर जुल्म करनेके बराबर है ।

अिसलिअे अेक खास अुम्रके बाद स्त्रियोंके लिअे दूसरी ही तरहकी शिक्षाका प्रबंध होना चाहिये। अुन्हें गृह-व्यवस्थाका, गर्भकालकी सार-सँभालका, बालकोंके पालन-पोषण आदिका ज्ञान देनेकी ज़रूरत है। यह योजना बनानेका काम बहुत कठिन है। शिक्षाके क्रममें यह नया विषय है। अिस बारेमें खोज और निर्णय करनेके लिअे चरित्रवान और ज्ञानवान स्त्रियों और अनुभवी पुरुषोंकी समिति कायम करके अुससे कोअी योजना बनवानेकी ज़रूरत है।

अूपर बताअी हुअी काम करनेवाली समिति कन्याकालसे शुरू होनेवाली शिक्षाका अुपाय खोजेगी। परन्तु जो कन्याअें बचपनमें ही ब्याह दी गअी हों, अुनकी संख्याका भी तो पार नहीं है। फिर, यह संख्या प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। शादीके बाद तो अुनका पता ही नहीं चलता। अुनके बारेमें मैंने अपने जो विचार 'भगिनी समाज पुस्तकमाला' की पहली पुस्तककी प्रस्तावनामें दिये हैं, वे ही यहाँ अुद्धृत करता हूँ:

"स्त्री-शिक्षाको हम केवल कन्या-शिक्षासे ही पूरा नहीं कर सकेंगे। हजारों लड़कियाँ बारह सालकी अुम्रमें ही बाल-विवाहका शिकार बनकर हमारी दृष्टिसे ओझल हो जाती हैं। वे गृहिणी बन जाती हैं। यह पापी रिवाज जब तक हममें से नहीं मिटेगा, तब तक पुरुषोंको स्त्रियोंका शिक्षक बनना सीखना पड़ेगा। अुनकी अिस विषयकी शिक्षामें हमारी बहुतसी आशाअें छिपी हुअी हैं। हमारी स्त्रियाँ हमारे विषयभोगकी चीज़ और हमारी रसोअियन न रहकर हमारी जीवन-सहचरी, हमारी अर्धांगिनी और हमारे सुख-दुःखकी साझीदार न बनेंगी, तब तक हमारे सारे प्रयत्न बेकार जान पड़ते हैं। कोअी-कोअी अपनी स्त्रीको जानवरके बराबर समझते हैं। अिस स्थितिके लिअे कुछ संस्कृतके वचन और तुलसीदासजीका यह प्रसिद्ध दोहा बहुत जिम्मेदार है। तुलसीदासजीने अेक जगह लिखा है: 'ढोर गँवार शूद्र अरु नारी, ये सब ताड़नके अधिकारी।' तुलसीदासजीको मैं पूज्य मानता हूँ। परन्तु

मेरी पूजा अंधी नहीं है। या तो अूपरका दोहा क्षेपक है, अथवा यदि वह तुलसीदासजीका ही हो, तो अुन्होंने बिना विचारे केवल प्रचलित रिवाजके अनुसार अुसे जोड़ दिया होगा। संस्कृतके वचनोंके बारेमें तो अैसा वहम फैला हुआ पाया जाता है कि संस्कृतमें लिखे हुअे श्लोक मानो शास्त्रके वचन ही हों! अिस वहमको मिटाकर हममें स्त्रियोंको नीची समझनेकी जो प्रथा पड़ी हुअी है, अुसे जड़से अुखाड़ फेंकना होगा। दूसरी तरफ हममें से कितने ही विषयान्ध बनकर स्त्रीकी पूजा करते हैं और जैसे हम ठाकुरजीको हर समय नये आभूषणोंसे सजाते हैं, वैसे स्त्रीको भी सजाते हैं। अिस पूजाकी बुराअीसे भी हमें बचना जरूरी है। अन्तमें तो जैसे महादेवके लिअे पार्वती, रामके लिअे सीता, नलके लिअे दमयंती थी, वैसे ही जब हमारी स्त्रियाँ हमारी बातचीतमें भाग लेनेवाली, हमारे साथ वाद-विवाद करनेवाली, हमारी कही हुअी बातोंको समझनेवाली, अुन्हें बल पहुँचानेवाली और अपनी अलौकिक प्रेरणा-शक्तिसे हमारी बाहरी अुपाधियोंको अिशारेमें समझकर अुनमें भाग लेनेवाली और हमें शीतलतामय शान्ति पहुँचानेवाली बनेंगी, तभी हमारा अुद्धार हो सकेगा। अुससे पहले नहीं। अैसी स्थिति तुरन्त कन्या पाठशाला द्वारा पैदा होनेकी बहुत कम संभावना है। जब तक बाल-विवाहका फंदा हमारे गलेमें पड़ा रहेगा, तब तक पुरुषोंको अपनी स्त्रियोंका शिक्षक बनना पड़ेगा। और यह शिक्षा केवल अक्षरोंकी ही नहीं होगी, बल्कि धीरे-धीरे अुन्हें राजनीति और संसारके सुधारके विषयोंकी शिक्षा भी दी जा सकती है। अैसा करनेसे पहले अक्षर-ज्ञानकी जरूरत नहीं मालूम होती। अैसे पुरुषको स्त्रीके बारेमें अपना रवैया बदलना पड़ेगा। स्त्री बालिग न हो जाय, तब तक पुरुष विद्यार्थीकी हालतमें रहे और अुसके साथ ब्रह्मचर्य पाले, तो हम जड़ता (अिनर्शिया) की शक्तिके दबावसे कुचले नहीं जायँगे, और हम बारह या पंद्रह-सालकी लड़की पर प्रसवकी महावेदनाका बोझ हरगिज नहीं डालेंगे। अैसा विचार करनेमें भी हमें कँपकँपी छूटनी चाहिये।

"ब्याही हुई स्त्रियोंके लिअे क्लास खोले जाते हैं, अुनके लिअे भाषण होते हैं। यह सब अच्छा है। यह काम करनेवाले अपने समयका त्याग करते हैं। वह हमारे खातेमें जमा बाजूमें लिखा जाता है। परन्तु अिसके साथ ही अूपर बताया हुआ पुरुषोंका फर्ज पूरा न हो, तब तक अैसा मालूम होता है कि हमें बहुत अच्छे नतीजे देखनेको नहीं मिलेंगे। गहरा विचार करने पर यह बात सबको स्वयंसिद्ध मालूम होगी।"

जहाँ-जहाँ नजर डालते हैं, वहाँ-वहाँ कच्ची नींव पर भारी अिमारत खड़ी की हुअी दीखती है। प्रारंभिक शिक्षाके लिअे चुने हुअे शिक्षकोंको सभ्यताके लिअे भले ही शिक्षक कहा जाय, परन्तु यथार्थमें अुन्हें यह अुपमा देना शिक्षक शब्दका दुरुपयोग करना है। विद्यार्थीका बाल्यकाल सबसे महत्त्वका समय है। अुस समयका मिला हुआ ज्ञान वह कभी भूलता नहीं। अुसी समय अुसे कमसे कम अवधि मिलती है और चाहे जैसी कामचलाअू पाठशालामें ठूँस दिया जाता है। मैं मानता हूँ कि कॉलेज, हाअीस्कूल आदिकी सजावटमें अितना खर्च किया जाता है, जो अिस गरीब देशसे सहा नहीं जा सकता। अुसके बजाय यदि **प्रारंभिक शिक्षा** सुशिक्षित, प्रौढ़ व सदाचारी शिक्षकों द्वारा और अैसी जगह दी जाती हो जहाँ सृष्टिसौंदर्यका खयाल रखा गया हो और स्वास्थ्यकी सँभाल रखी जाती हो, तो थोड़े समयमें हम बहुत बड़े नतीजे देख सकते हैं। अैसा परिवर्तन करनेके लिअे आजके शिक्षकोंका माहवारी वेतन दुगुना कर दिया जाय, तो भी हेतु पूरा नहीं होगा। बड़े परिणाम अैसे छोटे परिवर्तनसे नहीं पैदा हो सकते। प्रारंभिक शिक्षाका स्वरूप ही बदलना चाहिये। मैं जानता हूँ कि यह विषय बड़ा कठिन है, अुसमें रुकावटें भी बहुत हैं। फिर भी अिसका हल 'गुजरात शिक्षामंडल' की शक्तिके बाहर न होना चाहिये।

यहाँ यह कहना शायद जरूरी है कि मेरा हेतु प्राथमिक स्कूलोंके शिक्षकोंके दोष बतानेका नहीं है। मैं मानता हूँ कि ये लोग जो अपनी

शक्तिसे बाहर नतीजे दिखा सकते हैं, वह हमारी सुन्दर सभ्यताका फल है । यदि अिन्हीं शिक्षकोंको पूरा प्रोत्साहन मिले, तो जो नतीजा निकले अुसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता ।

**शिक्षा मुफ्त और अनिवार्य** होनी चाहिये या नहीं, अिस बारेमें मैं कुछ भी कहना ठीक नहीं समझता । मेरा अनुभव थोड़ा है । अिसके सिवाय, जब किसी भी तरहका फर्ज लोगों पर लादना मुझे ठीक नहीं मालूम होता, तब यह अतिरिक्त फर्ज कैसे डाला जाय, यह विचार खटकता रहता है । अिस समय हम शिक्षाको मुफ्त और ऐच्छिक रखकर अुसके प्रयोग करें, तो यह समयके ज्यादा अनुकूल होगा । जब तक हम 'जो हुकुम' के ज़मानेसे गुजर नहीं जाते, तब तक शिक्षा अनिवार्य करनेमें मुझे कअी रुकावटें दिखाअी देती हैं । यह विचार करते समय श्रीमान् गायकवाड़की सरकारका अनुभव कुछ मददगार साबित हो सकता है । मेरी जाँचका नतीजा अनिवार्य शिक्षाके खिलाफ आया है, परन्तु वह जाँच नहीं के बराबर होनेके कारण अुस पर जोर नहीं दिया जा सकता । मैं यह मान लेता हूँ कि अिस विषय पर परिषदमें आये हुअे सदस्य हमें कीमती जानकारी देंगे ।

मेरा यह विश्वास है कि अिन सब दोषोंको दूर करनेका राजमार्ग अर्जी नहीं है । महत्त्वके परिवर्तन राज करनेवालोंसे अेकदम नहीं हो सकते । यह साहस जनताके नेताओंको ही करना चाहिये । अंग्रेजी विधानमें जनताके अपने साहसका खास स्थान है । यदि हम यही सोचेंगे कि सरकारके किये ही सब कुछ होगा, तो हमारा सोचा हुआ काम करनेमें संभवतः युग बीत जायेंगे । अिंग्लैंडकी तरह यहाँ भी सरकारसे प्रयोग करानेके पहले हमें करके बताना चाहिये । जिसे जिस दिशामें कमी दीखे, वह वही कमी दूर करके और अच्छा नतीजा दिखाकर सरकारसे परिवर्तन करा सकता है । अैसे साहसके लिअे देशमें शिक्षाकी कअी खास संस्थाअें कायम करना ज़रूरी है ।

जिसमें अेक बहुत बड़ी रुकावट है। हमें 'डिग्री' का बड़ा मोह है। हम परीक्षामें पास होने पर अपने जीवनका आधार रखते हैं। अिससे जनताका बड़ा नुकसान होता है। हम यह भूल जाते हैं कि 'डिग्री' सिर्फ सरकारी नौकरी करनेवाले लोगोंके ही कामकी चीज़ है। परन्तु जनताकी अिमारत कोअी नौकरीपेशा लोगों पर थोड़े ही खड़ी करनी है। हम अपने चारों तरफ देखते हैं कि नौकरीके बिना सब लोग बहुत अच्छी तरह धन कमा सकते हैं। यदि अपढ़ लोग अपनी होशियारीसे करोड़पति हो सकते हैं, तो पढ़े-लिखे लोग क्यों नहीं हो सकते। यदि पढ़े-लिखे लोग डर छोड़ दें, तो अुनमें अपढ़ लोगोंके बराबर सामर्थ्य तो ज़रूर आ सकती है।

यदि 'डिग्री' का मोह छूट जाय तो देशमें खानगी पाठशालाअें बहुत चल सकती हैं। कोअी भी शासक जनताकी सारी शिक्षाको नहीं चला सकते। अमेरिकामें तो मुख्यतः गैरसरकारी साहस ही है। अिंग्लैण्डमें भी कअी संस्थाअें निजी साहससे चलती हैं। वे अपने ही प्रमाणपत्र देती हैं।

अिस शिक्षाको अच्छी बुनियाद पर खड़ा करनेके लिअे भगीरथ प्रयत्न करना पड़ेगा। अिसमें तन, मन, धन और आत्मा सब कुछ लगाना पड़ेगा।

मुझे अैसा लगा है कि अमेरिकासे हम थोड़ा ही सीख सकते हैं। परन्तु अेक चीज़ तो अनुकरणीय है; वहाँकी शिक्षाकी बड़ी-बड़ी संस्थाअें अेक बड़े ट्रस्टके ज़रिये चलती हैं। अुसमें धनवान लोगोंने करोड़ों रुपया जमा कराया है। अुस ट्रस्टकी तरफसे कअी गैरसरकारी पाठशालाअें चलती हैं। अुसमें जैसे रुपया अिकट्ठा हुआ है, वैसे ही शरीरसंपत्तिवाले, स्वदेशाभिमानी विद्वान लोग भी अिकट्ठे हुअे हैं। वे सारी संस्थाओंकी जाँच करते हैं और अुनकी रक्षा करते हैं। अुन्हें जहाँ जितना ठीक लगता है, वहाँ अुतनी मदद देते हैं। अेक निश्चित विधान और नियमोंको माननेवाली संस्थाओंको यह मदद सहज ही मिल सकती है।

अिस ट्रस्टकी तरफसे अुत्साहके साथ हलचल की गअी, तब अमेरिकाके बूढ़े किसानोंको खेतीकी नअी खोजवाला ज्ञान मिल सका है। अैसी ही कोअी योजना गुजरातमें भी हो सकती है। धन है, विद्वत्ता है और धर्मवृत्ति भी अभी मिटी नहीं है। बच्चे विद्याकी राह देख रहे हैं। अैसा साहस किया जाय, तो थोड़े वर्षमें हम सरकारको बता सकते हैं कि हमारा प्रयत्न सच्चा है। फिर सरकार अुस पर अमल करनेमें नहीं चूकेगी। हमारा करके दिखाया हुआ काम हजारों अर्जियोंसे ज्यादा चमकेगा।

अूपरकी सूचनामें 'गुजरात शिक्षा मण्डल' के दूसरे दो अुद्देश्योंका अवलोकन आ जाता है। अिस तरहके ट्रस्टकी स्थापनासे शिक्षा-प्रचारका लगातार आन्दोलन होगा और शिक्षाका व्यावहारिक काम होगा।

परन्तु यह काम हो जाय तो समझिये कि सब कुछ हो गया। अिसलिअे यह काम आसान नहीं हो सकता। सरकारकी तरह धनवान लोग भी छेड़नेसे ही जागते हैं। अुन्हें छेड़नेका अेक ही साधन है। वह है तपस्या। तपस्या धर्मका पहला और आखिरी कदम है। मैं यह मान लेता हूँ कि 'गुजरात शिक्षा मण्डल' अिस तपस्याकी मूर्ति है। अुसके मंत्रियों और सदस्योंमें जब परोपकारवृत्ति ही रहेगी और विद्वत्ता भी वैसी होगी, तब लक्ष्मी अपने आप वहाँ चली आयेगी। धनवान लोगोंके मनमें हमेशा शंका रहती है। शंकाके कारण भी होते हैं। अिसलिअे यदि हम लक्ष्मीदेवीको खुश करना चाहते हैं, तो हमें अपनी पात्रता सिद्ध करनी पड़ेगी।

अिसके लिअे बहुतसा धन चाहिये। फिर भी, अुस पर जोर देनेकी जरूरत नहीं। जिसे राष्ट्रीय शिक्षा देनी है, वह सीखा हुआ न होगा, तो मजदूरी करते हुअे सीख लेगा। पढ़-लिखकर अेक पेड़के नीचे बैठेगा और जिन्हें विद्या-दान चाहिये अुन्हें देगा। यह ब्राह्मण-धर्म है, जिसे पालना हो वह अिसे पाल सकता है। अैसे ब्राह्मण पैदा होंगे, तो अुनके आगे धन और सत्ता दोनों सिर झुकायेंगे।

मैं चाहता हूँ और परमात्मासे माँगता हूँ कि 'गुजरात शिक्षा मण्डल' के पास अितनी अटल श्रद्धा हो।

शिक्षामें स्वराज्यकी कुंजी है। राजनैतिक नेता भले ही मॉण्टेग्यू साहबके पास जायँ। यह क्षेत्र भले ही अिस परिषदके लिये खुला न हो, परन्तु शुद्ध शिक्षाके बिना सब प्रयत्न बेकार हैं। शिक्षा अिस परिषदका खास क्षेत्र है। अिसमें हमारी जीत हुअी, तो सब जगह जीत ही जीत समझिये।

('विचारसृष्टि' से)

## ३

# शुद्ध राष्ट्रीय शिक्षा

## (१)

खास कठिनाअी यह है कि लोग शिक्षाका सही अर्थ नहीं समझते। अिस ज़मानेमें जैसे हम ज़मीन या शेयरोंके भाव जाँचते हैं, वैसे ही शिक्षाकी कीमत लगाते हैं — अैसी शिक्षा देना चाहते हैं जिससे लड़का ज्यादा कमाअी कर सके। यह विचार ज्यादा नहीं करते कि लड़का अच्छा कैसे बने। लड़की कोअी कमाअी तो करेगी नहीं, अिसलिअे अुसे शिक्षाकी क्या ज़रूरत, अैसे विचार जब तक रहेंगे, तब तक हम शिक्षाका मूल्य नहीं समझ सकेंगे।

('अिंडियन ओपिनियन' से)

## (२)

. . . जब तक देशमें चरित्रवान शिक्षकों द्वारा विद्या नहीं दी जायगी, जब तक गरीबसे गरीब भारतीयको अच्छीसे अच्छी शिक्षा मिलनेकी स्थिति पैदा नहीं होगी, जब तक विद्या और धर्मका सम्पूर्ण संगम नहीं

होगा, जब तक विद्याका हिंदकी परिस्थितिके साथ सम्बन्ध नहीं जुड़ेगा, जब तक विदेशी भाषामें शिक्षा देनेसे बच्चों और जवानोंके मन पर पड़नेवाला असह्य बोझ दूर नहीं कर दिया जायगा, तब तक अिसमें शक नहीं कि प्रजाका जीवन कभी अूँचा नहीं अुठेगा।

**शुद्ध राष्ट्रीय शिक्षा** हर प्रान्तकी भाषा में दी जानी चाहिये। शिक्षक अूँचे दरजेके होने चाहियें। स्कूल अैसी जगह होना चाहिये, जहाँ विद्यार्थीको साफ हवा-पानी मिले, शान्ति मिले और मकान व आसपासकी ज़मीनसे स्वास्थ्यका सबक मिले। शिक्षण-पद्धति अैसी होनी चाहिये, जिससे भारतके मुख्य धंधों और खास-खास धर्मोंकी जानकारी मिल सके।

अिस तरहके स्कूलका सारा खर्च अुठानेकी अेक मित्रने तैयारी बताअी है। अुनका अुद्देश्य यह है कि अहमदाबादके बच्चोंको अिस स्कूलमें प्रारम्भिक शिक्षा मुफ्त दी जाय। हमारे मित्रकी अिच्छा है कि अैसे स्कूल अहमदाबादमें अेक नहीं, अनेक हों। हम मानते हैं कि अहमदाबादके पासमें, ज़मीन मिल सकती है, मकान बन सकते हैं; परन्तु हम जानते हैं कि अच्छी शिक्षा पाये हुअे चरित्रवान शिक्षक मिलना मुश्किल हो सकता है। गुजरातके शिक्षित लोगोंको हम बताना चाहते हैं कि अुन्हें अिस रास्तेकी तरफ नजर घुमानी चाहिये। महाराष्ट्रका शिक्षित वर्ग जितना त्याग करता है, अुसका चतुर्थांश भी गुजरातका शिक्षित वर्ग नहीं करता। हमारे मित्रकी योजनामें अैसा तो कहीं नहीं है कि वेतन बिलकुल न दिया जाय। अिस योजनामें यह सहूलियत रखी गअी है कि शिक्षकको अपनी गुजारेके लायक रुपया मिलता रहे। परन्तु जो शिक्षक अपनी कमाअीकी हद नहीं बाँध सकता, वह अैसे स्कूलमें ओतप्रोत नहीं हो सकता।

नवजीवन, २१-९-'१९

## (३)

आजकल हिन्दुस्तानमें स्वराज्यकी पुकार हो रही है। केवल पुकार करनेसे ही स्वराज्य मिलनेवाला हो, तब तो अभी तक कभीका मिल

गया होता । पुकारकी ज़रूरत तो है, परन्तु केवल पुकारसे काम नहीं बन सकता । जहाँ-जहाँ स्वराज्य मिला है, वहाँ-वहाँ स्वराज्यकी पुकार करनेसे पहले अिस विषयकी हलचल भी समाजमें हुआी मालूम देती है । लोगोंमें स्वतंत्र विचार करने और स्वतंत्र ढंगसे रहनेका निश्चय और अुसी तरहका बरताव भी देखा गया है । लोगोंकी-शिक्षाका प्रबन्ध लोगोंको ही सौंपा हुआ दीखता है और लोग खुद ही अुसे करते आये हैं । अैसा शक होता है कि यहाँ हम अिससे अुलटे रास्ते पर चलते आये हैं । आज स्वराज्यकी पुकार तो है, परन्तु आम लोगोंमें स्वतंत्र विचार बहुत नहीं दिखाअी देता । स्वतंत्र वृत्तिका रहन-सहन कहीं नहीं दीखता । दीखता भी है, तो बहुत कम। **हमारी शिक्षा पूरी तरह विदेशी** है । अिस लेखमें अिस विदेशी शिक्षाका ही विचार करना है । राष्ट्रीय शिक्षाके बिना सब व्यर्थ है । स्वराज्य आज मिले या कल, परन्तु राष्ट्रीय शिक्षाके बिना वह टिक न सकेगा । आजकल भारतमें मिलनेवाली शिक्षा विदेशी मानी गअी है । पहले पाँच सालको छोड़कर बाकीकी सारी शिक्षा विदेशी भाषामें दी जाती है । शुरूके पाँच वर्षोंमें, जो सबसे ज्यादा अुपयोगी और महत्त्वके हैं, चाहे जैसे शिक्षकों द्वारा शिक्षा दी जाती है । और अुसके बाद अंग्रेजी शुरू होती है । अुस शिक्षामें *बच्चोंको अेक अलग ही दुनियाकी कल्पना दी जाती है* । बच्चोंकी शिक्षाका अुनके घरके साथ — घरकी परिस्थितियोंके साथ कोअी सम्बन्ध नहीं होता । आज तक बच्चे ज़मीन पर बैठकर खुशीसे पढ़ते थे, परन्तु अब वे बड़ी पाठशालामें आ गये; अब अुन्हें बेन्चें चाहियें । घर पर तो अभी तक ज़मीन पर बैठनेका ही रिवाज है । आज तक लड़का हिन्दू होता, तो धोती, कुरते और अँगरखेसे और मुसलमान होता तो धोतीके बजाय पाजामेसे ही सन्तोष मानता था, परन्तु अब अुसके लिअे ज्यादातर कोट-पतलून ही चाहिये । आज तक अुसका काम नरसलकी कलमसे चलता था, परन्तु अब 'स्टीलपेन' चाहिये । अिस तरह अुसके बाहरी जीवनमें फेरफार हुअे । घरके और स्कूलके रहन-सहनमें फर्क पड़ा । धीरे-धीरे

परन्तु निश्चित रूपसे अुसके भीतरी जीवनमें भी परिवर्तन होने लगता है। अुसके जीवनमें जो परिवर्तन हुआ है, अुससे अुसके घरमें या घरके रहन-सहनमें क्या परिवर्तन होनेवाला है? माँ-बापको तो अिसकी कल्पना भी नहीं कि बच्चोंको क्या शिक्षा मिल रही है। और अुसके विषयमें अुनकी श्रद्धा तो और भी कम है।

माँ-बाप अितना ही जानते हैं कि अिस शिक्षासे रुपया पैदा किया जा सकता है। और अितनेसे अुन्हें संतोष होता है। यह स्थिति बहुत दिन रही, तो हम सब विदेशी हो जायँगे! हम जो आन्दोलन करते हैं, अुससे मिलनेवाले स्वराज्यके भी विदेशी हो जानेका डर है। आज देश जिस चीज़से दब गया है, वही चीज़ स्वराज्य मिल जानेके बाद भी जारी रह सकती है। अिस डरसे छूटनेका अेक ही अुपाय है, और वह है शिक्षाकी पद्धति बदलनेका। **राष्ट्रीय शिक्षामें :**

१. शिक्षा मातृभाषामें दी जाय।

२. शिक्षा और घरकी स्थितिके बीच आपसमें मेल रहे।

३. शिक्षा अैसी होनी चाहिये, जिससे ज्यादातर लोगोंकी ज़रूरतें पूरी हों।

४. प्राथमिक शालाके शिक्षक ठेठ पहली कक्षासे चरित्रवान होने ही चाहियें।

५. शिक्षा मुफ्त दी जानी चाहिये।

६. शिक्षाकी व्यवस्था पर जनताका अंकुश होना चाहिये।

**शिक्षा मातृभाषामें दी जानी चाहिये** — यह चीज़ हमें साबित करनी पड़ती है, यही हमारे लिअे शर्मकी बात है।

हम अंग्रेजी भाषाके प्रभावसे यदि चौंधिया न गये होते, तो हमें अिस स्वयंसिद्ध चीज़को सिद्ध करनेकी ज़रूरत ही नहीं रह जाती। अंग्रेजी भाषाके हिमायती कहते हैं :

१. अंग्रेजी भाषा द्वारा ही देशमें जाग्रति हुअी है।

२. अंग्रेजी साहित्य अितना विस्तीर्ण है कि अुसे छोड़ना दुर्भाग्यकी बात होगी। अुस साहित्यको हमारी भाषामें नहीं लाया जा सकता।

३. अंग्रेजी भाषाके द्वारा ही हम अपनी अेकताकी भावनाको प्राप्त कर सकते हैं। भारतकी कअी भाषाओंके पोषण और वृद्धिका प्रयत्न करना अूपर कही हुअी अेकताकी दृष्टिको संकुचित करनेके बराबर है; और हम अेक राष्ट्र हैं, अिस बढ़ी हुअी भावनाको पीछे हटाने जैसा है।

४. अंग्रेजी शासकोंकी भाषा है।

अंग्रेजीके हिमायतियोंके मुख्य विचार ये हैं। अुनके और भी विचार और कथन हैं, परन्तु अुनमें अूपर कही हुअी बातोंसे ज्यादा कुछ भी सार या महत्त्व नहीं है।

यह कहना कि अंग्रेजी भाषासे ही जाग्रति हुअी है, अर्धसत्य है। देशमें आजकल जो शिक्षा दी जाती है, वह सारी ही अंग्रेजी भाषामें दी जाती है। हिन्दू जनता कोअी नामर्द नहीं। अिसलिअे अुसे जो कुछ अुसमें से मिला, अुसका अुसने अुपयोग किया। अितना होने पर भी कुल मिलाकर जो नतीजा निकला, वह निराशा ही पैदा करता है। यह सभी मानते हैं कि आजकी शिक्षामें बहुत बड़े दोष हैं। पचास सालकी शिक्षासे जिन परिणामोंकी आशा रखनेका हमें अधिकार था, अुतना फल नहीं मिला। यह क्यों हुआ? यदि पहलेसे ही मातृभाषा द्वारा शिक्षा दी जाती, तो आज अुसके सुन्दर परिणाम दिखाअी देते। जो बात अंग्रेजी जाननेवाले मुट्ठीभर लोगोंको ही मालूम है, वही बात करोड़ों आदमियोंमें फैली होती। जो जोश या शक्ति अंग्रेजी पढ़े थोड़ेसे लोग दिखा सकते हैं, वही जोश और शक्ति आज करोड़ों लोग दिखा सके होते। और हमारे नौजवान आज जो कॉलेजसे निस्तेज होकर निकलते हैं और नौकरी ढूँढ़ते फिरते हैं, अुसके बजाय रटाअीसे बचनेके कारण अुनका शरीर और बुद्धि ज्यादा बलवान होते, और नौकरीको घटिया चीज़ समझकर अुन्होंने अिसका तिरस्कार किया होता।

अंग्रेजी साहित्य छोड़ देनेके लिअे किसीने नहीं कहा। अुस साहित्यका हमने अलग-अलग भाषाओंमें अनुवाद किया होता। जिस तरह जापान, दक्षिण अफ्रीका आदि देशोंमें होता है, वैसा ही हमने भी किया होता। जापानमें कुछ लोगोंको अुत्तम जर्मन और कुछको अुत्तम फ्रेंच भाषा सिखाअी जाती है। अिनका काम अुन-अुन भाषाओंमें से अच्छे-अच्छे रत्न ढूँढ़कर अुन्हें जापानी भाषाके द्वारा जापानमें लाना होता है। अैसा नहीं है कि जर्मनीको अंग्रेजी भाषासे कुछ भी लेनेका नहीं होता। परन्तु अिससे सारे जर्मन थोड़े ही अंग्रेजी पढ़ने लगते हैं। अेक भी जर्मन अपनी शिक्षा अंग्रेजी भाषामें नहीं लेता। थोड़ेसे ही जर्मन अंग्रेजी सीखकर अुसमें से नअी-नअी बातें जर्मन भाषामें अुतारते हैं और अपनी मातृभाषाकी सेवा करते हैं। हमें भी अैसा ही करना चाहिये।

हमें अेकताकी भावना अंग्रेजी भाषासे मिली है, अिस बारेमें सच्ची बात यह है कि अंग्रेजी भाषा हमारे यहाँ दाखिल हुअी, अुसके बाद ही हममें अैसा भ्रम पैदा हुआ कि हम अलग-अलग हैं और बादमें हमने अेक होनेका प्रयत्न किया। हम बहुतसे देशोंमें देखते हैं कि भाषाकी अेकता जनताकी अेकताका अनिवार्य चिन्ह नहीं है। दक्षिण अफ्रीकामें दो भाषाअें हैं। परन्तु स्वार्थ अेक होनेके कारण जनता अेक होने लगी है। कनाडामें भी अैसा ही है। अिंग्लैण्ड, स्कॉटलैण्ड और वेल्समें आज भी तीन भाषाअें बोली जाती हैं। वेल्सकी भाषाकी जाग्रतिके लिअे मि० लॉयड जॉर्ज बहुत प्रयत्न कर रहे हैं। फिर भी अिन तीनों देशोंमें यह भावना जोरोंसे फैल रही है कि हम अेक ही राष्ट्र हैं। अलग-अलग भाषाका विकास करनेसे लोगोंमें जाग्रति पैदा होगी। अुन्हें अपनी स्थिति समझमें आयेगी। वे यह समझ सकेंगे कि हम अलग-अलग प्रान्तोंके लोग अेक ही नावमें बैठे हैं। अिस तरह भाषाका भेद भूलकर और अपना स्वार्थ समझकर ये सब लोग नावकी गति बढ़ानेके लिअे और अुसे सुरक्षित रखनेके लिअे तैयार होंगे और तैयार रहेंगे। और सुशिक्षित लोगोंके लिअे

हिन्दी भाषाको सर्वसामान्य मानना पड़ेगा । हिन्दी सीखनेका प्रयत्न अंग्रेजी सीखनेके प्रयत्नके सामने कुछ भी नहीं है ।

अंग्रेजी ही शासकोंकी भाषा है, जिससे जितना ही तो सिद्ध होता है कि हममें से कुछ लोगोंको अंग्रेजी सीखनी चाहिये । मैं जो कुछ कहता हूँ, उसमें मेरा अंग्रेजी भाषासे कोई द्वेष नहीं, सिर्फ उसे अपनी जगह पर रखनेका ही आग्रह है । अपनी जगह पर वह अच्छी लगेगी और सब उसकी ज़रूरत समझेंगे । वह शिक्षाका माध्यम नहीं हो सकती । वह हमारे आपसी व्यवहारकी भाषा नहीं बन सकती । हमारे स्कूलोंमें ऊँचीसे ऊँची शिक्षा हर प्रान्तकी भाषाके द्वारा ही देनेकी ज़रूरत है ।

**शिक्षा और घरकी दुनियामें मेल होना चाहिये,** यह बात स्वतः सिद्ध है । आज दोनोंमें यह एकता नहीं पाई जाती । राष्ट्रीय शिक्षामें यह बात ध्यानमें रखनी ही पड़ेगी ।

**शिक्षा अधिकतर जनताकी ज़रूरतें पूरी करनेवाली होनी चाहिये,** इस तीसरी बात पर विचार करें । *जनताका बहुत बड़ा भाग किसानोंका है । दूसरे लोगोंका नंबर उनके बाद आता है । यदि हमारे लड़कोंको शुरूसे ही खेती और बुनाईका ज्ञान होता, यदि वे इन दोनों वर्गोंकी ज़रूरतें समझते होते, यदि इन वर्गोंको अपने धन्धेका शास्त्रीय ज्ञान मिला होता, तो आज किसान खुशहाल होते । हमारे ढोर दुबले और निकम्मे न दीखते । हमारे किसान गरीबीके कारण कर्जके बोझसे दब न गये होते । हमारे लोग लगभग नामशेष न बन गये होते । हमारी पैदावार कच्चे मालके रूपमें ही परदेश जाकर, वहाँके कारीगरोंके हाथों तैयार होकर, हमारे देशमें लौटकर हमें शरमिन्दा न करती । और हम हर साल सूती कपड़ेके बदलेमें इंग्लैण्डको ८५ करोड़ रुपया न देते होते । इस शिक्षाने हमें मालिक न बनाकर गुलाम बना दिया है ।*

**नीचेके प्राथमिक दर्जोंके शिक्षक ज़रूर चरित्रवान होने चाहियें,** अब इस चौथी बात पर आते हैं । अंग्रेजीमें कहावत है

कि 'बालक मनुष्यका पिता है।' अिसी तरह हम लोगोंमें भी अेक कहावत है कि 'पूतके पाँव पालनेमें झलकते हैं'। कोमल बाल्यावस्थामें हम अपने बच्चोंको चाहे जैसे शिक्षकोंके हाथों सौंप दें और यह आशा रखें कि वे शक्तिशाली निकलेंगे, तो यह काँचके बीज बोकर मोगरेके फूलोंकी आशा रखने जैसी बात होगी। छोटे बच्चोंके लिअे अुत्तमसे अुत्तम शिक्षक रखनेमें हमें रुपयेकी रत्ती भर परवाह न करनी चाहिये। हमारे पुरखोंके समयमें हमारे बच्चोंको ऋषि-मुनियोंसे शिक्षा मिलती थी।

**शिक्षा मुफ्त मिलनी चाहिये,** यह हमने पाँचवीं चीज़ गिनी है। विद्यादानका सम्बन्ध रुपयेसे न होना चाहिये। जैसे सूर्य सबको अेकसा प्रकाश देता है, बरसात जैसे सबके लिअे बरसती है, अुसी तरह विद्या-वृष्टि सब पर बराबर होनी चाहिये।

अन्तमें अिस बात पर पहुँचे कि **शिक्षाकी व्यवस्था पर जनताका अंकुश होना चाहिये**। अिसी अंकुशमें प्रजा-शिक्षण भी रहा हुआ है। यह अंकुश हाथमें होगा, तभी लोगोंको अपने बच्चोंकी शिक्षाके बारेमें भरोसा होगा और अपनी जिम्मेदारी महसूस होगी। और जब शिक्षाको अैसा स्थान मिलेगा, तब स्वराज्य माँगते ही मिल जायगा।

अैसी शिक्षा जारी करना हमारा फ़र्ज़ है। अिस प्रकारकी शिक्षाकी माँग सरकारसे करनेका हमारा अधिकार है। परन्तु जब हम स्वयं अुसे शुरू करेंगे, तभी सरकारसे अुसकी माँग कर सकेंगे। परन्तु अिस लेखका विषय यह नहीं कि हमें राष्ट्रीय शिक्षा देनेके लिअे क्या-क्या करना चाहिये। पहले लोगों द्वारा अूपरके विचार स्वीकृत होने दीजिये।*

## (४)

## खेती और बुनाअीकी शिक्षाका स्थान

यदि हम चाहते हों कि हमारे बच्चे अपने पैरों पर खड़े रहें और दूसरोंके सहारे न रहें, तो हमें अुन्हें सम्पूर्ण औद्योगिक शिक्षा देनी

* 'आत्मोद्धार' (पु० १, पृ० २१३-१६) मराठी मासिकसे।

चाहिये। हमारे देशमें सौमें से पच्चासी आदमी खेती करते हैं और दस आदमी किसानोंकी ज़रूरतें पूरी करनेका काम करते हैं, वहाँ खेती और हाथकी बुनाअीको हर बालककी अच्छी व्यावहारिक शिक्षामें ज़रूर शामिल करना चाहिये। अैसी शिक्षा पाया हुआ विद्यार्थी जीवन-संग्राममें बेकार या किंकर्तव्य-विमूढ़ नहीं रहेगा। सफ़ाअी, स्वास्थ्यके नियम और प्रजासंगोपनशास्त्र तो ज़रूर सिखाने चाहियें।*

## ४

## शिक्षाका मध्यबिन्दु

जब शिक्षामें चरित्र-गठनसे अक्षरज्ञान पर ज़्यादा ज़ोर दिया जा रहा है, तब आचार्य जैक्सके लेखमें से नीचेका अुद्धरण देना बहुत अुपयोगी होगा:

"हमारा जीवन अेक अनन्त गतिवाले चक्रकी तरह है, जिसमें विज्ञानकी प्रगति ज्यों-ज्यों होती जाती है, त्यों-त्यों यह सवाल दूर-दूर होता जा रहा है कि विज्ञानका अुपयोग कैसे किया जाय। प्रगतिशील विज्ञान जिस हद तक पहुँचा है, अुसके अुपयोगकी जिम्मेदारी अुससे बहुत दूर चली गअी है। अिस तरह विज्ञान और जिम्मेदारीकी जो होड़ हो रही है, अुसमें जिम्मेदारी हमेशा आगे ही रहती है। विज्ञानकी अपनी जिम्मेदारी पूरी न कर सकनेकी अिस कमजोरीको ही मैं विज्ञानकी मर्यादा कहता हूँ। विज्ञान सीखकर आप बन्दूक बनाना सीख जायँगे, परन्तु विज्ञान यह नहीं सिखाता कि बन्दूक कब चलानी और किस पर चलानी चाहिये। आप कहते हैं कि यह काम नीतिशास्त्रका है। मेरा जवाब यह है कि नीतिशास्त्र जहाँ मुझे बन्दूकका योग्य अुपयोग सिखाता है, वहाँ साथ ही अुसका दुरुपयोग भी सिखाता है। और क्योंकि, अुसके दुरुपयोगसे बहुत बार मेरा स्वार्थ ज़्यादा अच्छी तरह सधता है,

* 'आशीर्वाद' (पु० १, पृ० ५६)

अिसलिअे मेरे नीतिशास्त्रके ज्ञानसे तो मेरे पड़ोसीका मेरे हाथसे गोली खाने और लुटनेका डर घटने ही वाला है। दुष्ट आदमीके हाथमें नीतिशास्त्रका हथियार आनेसे ही तो वह शैतान कहलाता है। शैतानको लंदनकी युनिवर्सिटीकी नीतिशास्त्रकी परीक्षाका प्रश्नपत्र दिया जाय, तो वह ज़रूर सारे अिनाम ले जाय। अिस तरह अेक हद तक नीतिशास्त्र और भौतिकशास्त्र दोनों अेक-दूसरेके मुँहमें थूकनेवाले हैं। तो जिस जिम्मेदारीको विज्ञान कभी पूरा नहीं कर सकता, अुसे हम क्या कहेंगे? मैंने अिसे जीवन कहा है, दूसरे लोग अिसे आत्मा या अन्तरात्मा कहते हैं या संकल्पशक्ति कहते हैं। अिसे हम चाहे जो नाम दें, परन्तु अितना मान लेना काफी है कि अिसकी हस्ती स्वीकार करनेमें ही मानव-समाजका भविष्य समाया हुआ है। शिक्षाका फर्ज यही है। विज्ञानकी जिम्मेदारी — बस अिसी चीज़के आगे शिक्षाकी सारी हिम्मत और धर्मकी सारी प्रवृत्ति रुक जाती है। यदि और सब बातोंकी सावधानी रखते हुअे अिस चीज़की असावधानी रखेंगे, तो हमें हाथ मलकर पछताना पड़ेगा।"

नवजीवन, ३–१०–'२६

## ५

# सत्याग्रह आश्रम *

पिछले साल बहुतसे विद्यार्थी मुझसे यहाँ बात करने आये थे। अुस समय मैंने अुनसे कहा था कि भारतके किसी भागमें मैं अेक संस्था या आश्रम खोलनेकी तैयारी कर रहा हूँ। अिसलिअे मैं आज आपके सामने सत्याग्रह आश्रमके बारेमें बोलनेवाला हूँ। मुझे लगता है और मेरे सारे सार्वजनिक जीवनमें मुझे यह महसूस हुआ है कि हमें जिस चीज़की ज़रूरत है, जिसकी हर राष्ट्रको ज़रूरत है, परन्तु दुनियाके दूसरे सब राष्ट्रोंके बनिस्वत हमें जिस समय जिसकी सबसे ज्यादा ज़रूरत है,

* यह भाषण फरवरी १९१७ में मद्रासमें दिया गया था।

वह यही है कि हम चरित्रका विकास करें । यही विचार हमारे देशभक्त गोखलेजीने प्रकट किया था । आप यह जानते होंगे कि अुन्होंने अपने बहुतसे भाषणोंमें यह कहा था कि जब तक हमारे पास अपने मनकी अिच्छाओंको सहारा देनेवाला चरित्रबल नहीं है, तब तक हमें कुछ नहीं मिलेगा, हम किसी लायक नहीं बनेंगे । अिसीलिअे अुन्होंने भारत सेवक समाज नामकी महान संस्था खोली है । आप जानते होंगे कि अुस समाजकी जो रूपरेखा बताअी गअी थी, अुसमें श्री गोखलेने विचार-पूर्वक कहा था कि हमारे देशके राजनैतिक जीवनको धार्मिक बनानेकी ज़रूरत है । आप यह भी जानते होंगे कि वे बारबार कहते थे कि हमारे चरित्रबलका औसत युरोपकी अधिकतर जनताके चरित्रबलके औसतसे कम है । मैं अुन्हें अभिमानके साथ अपना राजनैतिक गुरु मानता हूँ । परन्तु यह नहीं कह सकता कि अुनका यह कथन सचमुच आधारभूत है या नहीं । फिर भी मैं अितना तो मानता ही हूँ कि शिक्षित भारतका विचार करते समय अुसके पक्षमें बहुत कुछ कहा जा सकता है; और अिसका कारण यह नहीं कि हमारे शिक्षित वर्गने भूल की है, बल्कि यह है कि हम परिस्थितियोंके शिकार हुअे हैं । कुछ भी हो, परन्तु मैंने अिसे जीवनका सूत्र माना है कि कोअी भी आदमी कितना ही बड़ा क्यों न हो, जब तक अुसको धर्मका सहारा न होगा, तब तक अुसका किया कोअी भी काम सचमुच सफल नहीं होगा । परन्तु धर्मका अर्थ क्या ? यह सवाल तुरन्त पूछा जायगा । मैं तो यह जवाब दूँगा कि दुनियाके सारे धर्मग्रंथ पढ़ने पर भी सच्चा धर्म नहीं मिल सकता । धर्म सचमुच बुद्धिग्राह्य नहीं, बल्कि हृदयग्राह्य है । यह हमसे अलग कोअी दूसरी चीज़ नहीं । यह अैसी चीज़ है, जिसका हमें अपने भीतरसे ही विकास करनेकी ज़रूरत है । वह हमेशा हमारे भीतर ही है । कुछ लोगोंको अुसका पता होता है, कुछको ज़रा भी नहीं होता । परन्तु यह तत्त्व अुनमें भी रहता तो है । हम अपने भीतरकी अिस धार्मिक वृत्तिको बाहरी या भीतरी साधनसे जगा लें, भले ही तरीका कुछ भी हो । और यदि हम कोअी

भी काम बाकायदा और चिरकाल तक टिकनेवाला करना चाहते हों, तो अिस वृत्तिको जगाना ही पड़ेगा ।

हमारे शास्त्रोंने कुछ नियम जीवनके सूत्र और सिद्धान्तके रूपमें बताये हैं, जिन्हें हमें स्वयंसिद्ध सत्यके तौर पर मान लेना है । शास्त्र हमें कहते हैं कि अिन नियमों पर अमल न किया जायगा, तो धर्मका थोड़ा बहुत दर्शन भी नहीं कर सकेंगे। बरसोंसे मैं अिन नियमोंको पूरी तरह मानता हूँ और शास्त्रकी अिन आज्ञाओं पर अमल करनेका सचमुच प्रयत्न करता रहा हूँ । अिसलिअे सत्याग्रह आश्रम खोलनेमें मेरे जैसे विचारवालोंकी मदद लेना मैंने ठीक समझा है । जो नियम बनाये गये हैं और जिनका हमारे आश्रममें रहनेकी अिच्छा करनेवाले सभीको पालन करना है, वे मैं आपके सामने रखना चाहता हूँ ।

नियमोंमें से पाँच **यम**के नामसे प्रसिद्ध हैं । सबसे पहला और ज़रूरी नियम **सत्यव्रत**का है । हम सामान्य रूपमें सत्य अिसे मानते हैं कि यथासंभव असत्यका अुपयोग न किया जाय, यानी यह समझते हैं कि 'सत्य ही सर्वोत्तम नीति है', अिस कथनका अनुसरण करनेवाली बात ही सत्य है । परन्तु सिर्फ यही सत्य नहीं है। क्योंकि अिसमें यह अर्थ भी आ जाता है कि यदि वह सबसे अच्छी नीति न हो, तो अुसे हम छोड़ दें । परन्तु जिस सत्यको मैं समझाना चाहता हूँ, वह यह है कि हमें चाहे जितना कष्ट अुठा कर भी अपना जीवन सत्यके नियमोंके अनुसार बिताना चाहिये । सत्यका यह स्वरूप समझानेके लिअे मैंने प्रह्लादजीके जीवनका प्रसिद्ध दृष्टान्त लिया है । अुन्होंने सत्यकी खातिर अपने पिताका सामना करनेकी हिम्मत की थी। अुन्होंने प्रतिकार करके या अपने पिताके जैसा बरताव करके अपनी रक्षा करनेका प्रयत्न नहीं किया । परन्तु अपने पिताकी तरफ़से अपने पर होनेवाले हमलों या अपने पिताकी आज्ञासे दूसरोंके किये हुअे प्रहारोंके बदलेमें प्रहार करनेकी परवाह किये बिना अुन्होंने स्वयं जिसे सत्य समझा था, अुसकी रक्षाके लिअे वे जान देनेको तैयार थे । अितना ही नहीं, अुन्होंने हमलोंसे बचना भी नहीं

चाहा था। जिसके बजाय जो हजारों अत्याचार अुन पर किये गये, अुन सबको अुन्होंने हँसकर सह लिया। नतीजा यह हुआ कि अंतमें सत्यकी जय हुअी। परन्तु प्रह्लादजीने ये सब अत्याचार अिस विश्व से सहन नहीं किये थे कि किसी दिन आपने जीतेजी ही वे सत नियमकी अटलता दिखा सकेंगे। बल्कि अत्याचारसे अुनकी मौत जाती, तो भी वे सत्यसे चिपटे रहते। मैं अैसे सत्यका सेवन क चाहता हूँ। कल मैंने अेक घटना देखी। वह थी तो बहुत छोटे परन्तु मैं समझता हूँ कि जैसे तिनका हवाका रुख बताता है, वैसे ही मामूली घटनाओं भी मनुष्यके हृदयकी वृत्तिको बताती हैं।" घटना य थी : अेक मित्र मुझसे खानगी बात करना चाहते थे; अिसलिअे वे अ में अेकान्तमें गये और बातें करने लगे। अितनेमें अेक तीसरे मित्र आ और अुन्होने सभ्यताके नाते पूछा : "मैंने आपकी बातचीतमें बाधा त नहीं डाली?" जिस मित्रके साथ मैं बातें कर रहा था, वे बोले "नहीं, हम कोअी खानगी बात नहीं कर रहे हैं।" मुझे थोड़ अचंभा हुआ, क्योंकि मुझे अेकान्तमें ले जाया गया था और मैं जानत था कि हमारी बातचीत अिस मित्रसे खानगी थी। परन्तु अुसने तुरन विनयके नाते — मैं तो अुसे जरूरतसे ज्यादा विनय कहूँगा — कहा "हमारी बातचीत कोअी खानगी नहीं। आप (पीछेसे आनेवाले मित्र भले ही हमारे पास आअिये।" मैं कहना चाहता हूँ कि मैंने सत्यक जो लक्षण बताया है, यह व्यवहार अुसके अनुसार नहीं है। मैं मानत हूँ कि अुस मित्रको यथासंभव नम्रतासे परन्तु स्पष्ट और शुद्ध मनसे सामनेवाले मित्रको — जो सज्जन होता है, और जहाँ तक किसीक व्यवहार सज्जनताके विरुद्ध न हो, तब तक हम हरअेकको सज्जन माननेके लिअे बँधे हुअे हैं — बुरा न लगनेवाले ढंगसे यह कहना चाहिये था कि "आपके कहे मुताबिक, आपके यहाँ आनेसे हमारी बातचीतमें बाधा पड़ेगी।" परन्तु मुझे शायद यह कहा जायगा कि अिस तरहका व्यवहार तो लोगोंकी नम्रता बताता है। मुझे लगता है कि अैसा कहना जरूरतसे

ज्यादा है । नम्रताके नाते हम अैसा कहते रहेंगे, तो हमारी प्रजा अवश्य ही दांभिक बन जायगी । अेक अंग्रेज मित्रके साथ हुअी बातचीत मुझे याद आती है । अुनके साथ मेरी जान-पहचान बहुत नहीं थी । वे अेक कॉलेजके प्रिन्सिपाल हैं और बहुत सालसे भारतमें रहते हैं । मेरे साथ अेक बार वे कुछ चर्चा कर रहे थे । अुस समय अुन्होंने मुझसे पूछा : "आप यह बात मानेंगे या नहीं कि जब भारतीयोंको किसी बातसे अिनकार करना चाहिये, तब भी वे अिनकार करनेकी हिम्मत नहीं दिखाते? यह हिम्मत अधिकतर अंग्रेजोंमें है.।" मुझे कहना चाहिये कि मैंने तुरन्त 'हाँ' कह दिया; अुस बातसे मैं सहमत हो गया । जिस आदमीको ध्यानमें रखकर हम बोलते हैं, अुसकी भावनाओंकी अिज्जत करनेके लिअे हम साफ तौर पर और हिम्मतके साथ 'ना' करनेमें आनाकानी करते हैं । हमारे आश्रममें हमने अेक नियम अैसा रखा है कि हम किसी बातके लिअे अिनकार करना चाहें, तो हमें नतीजेकी परवाह न करके अिनकार कर देना चाहिये । अिस तरहका **सत्यव्रत** हमारा पहला नियम है ।

अब हम **अहिंसा व्रत**का विचार करेंगे । अहिंसाका शब्दार्थ 'न मारना' है । परन्तु मुझे अिसमें बड़ा अर्थ समाया हुआ दीखता है । अहिंसाका अर्थ 'न मारना' मात्र करनेसे मैं जिस स्थानमें पहुँचता हूँ, अुससे कहीं अूँचे — बहुत अूँचे — स्थानमें अहिंसामें रहा हुआ अगाध अर्थ मुझे ले जाता है । अहिंसाका सच्चा अर्थ यह है कि हम किसीको नुकसान न पहुँचाअें; जो अपनेको हमारा शत्रु मानता हो, अुसके लिअे भी हम अनुदार विचार न रखें । अिस विचारके मर्यादित रूप पर जरा ध्यान दीजिये । मैं यह नहीं कहता कि 'जिसे हम अपना शत्रु मानते हों', बल्कि यह कहता हूँ कि 'जो अपनेको हमारा शत्रु समझता हो'। क्योंकि जो अहिंसा धर्म पालता है, अुसके लिअे कोअी शत्रु हो ही नहीं सकता; वह किसीको शत्रु समझता ही नहीं । परन्तु अैसे लोग होते हैं जो अपनेको अुसका शत्रु मानते हैं, और अिसके लिअे वह

लाचार है। परन्तु अैसे आदमियोंके लिअे भी बुरे विचार नहीं रखे जा सकते। हम अींटके बदले पत्थर फेंकें, तो हमारा बरताव अहिंसा धर्मके खिलाफ ठहरेगा। पर मैं तो अिससे भी आगे जाता हूँ। हम अपने मित्रकी प्रवृत्ति या कथित शत्रुकी प्रवृत्ति पर गुस्सा करें, तो भी हम अहिंसाके पालनमें पिछड़ जाते हैं। मैं यह नहीं कहता कि हम गुस्सा न करें, यानी हम सिर झुका दें। मैं यह कहना चाहता हूँ कि गुस्सा करनेका मतलब यह चाहना है कि शत्रुको किसी तरहकी हानि पहुँचे, या अुसे दूर कर दिया जाय, फिर भले ही अैसा हमारे हाथसे न होकर किसी दूसरेके हाथसे हो, या दिव्यसत्ता द्वारा हो। अिस तरहका विचार भी हम अपने मनमें रखेंगे, तो हम अहिंसा धर्मसे हट जायँगे। जो आश्रममें शामिल होते हैं, अुन्हें अहिंसाका यह अर्थ अक्षरशः स्वीकार करना पड़ता है। अिससे यह न समझना चाहिये कि हम अहिंसाका धर्म पूरी तरह पालते हैं। अैसी कोअी बात नहीं। यह तो अेक आदर्श है, जिसे हमें प्राप्त करना है; और हममें शक्ति हो, तो यह आदर्श अिसी क्षण प्राप्त करने जैसा है। परन्तु यह कोअी भूमितिका सिद्धांत नहीं, जिसे हम जबानी याद कर लें। अूँचे गणितके कठिन प्रश्न हल करने जैसी बात भी नहीं है। अुन प्रश्नोंको हल करनेसे यह काम कहीं ज्यादा कठिन है। हममें से बहुतोंने अिन सवालोंको समझनेके लिअे जागरण किया है। हमें यह व्रत पालना हो, तो जागरणके सिवाय भी बहुत कुछ करना पड़ेगा। हमें बहुतसी रातें आँखोंमें निकालनी होंगी और हम यह ध्येय पूरा कर सकें या अुसे देख भी सकें, अुससे पहले बहुतेरी मानसिक व्यथाअें और वेदनाअें हमें सहनी पड़ेंगी। यदि हम यह समझना चाहते हैं कि धार्मिक जीवनका क्या अर्थ है, तो आपको और मुझे यह ध्येय अवश्य प्राप्त करना होगा। अिससे ज्यादा मैं अिस सिद्धान्त पर नहीं बोलूँगा। जो आदमी अिस व्रतकी शक्तिमें विश्वास रखता है, अुसे आखिरी मंजिल पर यानी जब अुसका ध्येय पूरा होनेको आता है, तब सारी दुनिया अपने चरणोंमें आकर पड़ती दीखती है। यह बात नहीं कि वह सारी

दुनियाको अपने पैरोंमें गिराना चाहता है, पर अैसा होता ही है। यदि हम अपना प्रेम अपने कथित शत्रु पर अिस तरह बरसायें कि अुसका असर अुस पर हमेशा बना रहे, तो वह भी हमें चाहने लगेगा। अिसमें से अेक विचार यह भी निकलता है कि अिस नियमके अनुसार योजना बनाकर की जानेवाली खून-खराबी और खुले आम किये जानेवाले खून नहीं हो सकते। और देशके लिअे या हमारे आश्रित प्रियजनोंकी अिज्जत बचानेके लिअे भी हम किसी तरहका जुल्म नहीं कर सकते। यह तो अिज्जतकी तुच्छ प्रकारकी रक्षा कही जा सकती है। अहिंसा धर्म हमें यह सिखाता है कि हमें अपने आश्रितोंकी अिज्जत अधर्म करनेको तैयार हुअे आदमीके आगे अपनी कुरबानी करके बचानी चाहिये। बदलेमें मारनेके लिअे शरीर और मनकी जितनी बहादुरी चाहिये, अुससे ज्यादा बहादुरी अपनेको कुरबान कर देनेके लिअे चाहिये। हममें किसी हद तक शरीरबल — शौर्य नहीं — हो सकता है और अुस बलको हम काममें लेते हैं। पर जब वह खतम हो जाता है, तब क्या होता है? सामनेवाला आदमी गुस्सेमें भर जाता है और अुसकी शक्तिके साथ अपनी शक्तिका मुकाबला करके हम अुसे और अुकसाते हैं; और जब वह हमें अधमरा कर देता है, तब वह अपनी बची हुअी शक्तिका अुपयोग हमारे आश्रित लोगों पर करता है। परन्तु हम अुस पर बदलेमें वार न करें और अपने आश्रितों और शत्रुके बीचमें डट कर खड़े हो जायें, और बदलेमें वार किये बिना अुसके प्रहार सहते रहें, तो क्या होगा? मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि अुसकी सारी शक्ति हम पर खर्च हो जायगी और हमारे आश्रितोंको किसी भी तरहकी हानि नहीं पहुँचेगी। जो देशाभिमान अिस समय युरोपमें चल रहे युद्धको स्वीकार करता है, अुस देशाभिमानकी अिस तरहके जीवनमें कल्पना भी नहीं की जा सकती।

हम ब्रह्मचर्य व्रत भी लेते हैं। जो जनताकी सेवा करना चाहते हैं या जिन्हें सच्चे धार्मिक जीवनके दर्शन करनेकी आशा है, वे

विवाहित हों या कुँवारे, अुन्हें ब्रह्मचारीका जीवन विताना चाहिये। विवाह स्त्रीको पुरुषके ज्यादा गहरे सम्बंधमें बाँधता है और वे दोनों अेक विशेष अर्थमें मित्र बनते हैं। अुनका वियोग अिस जीवनमें और अगले जन्ममें भी संभव नहीं। परन्तु मैं नहीं समझता कि हमारी विवाहकी कल्पनामें कामको स्थान मिलना ही चाहिये। कुछ भी हो, परन्तु जो आश्रममें शरीक होना चाहते हैं, अुनके सामने यह बात अिस तरह रखी जाती है। मैं अिस पर विस्तारसे बोलना नहीं चाहता।

अिसके अलावा, हम स्वादेन्द्रिय निग्रह व्रत भी पालते हैं। जो आदमी अपनेमें रहनेवाली पशु-वृत्तिको जीतना चाहता है, वह यदि अपनी जीभको वसमें रखता है, तो अैसा आसानीसे कर सकता है। मुझे लगता है कि पालनेके व्रतोंमें यह अेक बहुत कठिन व्रत है। मैं अभी विक्टोरिया होस्टल देखकर आ रहा हूँ। वहाँ मैंने जो कुछ देखा, अुससे मुझे कुछ भी अचंभा नहीं हुआ, यद्यपि मुझे अचंभा होना चाहिये था; परन्तु अब मुझे अिसकी आदत पड़ गअी है। वहाँ मैंने बहुतसे रसोड़े देखे। ये रसोड़े कोअी जाति-भाँतिके नियम पालनेके लिअे नहीं बनाये गये हैं, बल्कि अलग-अलग जगहोंसे आनेवाले लोगोंको अपने अनुकूल और पूरा स्वाद मिले, अिसके लिअे अितने ज्यादा रसोड़े बनानेकी ज़रूरत मालूम हुअी है। अिस तरह हम देखते हैं कि स्वयं ब्राह्मणोंके लिअे भी अलग-अलग विभाग और अलग-अलग रसोड़े हैं, जहाँ अलग-अलग समूहोंके तरह-तरहके स्वादके लिअे रसोअी बनती है। मैं आपको यह बताना चाहता हूँ कि यह स्वादका मालिक नहीं, बल्कि गुलाम बनना है। मैं अितना ही कहूँगा कि जब तक हम अपने मनको अिस आदतसे नहीं छुड़ायेंगे, जब तक हम चाय-कॉफीकी दुकानों और अिन सब रसोड़ों परसे अपनी नज़र नहीं हटायेंगे, जब तक अपने शरीरकी अच्छी तन्दुरुस्ती बनाये रखनेवाली ज़रूरी खुराकसे हम सन्तोष न करेंगे और जब तक हम नशीले और गरम मसाले, जो हम अपने खानेमें डालते हैं, छोड़ देनेको तैयार न होंगे, तब तक हमारे भीतर जो ज़रूरतसे ज्यादा और

अुभाड़नेवाली गरमी है, अुस पर हम कभी काबू नहीं पा सकेंगे । हम अैसा न करेंगे, तो अिसका स्वाभाविक परिणाम यह होगा कि हम अपनेको गिरा देंगे, हमें जो पवित्र अमानत सौंपी गअी है, अुसका भी दुरुपयोग करेंगे और पशु तथा जड़से भी नीचे दर्जेके बन जायेंगे । खाना, पीना और कामोपभोग हममें और पशुओंमें अेकसा है । परन्तु आपने कभी अैसी गाय या घोड़ा देखा है, जो हमारी तरह स्वादका लालची हो? क्या आप मानते हैं कि यह संस्कृतिका चिन्ह है? क्या यह सच्चे जीवनकी निशानी है कि हम अपने खानेकी चीज़ें अितनी बढ़ा लें कि हमें यह खबर तक न रहे कि हम कहाँ हैं, अेकके बाद दूसरे पकवान ढूँढ़नेके लिअे पागल हो जायँ, और अिन पकवानोंके बारेमें अखबारोंमें आनेवाले विज्ञापन पढ़नेको दौड़ते फिरें?

अेक और व्रत **अस्तेय** है । मैं यह कहना चाहता हूँ कि अेक तरहसे हम सब चोर हैं । मेरे तुरन्तके कामके लिअे कोअी चीज़ ज़रूरी न हो और अुसे मैं लेकर अपने पास रख छोड़ूँ, तो मैं अुसकी किसी दूसरेके पाससे चोरी करता हूँ । मैं यह कहना चाहता हूँ कि सृष्टिका यह अटल नियम है कि वह हमारी ज़रूरतें पूरी करनेके लायक रोज पैदा करती है और यदि हर आदमी रोज अपनी ज़रूरतके अनुसार ही ले, ज्यादा न ले, तो अिस संसारमें गरीबी न रहे और कोअी भी आदमी भूखा न मरे । हममें जो यह असमानता है, अुसका अर्थ यह है कि हम चोरी करते हैं । मैं 'समाजवादी' नहीं हूँ और जिनके पास दौलत है, अुनसे मैं अुसे छिनवा लेना नहीं चाहता । परन्तु मैं अितना तो कहूँगा कि हममें से जो व्यक्ति अँधेरेसे अुजेलेमें जाना चाहते हैं, अुन्हें तो अस्तेयव्रत पालना ही पड़ेगा । मैं किसीसे अुसका अधिकार छीनना नहीं चाहता । यदि मैं अैसा करूँ, तो अहिंसा धर्मसे डिग जाअूँ । मुझसे किसी दूसरेके पास ज्यादा हो, तो भले ही हो । परन्तु मेरे अपने जीवनको व्यवस्थित रखनेके लिअे तो मैं कहूँगा कि जिस चीज़की मुझे ज़रूरत नहीं, अुसे मैं अपने पास नहीं रख सकता । भारतमें तीन करोड़ आदमी अैसे हैं कि

जिन्हें अेक समय खाकर ही सन्तोष करना पड़ता है; और वह भी सिर्फ रूखी-सूखी रोटी और चिमटी भर नमकसे। जब तक अिन तीन करोड़ लोगोंको पूरा कपड़ा और खाना नहीं मिलता, तब तक आपको और मुझे हमारे पास जो कुछ है, अुसे रखनेका अधिकार नहीं। आप और मैं ज्यादा समझदार हैं, अिसलिअे हमें अपनी ज़रूरतोंमें अुचित फेरफार करना चाहिये और स्वेच्छासे भूख भी सहनी चाहिये, जिससे अुन लोगोंकी सार-सँभाल हो सके, अुन्हें खानेको अन्न और पहननेको कपड़ा मिल सके। अिसमें से अपने आप ही **अपरिग्रह व्रत** निकलता है।

अब मैं **स्वदेशी व्रत**के बारेमें कहूँगा। स्वदेशी व्रत ज़रूरी व्रत है। स्वदेशी जीवन और स्वदेशी भावनासे आप परिचित हैं। मैं यह कहना चाहता हूँ कि अपनी ज़रूरतें पूरी करनेके लिअे हम यदि पड़ोसीको छोड़ कर दूसरेके पास जाते हैं, तो हम अपने जीवनके अेक पवित्र नियमको तोड़ते हैं। बम्बअीसे कोअी मनुष्य यहाँ आये और अपने पासका माल खरीदनेको आपसे कहे, तो जब तक आपके अपने आँगनमें मद्रासमें पैदा हुआ और बड़ा हुआ व्यापारी है, तब तक आप बम्बअीके व्यापारीको सहारा देंगे तो अनुचित काम करेंगे। स्वदेशीके बारेमें मेरा यह विचार है। आपके गाँवमें जब तक गाँवका ही नाअी है, तब तक मद्राससे आपके पास आये हुअे होशियार नाअीको दूर रखकर अुसीको सहारा देना आपका फर्ज है। यदि आपको अैसा जान पड़े कि अपने गाँवके नाअीमें मद्रासके नाअी जैसी होशियारी आनी चाहिये, तो आप अुसे वैसी तालीम दिला सकते हैं। ज़रूरत हो तो आप अुसे मद्रास भेजें, ताकि वह वहाँ जाकर अपना हुनर सीख आवे। जब तक आप अैसा न करें, तब तक आप दूसरे नाअीके पास जाकर ठीक नहीं करते। अैसा करना ही सच्चा स्वदेशी धर्म है। अिसी तरह जब हमें मालूम हो कि बहुतसी चीज़ें अैसी हैं, जो हमें भारतमें नहीं मिल सकतीं, तो हमें अुनके बिना काम चलानेका प्रयत्न करना चाहिये। बहुतसी चीज़ें ज़रूरी मालूम हों, तो भी अुनके बिना हमें काम चला लेना चाहिये। विश्वास रखिये जब आपका

दिल भिन्न तरहका हो जायगा, तब आपको अपने सिरसे अेक बड़ा बोझा अुतरा हुआ-सा लगेगा। अिसी तरहका अनुभव 'पिलग्रिम्स प्रोग्रेस' नामकी अनुपम पुस्तकके यात्रीको भी हुआ था। अेक समय अैसा आया कि यात्री जो बड़ा भार अपने सिर पर लिये जा रहा था, वह अुसे मालूम हुअे बिना ही सिरसे नीचे गिर गया और यात्राके शुरूमें वह जैसा था, अुससे वह अपनेको ज्यादा स्वतंत्र समझने लगा। अिसी तरह जिस समय आप अैसे स्वदेशी जीवनको अपना लेंगे, अुसी समय आप अपनेको आजसे ज्यादा स्वतंत्र समझेंगे।

हम निर्भयताका व्रत भी पालते हैं। भारतकी मेरी यात्रामें मुझे मालूम हुआ है कि भारत, शिक्षित भारत, अैसे डरसे जकड़ा हुआ है, जो अुसे कमजोर कर रहा है। हम अपना मुँह सबके सामने नहीं खोलते; पक्की राय हम सबके सामने व्यक्त नहीं करते। हम कुछ विचार रखते हों, अुनकी खानगीमें बात भी करते हों और अपने घरके कोनेमें कुछ भी करते हों, पर अुनका अुपयोग सार्वजनिक रूपसे नहीं करते! हमने मौनव्रत लिया होता, तो मैं कुछ न कहता। सार्वजनिक रूपमें बोलते समय हम जो कुछ कहते हैं, अुसमें सचमुच हमारा विश्वास नहीं होता। मुझे पता नहीं हिन्दुस्तानमें बोलनेवाले हरअेक सार्वजनिक पुरुषको अिस तरहका अनुभव हुआ है या नहीं। मैं यह कहना चाहता हूँ कि अेक ही सत्ता अैसी है — यदि हम अुसे सही अर्थमें सत्ता कह सकें तो — जिससे हमें डरना चाहिये; और वह सत्ता अेक अीश्वर है। हम परमात्मासे डरेंगे, तो कितनी ही अूँची पदवीवालेसे भी नहीं डरेंगे। यदि हम सत्यका व्रत किसी भी तरह या किसी भी रूपमें पालना चाहते हों, तो हमें निर्भयता ज़रूर रखनी होगी। भगवद्गीतामें आप देखेंगे कि दैवी सम्पत्तिमें पहली सम्पत्ति 'अभय' बताअी गअी है। हम नतीजेसे डरते हैं; अिसीलिअे हम सच बोलनेसे डरते हैं। जो मनुष्य अीश्वरसे डरता है, वह कभी सांसारिक परिणामोंसे नहीं डरता। धर्मके क्या मानी हैं, यह समझनेकी योग्यता प्राप्त करनेसे पहले और भारतको रास्ता दिखानेकी

योग्यता प्राप्त करनेसे पहले, क्या आपको यह नहीं महसूस होता कि हमें निडर रहनेकी आदत डालनी चाहिये ? या जैसे हम दूसरोंसे धोखा खा चुके हैं, वैसे ही हम अपने देशभाअियोंको भी धोखा देना चाहते हैं ? अिससे हमें जान पड़ेगा कि निर्भयता कितनी ज़रूरी चीज़ है ।

अिसके बाद हमें **अस्पृश्यता सम्बन्धी व्रत** पालना है । अिस समय हिन्दूधर्म पर यह अेक अमिट कलंक है । मैं यह माननेसे अिनकार करता हूँ कि यह कलंक अनादि कालसे चला आ रहा है । मेरी धारणा है कि जिस समय हम अपने जीवनके चक्रमें बहुत नीची जगह होंगे, अुस समय अस्पृश्यताकी यह कमीनी, नीच और बन्धनकारी भावना हममें पैदा हुअी होगी । यह बुराअी अभी तक हमसे चिपटी हुअी है और अभी तक हममें घर किये हुअे है । मेरा मन कहता है कि यह हमारे लिअे अेक शाप है; और जब तक हम पर यह शाप है, तब तक मेरी धारणा है कि *हमें यह मानना चाहिये कि अिस पवित्र भूमिमें जो जो दुःख हम* पर पड़ते हैं, वे हमारे अिस अक्षम्य पापका अुचित दण्ड हैं । किसी मनुष्यको अुसके धन्धेके कारण अछूत मानना समझमें न आनेवाली बात है । मैं आप विद्यार्थियोंसे यह कहना चाहता हूँ कि आपको सारी आधुनिक शिक्षा मिलती है; अिसलिअे यदि आप भी अिस पापमें भागीदार बनेंगे, तो बेहतर है कि आपको कोअी शिक्षा ही न मिले ।

बेशक, *अिस विषयमें हमें बहुत बड़ी कठिनाअीका सामना करना होता* है । आपको अैसा महसूस हो सकता है कि अिस दुनियामें कोअी भी आदमी अैसा नहीं हो सकता जिसे अछूत माना जाय; फिर भी आप अपने घरवालों पर अैसा असर नहीं डाल सकते, आप अपने आसपास अैसी छाप नहीं डाल सकते, क्योंकि आपके सारे विचार विदेशी भाषामें होते हैं और आपकी सारी शक्ति अुसमें खर्च हो जाती है । अिसलिअे हमने अिस आश्रममें अैसा नियम जारी किया है कि हमें अपनी शिक्षा अपनी मातृभाषामें लेनी चाहिये ।

युरोपमें हर पढ़ा-लिखा आदमी अपनी मातृभाषा ही नहीं सीखता है, बल्कि दूसरी भाषाओं भी सीखता है — तीन चार तो ज़रूर ही। जैसे युरोपवाले करते हैं, वैसे भारतमें भाषाका प्रश्न निपटानेके लिअे हमने अिस आश्रममें अैसा नियम रखा है कि हम भारतकी जितनी भाषाअें सीख सकते हों सीख लें। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि अंग्रेजी भाषा पर काबू पानेमें हमें जितना श्रम करना पड़ता है, अुसकी तुलनामें अिन भाषाओंको सीखनेका श्रम कुछ भी नहीं। हम कभी अंग्रेजी भाषा पर काबू नहीं पा सकते। कुछ अपवादोंको छोड़कर, हमारे लिअे अैसा करना संभव नहीं हुआ। जितनी स्पष्टतासे हम अपने विचार अपनी मातृभाषामें प्रकट कर सकते हैं, अुतनी स्पष्टतासे हम अंग्रेजी भाषामें नहीं कर सकते। हम अपने बचपनके सारे साल अपने स्मृतिपटसे कैसे मिटा सकते हैं? परन्तु हम जिसे अूँचा जीवन कहते हैं, अुसे अंग्रेजी भाषाकी शिक्षासे ही शुरू करते हैं, और तब हम अैसा ही करते हैं। अिससे हमारे जीवनकी कड़ियाँ टूट जाती हैं और अिसके लिअे हमें बड़ा भारी दण्ड भोगना पड़ेगा। अब आपको **शिक्षा और अस्पृश्यताका सम्बन्ध** मालूम होगा। शिक्षाका फैलाव होने पर भी आज अस्पृश्यताकी वृत्ति बनी हुअी है। शिक्षासे हम अिस भयंकर पापको समझनेके योग्य ज़रूर बने हैं, परन्तु साथ ही हम डरसे अितने जकड़े हुअे हैं कि अिस विचारको अपने घरमें दाखिल नहीं कर सकते। हम अपने कुटुम्बकी परम्पराके लिअे- और घरके आदमियोंके लिअे अंध पूज्यभाव रखते हैं। आप कहेंगे: 'यदि मैं अपने पितासे कहूँ कि अब मैं अिस पापमें ज्यादा समय तक भाग नहीं ले सकूँगा, तो वे तो मर ही जायँ'। मैं यह कहता हूँ कि प्रह्लादजीने विष्णुका नाम लेते समय कभी यह नहीं सोचा था कि अैसा करनेसे मेरे पिताकी मौत हो गअी तो! अुसके बजाय वे अपने पिताकी मौजूदगीमें भी अुस नामका अुच्चार करके घरका कोना-कोना गुँजा देते थे। आप और मैं अपने माता-पिताके सामने अैसा ही कर सकते हैं। मुझे लगता है कि अिस तरहका सख्त आघात पहुँचनेसे

अुनमें से कुछकी मौत भी हो जाय, तो कोअी हर्ज नहीं। अिस तरहके कितने ही सख्त आघात शायद हमें करने पड़ेंगे। जब तक हम पीढ़ियोंसे चले आनेवाले अैसे रिवाजोंको मानते रहेंगे, तब तक अैसे मौके आ भी सकते हैं। परन्तु अीश्वरका नियम अिससे बढ़कर है। और अुस नियमके अधीन रहकर मेरे माता-पिताको और मुझे अुतनी कुरबानी करनी चाहिये।

हम हाथसे बुननेका काम भी करते हैं। आप कहेंगे : 'हम अपने हाथको किस लिअे काममें लें?' अिसी तरह आप कहेंगे : 'जो अनपढ़ हैं, अुन्हें शारीरिक काम करना है। हम तो साहित्य और राजनैतिक निबन्ध पढ़नेका ही काम कर सकते हैं।' मुझे लगता है कि 'मजदूरीका महत्त्व' हमें समझना पड़ेगा। अेक नाअी या मोची कॉलेजमें जाय, तो अुसे नाअी या मोचीका धन्धा छोड़ना नहीं चाहिये। मैं मानता हूँ कि जितना अच्छा धन्धा अेक वैद्यका है, अुतना ही अच्छा नाअीका है।

अन्तमें जब आप ये नियम पालने लग जायेंगे, तभी — अुससे पहले नहीं — आप राजनैतिक विषयोंमें पड़ सकेंगे, अुतने पड़ सकेंगे जिससे आपकी आत्माको सन्तोष हो। और बेशक अुस समय आप कभी गलत रास्ते नहीं जायेंगे। धर्मसे अलग की हुअी राजनीतिमें कुछ भी सार नहीं। मेरे विचारसे तो जनताकी प्रगति की यह कोअी खास अच्छी निशानी नहीं है कि विद्यार्थी लोग हमारे देशके राजनैतिक विषयों पर खुली सभाओंमें भाषण दें। परन्तु अिससे यह न समझना चाहिये कि आप अपने विद्यार्थी जीवनमें राजनीतिका अध्ययन न करें। राजनीति हमारे जीवनका अेक अंग है। हमें अपनी राष्ट्रीय संस्थाओंको समझना चाहिये। हमें अपनी राष्ट्रीय प्रगति और अिस तरहकी दूसरी सब बातें जाननी चाहियें। हम अपने बचपनमें यह सब कर सकते हैं। अिसलिअे हमारे आश्रममें हर बच्चेको हमारे देशकी राजनैतिक संस्थाओंकी जानकारी कराअी जाती है, और अिसी तरह यह भी समझाया जाता है कि हमारे

देशमें नअी भावनाअें, नअी अभिलाषाअें और नवजीवनके आन्दोलन किस तरह चल रहे हैं ।

परन्तु अिसके साथ ही हमें **धार्मिक** श्रद्धा, यानी केवल बुद्धिका ही पोषण करनेवाली नहीं, बल्कि अन्तरमें स्थायी बन जानेवाली श्रद्धाके अचल और अचूक प्रकाशकी ज़रूरत है । पहले तो हमें धार्मिकताका अनुभव करना चाहिये; और जिस समय हम अैसा करते हैं, अुसी समयसे मुझे लगता है कि जीवनकी सारी दिशाअें हमारे लिअे खुल जाती हैं और विद्यार्थियोंको और हर व्यक्तिको सारे जीवनमें भाग लेनेका पवित्र अधिकार मिल जाता है । और जब आप बड़े होंगे और कॉलेज छोड़कर चले जायेंगे, तब जैसे जीवनसंग्रामके लिअे मनुष्य बाकायदा तैयार होकर निकल पड़ता है और अपना काम करता है, वैसे ही आप भी कर सकेंगे । आज तो यह होता है : राजनैतिक जीवनका बड़ा हिस्सा विद्यार्थी जीवनमें ही रहता है; जबसे विद्यार्थी कॉलेज छोड़कर जाते हैं और विद्यार्थी नहीं रहते, तभीसे वे अँधेरेमें पड़ जाते हैं और कंगाल और तुच्छ वेतनवाली नौकरी ढूँढ़ते हैं । अुनकी आशाअें बहुत अूँची नहीं जा सकतीं, अीश्वरके बारेमें वे कुछ नहीं जानते; अुन्हें पोषक तत्त्वकी — स्वतंत्रताकी — जानकारी नहीं होती । और मैंने जो नियम आप लोगोंके सामने रखे हैं, अुनके पालनेसे जो सच्ची बलशाली स्वतंत्रता मिलती है, अुसे भी वे नहीं जानते ।

६

# स्वतंत्र विकासकी शर्तें

दक्षिण भारतके अेक हाअिस्कूलके अेक शिक्षकने विद्यार्थियों पर सरकारकी तरफसे लगाअी हुअी पाबंदियोंको बतानेवाले कुछ अवतरण मेरे पास भेजे हैं।* अिनमेंसे ज्यादातर पाबन्दियाँ अेक क्षणकी भी देर किये बिना दूर करनी चाहियें। विद्यार्थी हों या शिक्षक, किसीका भी मन पिंजड़ेमें बन्द न रहना चाहिये। शिक्षक तो वही रास्ता दिखा सकते हैं, जिसे वे स्वयं या राज्य सबसे अच्छा समझते हैं। अितना करनेके बाद अुन्हें विद्यार्थियोंके विचारों और भावनाओंको दबानेका कोअी अधिकार नहीं। अिसका मतलब यह नहीं है कि विद्यार्थी किसी भी तरहके नियमोंके वशमें न रहें। नियम पाले बिना कोअी स्कूल चल ही नहीं सकता। परन्तु नियमपालनका विद्यार्थियोंके सर्वांगीण विकास पर बनावटी अंकुश लगानेसे कोअी सम्बन्ध नहीं है। जहाँ अुनके पीछे जासूस लगाये जाते हों, वहाँ अैसा विकास नहीं हो सकता। सच तो यह है कि आज तक वे जिस वातावरणमें रहे हैं, वह खुले तौर पर अराष्ट्रीय रहा है। यह वातावरण अब मिटना चाहिये। विद्यार्थियोंको जानना चाहिये कि राष्ट्रीय भावना रखना या बढ़ाना कोअी अपराध नहीं, बल्कि अच्छा गुण है।

* गांधीजीका मत देनेके लिअे ये अवतरण पुस्तकमें देना जरूरी न समझकर अुन्हें छोड़ दिया गया है। जिज्ञासु पाठक २५-९-'३७ के 'हरिजनसेवक' में छपे 'शिक्षा-मन्त्रियोंके प्रति' नामक लेखमें अिन्हें देख सकते हैं।

## ७

# बुद्धिविकास बनाम बुद्धिविलास

त्रावणकोर और मद्रासके दौरेमें विद्यार्थियों और विद्वानोंके सहवासमें मुझे अैसा मालूम हुआ कि मैं जो नमूने देख रहा हूँ, वे बुद्धिविकासके नहीं, बल्कि बुद्धिविलासके हैं। आजकलकी शिक्षा भी हमें बुद्धिका विलास सिखाती है और बुद्धिको अुलटे रास्ते ले जाकर अुसके विकासको रोकती है। सेवाग्राममें पड़े-पड़े मैं जो कुछ अनुभव कर रहा हूँ, वह अिस बातकी पुष्टि करता दीखता है। मेरा अवलोकन तो अभी जारी ही है। अिसलिअे अुस अनुभव पर अिस लेखके विचारोंकी बुनियाद नहीं है। ये विचार तो अुस समयसे हैं, जब मैंने फिनिक्स संस्था कायम की थी, यानी सन् १९०४ से हैं।

बुद्धिका सच्चा विकास हाथ, पैर, कान आदि अंगोंका ठीक-ठीक अुपयोग करनेसे ही हो सकता है, यानी समझ-बूझकर शरीरका अुपयोग करनेसे बुद्धिका विकास अुत्तम ढंगसे और जल्दीसे जल्दी हो सकता है। अिसमें भी यदि परमार्थकी वृत्ति न मिले, तो शरीर और बुद्धिका अेकांगी विकास होता है। परमार्थकी वृत्ति हृदय यानी आत्माका क्षेत्र है, अिसलिअे यह कहा जा सकता है कि बुद्धिके विकासके लिअे आत्मा और शरीरका विकास साथ-साथ और अेकसी चालसे होना चाहिये। अिसलिअे यदि कोअी यह कहे कि ये विकास अेकके बाद अेक हो सकते हैं, तो अूपरके विचारोंके अनुसार यह कहना ठीक नहीं होगा।

हृदय, बुद्धि और शरीरका आपसमें मेल न होनेसे जो दुखदाअी परिणाम हुआ है, वह प्रसिद्ध है। फिर भी अुलटे रहन-सहनके कारण हम अुसे देख नहीं सकते। गाँवोंके लोग जानवरोंमें पलते हैं, अिसलिअे शरीरका अुपयोग मशीनकी तरह करते हैं। वे बुद्धिको काममें लेते ही नहीं, अुन्हें बुद्धिका अुपयोग करना ही नहीं पड़ता। हृदयकी शिक्षा नहीं के बराबर होती है। अिसलिअे अुनका जीवन अैसा है कि न

अिधरके रहे, न अुधरके । दूसरी तरफ आजकलकी कॉलेज तककी पढ़ाअीको देखें, तो वहाँ बुद्धिके विलासको बुद्धिके विकासके नामसे पहचाना जाता है । अैसा माना जाता है, मानो बुद्धिके विकासके साथ शरीरका कोअी सम्बन्ध ही नहीं । परन्तु शरीरको कसरत तो ज़रूर चाहिये; अिसलिअे बेमतलब कसरतोंसे अुसे टिकाये रखनेका झूठा प्रयोग किया जाता है । किन्तु चारों तरफसे मुझे अिस बातका सबूत मिलता रहता है कि स्कूलोंसे निकले हुअे लोग मजदूरोंकी बराबरी नहीं कर सकते । जरा मेहनत करें, तो अुनका सिर दुखता है और धूपमें घूमना पड़े, तो अुन्हें चक्कर आते हैं । यह स्थिति कुदरती समझी जाती है । न जोते हुअे खेतमें जैसे घास अुगती है, वैसे ही हृदयकी वृत्तियाँ अपने आप पैदा होती और मुरझाती रहती हैं । और यह स्थिति दयाजनक मानी जानेके बदले प्रशंसनीय मानी जाती है ।

अिसके खिलाफ, यदि बचपनसे बालकोंके हृदयकी वृत्तियोंको योग्य दिशा मिले, अुन्हें खेती, चरखा आदि अुपयोगी कामोंमें लगाया जाय और जिस अुद्योगसे अुनका शरीर कसे, अुस अुद्योगके फायदों और अुसमें काम आनेवाले औजारोंकी बनावटकी जानकारी अुन्हें कराअी जाय, तो बुद्धि अपने आप बढ़ेगी और अुसकी जाँच भी रोज होती रहेगी । अैसा करते हुअे गणितशास्त्र और दूसरे शास्त्रोंके जितने ज्ञानकी ज़रूरत हो, वह दिया जाता रहे और विनोदार्थ साहित्य आदि विषयोंकी जानकारी भी कराअी जाती रहे, तो तीनों चीज़ोंका समतोल कायम हो जाय और शरीरका विकास हुअे बिना न रहे । मनुष्य केवल बुद्धि नहीं, केवल हृदय या आत्मा नहीं । तीनोंके अेकसे विकाससे मनुष्यको मनुष्यत्व प्राप्त हो सकता है । अिसीमें सच्चा अर्थशास्त्र है । अिस तरह यदि तीनोंका विकास अेक साथ हो, तो हमारी अुलझी हुअी समस्याअें अपने आप सुलझ जायें । यह मानना कि ये विचार या अुन पर अमल होना स्वतंत्रता मिलनेके बादकी चीज़ है, गलत हो सकता है । करोड़ों आदमियोंको अैसे कामोंमें लगानेसे ही हम स्वतंत्रताके दिनको समीप ला सकते हैं ।

हरिजनबन्धु, ११-४-'३७

८

# सच्ची शिक्षा

प्रोफेसर मलकानीने अहमदाबादसे नीचे लिखा तार भेजा है :

" . . . . कृपलानीने कहा है कि विद्यापीठके स्वयंसेवक जायेंगे।"

सर विश्वेश्वरैयाने ३ अक्तूबरको पूनामें अखिल भारत स्वदेशी बाजार और औद्योगिक प्रदर्शिनीको खोलते समय नीचे लिखी बातें कही हैं :

"यदि मेरे कहनेका युनिवर्सिटियों पर कोअी असर पड़ सके, तो मैं अुनसे प्रार्थना करता हूँ कि जब तक हमारी वर्तमान आर्थिक कमजोरी बनी रहे, तब तक साहित्य और तत्त्वज्ञानकी पढ़ाअीमें मर्यादित संख्यामें ही विद्यार्थी लिये जायँ। विद्यार्थियोंको खेती, अिंजीनियरी, यंत्र-शास्त्र और व्यापारकी डिग्रियाँ लेनेके लिअे ललचाया जाय।"

हमारी आजकलकी शिक्षा अक्षर-ज्ञानको जो अेकांगी महत्त्व देती है, वह अिसका अेक बड़ा दोष है। अिसीकी तरफ सर विश्वेश्वरैयाने हम सबका ध्यान खींचा है। मैं अिससे भी ज्यादा गंभीर अेक और दोष बताना चाहता हूँ। विद्यार्थियोंके मनमें अैसा खयाल पैदा किया जाता है कि जब तक वे स्कूल-कॉलेजमें साहित्यकी पढ़ाअी करते हों, तब तक अुन्हें पढ़ाअीको नुकसान पहुँचा कर सेवाके काम नहीं करने चाहियें, भले ही वे काम कितने ही छोटे या थोड़े समयके हों। विद्यार्थी यदि कष्ट-निवारणके कामके लिअे अपनी साहित्य या अुद्योगकी शिक्षा मुलतवी रखें, तो अिससे वे कुछ खोयेंगे नहीं, बल्कि अुन्हें बहुत लाभ होगा। अैसा काम आज कितने ही विद्यार्थी गुजरातमें कर रहे हैं। हर प्रकारकी शिक्षाका ध्येय सेवा ही होना चाहिये। और यदि शिक्षाकालमें ही विद्यार्थीको सेवा करनेका मौका मिले, तो अुसे अपना बड़ा सौभाग्य समझना चाहिये और अिसे अभ्यासमें बाधाके बजाय अभ्यासकी पूर्ति मानना चाहिये। अिसलिअे गुजरात कॉलेजके विद्यार्थी अपना

सेवाका काम गुजरातकी हदके बाहर फैलायें, तो मैं अुन्हें दिलसे बधाओ दूँगा। थोड़े दिन पहले ही मैंने कहा था कि हममें प्रान्तीयताकी संकीर्णता न आनी चाहिये। संकट-निवारणका काम करनेवालोंकी फौज खड़ी करनेका संगठन गुजरातके बराबर सिन्धमें नहीं है। अिसलिअे गुजरातसे यह आशा रखी जाती है कि वह अपने स्वयंसेवकोंको सिन्धमें या दूसरे किसी प्रान्तमें जहाँ-जहाँ अुनकी सेवाकी जरूरत हो वहाँ भेजेगा। . . .

* * *

गुजरातने संकट-निवारणके लिअे जो अपील की थी, अुसका जो जवाब मिला है, वह बहुत ही सन्तोषकारक है। जिन्होंने शुरूमें ही मदद भेजी, अुनमें दो संस्थाअें भी थीं: गुरुकुल काँगड़ी और शान्ति-निकेतन। यह समझकर कि अुनके दानसे मुझे कितनी खुशी होगी, अुन्होंने दानकी खबर मुझे तारसे दी और दान सीधा श्री वल्लभभाअीके पास भेजा। गुरुकुलकी तरफसे दान की जो चार किस्तें आअीं, अुनका ब्यौरा भी आचार्य रामदेवजीने मुझे लिखा है। वे कहते हैं कि अभी और भेजनेकी आशा है। वे लिखते हैं:

"शिक्षकोंने अपनी तनखाहमें से अमुक फी सदी रकम दी है। ब्रह्मचारियोंने हमेशाकी तरह अपने कपड़े धोबीसे न धुलवाते हुअे स्वयं धोकर रुपया बचाया है। कन्या गुरुकुलकी ब्रह्मचारिणियोंने अमुक समय तक दूध-घी छोड़कर बचत की है।"

गुजरातमें मदद लेनेवाले और बाँटनेवाले याद रखें कि जो दान मिला है, अुसमेंसे कुछ के पीछे कितना त्याग रहा है। जब स्वामी श्रद्धानन्दजी गुरुकुलके संचालक थे, तब दक्षिण आफ्रीकाकी सत्याग्रहकी लड़ाअीके समय गुरुकुलमें अुन्होंने जो त्यागकी प्रथा सर्व प्रथम डाली थी, अुसकी याद मुझे गुरुकुलके लड़के-लड़कियोंके आजके त्यागसे आती है। जिन्होंने गुरुकुलकी परंपरामें पले हुअे लड़के-लड़कियोंसे खास मौकों पर अिस तरहकी कुरबानीकी आशा तो हमेशा रखी ही जायगी।

नवजीवन, १६-१०-'२७

# ९

# सेवाकी कला

[यह भाषण अीसाअियोंके युनाअिटेड थियॉलॉजीकल कॉलेजमें हुआ था। सारे भारतसे अीसाअी नौजवान यहाँ आते हैं। अिस कॉलेजका ध्यानमंत्र यह था कि 'तुम सेवा लेनेके लिअे न जाना, बल्कि दूसरोंकी सेवा करनेके लिअे जाना'। गांधीजीने अिस पर प्रवचन किया। अुन्होंने कहा *'कि अिस देशके आम लोगोंकी सेवा करनेकी जिनकी अिच्छा हो,* अुनके लिअे पहली शर्त यह है कि वे हिन्दी सीख लें।]

मैं मानता हूँ कि हम पर अंग्रेजीका माध्यम लादनेकी जिम्मेदारी पिछली पीढ़ीके लोगोंकी है। किन्तु यदि आप विंध्याचलके अुस पारके लोगों तक पहुँचना चाहते हों, तो आपको यह चारदीवारी तोड़नी ही होगी। मुझे अिस बारेमें आपसे ज्यादा कुछ कहनेकी ज़रूरत नहीं मालूम होती कि आप किस तरह सेवा कर सकते हैं या आपको क्या सेवा करनी चाहिये; क्योंकि आपने मेरे चरखा-प्रचारके काममें सम्मति दिखाकर मेरा काम आसान कर दिया है। आपने दलित वर्गोंका अुल्लेख किया है। परन्तु दलित कहलानेवाले वर्गसे भी कहीं ज्यादा दबा हुआ अेक बहुत ही विशाल जन समुदाय मौजूद है। यही सच्चा भारत है। जगह-जगह फैला हुआ रेलका जाल अिस समुदायके बहुत थोड़े भाग तक पहुँच सका है। यदि आप रेलका रास्ता छोड़कर जरा भीतरके हिस्सेमें घुसेंगे, तो आपको अिस जनताके दर्शन होंगे। दक्षिणसे अुत्तर और पूर्वसे पश्चिम तक फैली हुअी ये रेलकी लाअिनें रस और कस निकाल लेनेवाली — लॉर्ड सॉल्सबरीके शब्द काममें लूँ तो 'खून चूसनेवाली' — बड़ी-बड़ी नसें हैं; और बदलेमें अिनसे कुछ भी नहीं मिलता। हम शहरोंमें रहनेवाले अिस खून चूसनेके काममें (यह शब्द कितना ही

१०

# ब्रह्मचर्य*

यह माँग की गअी है कि ब्रह्मचर्यके बारेमें मैं कुछ कहूँ। कुछ विषय अैसे हैं, जिन पर मैं मौके-मौकेसे 'नवजीवन' में लिखता रहता हूँ और शायद ही कभी अुन पर बोलता हूँ। ब्रह्मचर्य अैसा ही अेक विषय है। जिसके बारेमें मैं शायद ही कभी बोलता हूँ; क्योंकि यह अैसी चीज है, जो बोलनेसे समझमें नहीं आ सकती। और मैं जानता हूँ कि यह बहुत ही कठिन वस्तु है। आप जिस ब्रह्मचर्यके बारेमें सुनना चाहते हैं, वह तो सामान्य ब्रह्मचर्य है; पर अुस ब्रह्मचर्यके बारेमें नहीं सुनना चाहते, जिसकी विस्तृत व्याख्या सब अिन्द्रियोंको वशमें करना है। अिस सामान्य ब्रह्मचर्यको भी शास्त्रोंमें अत्यन्त कठिन बताया गया है। यह कहना ९९ फीसदी सही है। मैं यह कहनेकी छूट लेता हूँ कि अिसमें अेक फीसदीकी कमी है। अिसका पालन अिसलिअे कठिन लगता है कि हम दूसरी अिन्द्रियोंका संयम नहीं करते। अुनमें से मुख्य रसनेन्द्रिय है। जो जीभको वशमें रखेंगे, अुनके लिअे ब्रह्मचर्य आसानसे आसान चीज हो जायगी। प्राणीशास्त्रके जाननेवालोंने कहा है कि पशु जितना ब्रह्मचर्य रखते हैं, अुतना मनुष्य नहीं रखते। यह सच है। अिसका कारण ढूँढ़ेंगे तो पता चलेगा कि पशुओंका जीभ पर पूरा अधिकार है — जानबूझकर नहीं, बल्कि स्वभावसे ही। सिर्फ घास-चारेसे अुनका गुजारा होता है। अिसे भी वे पेट भर ही खाते हैं। वे जीनेके लिअे खाते हैं, खानेके लिअे नहीं जीते। परन्तु हम अिससे अुलटा करते हैं। माँ बच्चेको कअी स्वाद चखाती है। वह यह मानती है कि ज्यादासे

---

* मायरणके सेवा-समाजने अेक मानपत्र दिया था। अुस मौके पर सेवा-समाजके युवकोंकी खास माँग पर दिये गये भाषणका सार।

ज्यादा चीज़ें खिलाकर ही वह बच्चेके साथ प्रेम कर सकती है। अैसा करके हम चीज़ोंमें स्वाद नहीं भरते, बल्कि चीज़ोंका स्वाद निकाल लेते हैं। स्वाद तो भूखमें है। सूखी रोटी भूखेको जितनी स्वादिष्ट लगेगी, अुतना भरपेट खाये हुअेको लड्डू भी नहीं लगेगा। हम पेटको ठूँस-ठूँसकर भरनेके लिअे कअी मसाले काममें लेते हैं और कअी तरहकी बानगियाँ बनाते हैं, और फिर कहते हैं कि ब्रह्मचर्य क्यों नहीं पाला जाता? जो आँख प्रभुने देखनेके लिअे दी है, अुसे हम मैली करते हैं; और जो देखनेकी चीज़ है, अुसे देखना नहीं सीखते। माँ गायत्री क्यों न सीखे और क्यों बच्चेको गायत्री न सिखावे? अुसके गहरे अर्थमें न जाकर, अितना ही समझकर कि अिसमें सूर्यकी पूजा है, वह सूर्यकी पूजा कराये तो भी बस है। सूर्यकी पूजा आर्यसमाजी और सनातनी दोनों करते हैं। सूर्यकी पूजा — यह तो मैंने मोटेसे मोटा अर्थ आपके सामने रखा है। अिस पूजाका अर्थ क्या? हम अपनी गरदन अूँची रखकर सूर्यनारायणके दर्शन करें और आँखोंको शुद्ध करें। अिस गायत्री मंत्रको बनानेवाले ऋषि थे, द्रष्टा थे। अुन्होंने कहा कि सूर्योदयमें जो नाटक भरा है, जो सौंदर्य भरा है और जो लीला भरी है, वह और कहीं देखनेको नहीं मिल सकती। अीश्वर जैसा सुन्दर सूत्रधार और कहीं नहीं मिल सकता और आकाशसे ज्यादा भव्य रंगभूमि और कहीं नहीं मिल सकती। परन्तु क्या माँ अपने बच्चेकी आँखें धोकर अुसे आकाश दिखाती है? माँके भावोंमें तो कअी प्रपंच ही भरे रहते हैं। बड़े मकानमें जो शिक्षा मिलती है, अुसके कारण शायद लड़का बड़ा अफसर बन जाय। परन्तु घर पर जाने-अनजाने जो शिक्षा बच्चेको मिलती है, अुससे वह कितना सीखता है, अिसका विचार कौन करता है? हमारे शरीरको माँ-बाप ढँकते हैं, नाजुक बनाते हैं और सुन्दर बनानेका प्रयत्न करते हैं, किन्तु अिससे क्या शोभा बढ़ती है? कपड़े शरीरको ढँकनेके लिअे हैं, शोभा बढ़ानेके लिअे नहीं; शरीरको सरदी-गरमीसे बचानेके लिअे हैं। ठंडसे ठिठुरते हुअे बच्चेको अंगीठीके पास ले जाअिये, गलीमें दौड़नेको भेजिये या खेतमें धकेलिये, तो ही

अुसका शरीर फौलादका-सा बनेगा। जिसने ब्रह्मचर्यका पालन किया है, अुसका शरीर वज्र जैसा होना चाहिये। हम तो बालकके शरीरका नाश करते हैं। हम अुसे घरमें रखकर गरमी देना चाहें तो जिससे अुसके शरीरमें अैसी गरमी पैदा होती है, जिसे हम खुजलीकी अुपमा दे सकते हैं। हमने शरीरकी ज़रूरतसे ज्यादा सावधानी रखकर अुसे नाज़ुक बना कर बिगाड़ा है और बेकार बना दिया है।

यह तो कपड़ोंकी बात हुअी। अिसके अलावा घरमें होनेवाली बातचीतसे हम बालकके मन पर बुरा असर डालते हैं। अुसके ब्याह-शादीकी बातें करते हैं, अुसे देखनेको भी अैसी ही चीज़ें मिलती हैं। मुझे अचरज तो यह होता है कि हम जंगली से जंगली ही क्यों न बन गये। मर्यादाको तोड़नेके कअी साधन होने पर भी मर्यादा बनी हुअी है। अीश्वरने मनुष्यको अैसा बनाया है कि बिगड़नेके कअी मौके आने पर भी वह बच जाता है। यह अुसकी अलौकिक कला है। ब्रह्मचर्यके पालनमें अैसी जो कअी रुकावटें हैं वे दूर कर दी जायँ, तो अुसे पालना संभव हो जाय, आसान हो जाय।

अैसी हालत होने पर भी हम दुनियाके साथ शारीरिक होड़ लगाना चाहते हैं। अिसके दो रास्ते हैं। आसुरी और दैवी। आसुरी यानी शरीरका बल बढ़ानेके लिअे चाहे जैसे अुपाय करना, चाहे जिस पदार्थका सेवन करना, दारीरसे मुकाबला करना, गायका मांस खाना आदि। मेरे बचपनमें मेरा अेक मित्र कहता था कि मांस खाना ही चाहिये, और अैसा न करेंगे तो अंग्रेजों जैसा क़दावर डील डौल नहीं बनेगा। कवि नर्मदाशंकरने भी अिसी तरहकी सलाह अपनी अेक कवितामें दी है। 'अंग्रेजो राज्य करे, देशी रहे दबाअी', 'पेलो पाँच हाथ पूरो'— अिन पंक्तियोंमें यही भाव भरा है। नर्मदाशंकरने गुजरात पर बहुत ही अुपकार किया है, परंतु अुनके जीवनके दो भाग थे— अेक स्वेच्छाचारका समय और दूसरा संयम का। यह कविता स्वेच्छाचारके समयकी है। जापानके लिअे भी जब दूसरे देशोंका मुकाबला करनेका समय आया; तब वहाँ गोमांस-भक्षणको स्थान मिला।

अिस तरह राक्षसी तरीक़े पर शरीरको बढ़ाना चाहें, तो ये चीज़ें खानी ही पड़ती हैं ।

परन्तु दैवी ढंग पर शरीरको बनाना हो, तो ब्रह्मचर्य ही अिसका अेक अुपाय है । मुझे जब नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहा जाता है, तब मुझे अपने पर दया आती है । मुझे दिये गये मानपत्रमें मुझे नैष्ठिक ब्रह्मचारी बताया गया है । मुझे अितना तो कहना चाहिये कि जिसने मानपत्र लिखा है, अुसे मालूम नहीं था कि नैष्ठिक ब्रह्मचर्य किसे कहते हैं ? अुसे अितना भी खयाल नहीं आया कि जो आदमी मेरी तरह ब्याह किया हुआ है और जिसके बच्चे हो चुके हैं, वह नैष्ठिक ब्रह्मचारी क्योंकर कहला सकता है ? नैष्ठिक ब्रह्मचारीको न कभी बुखार आता है, न कभी अुसका सिर दुखता है, न कभी अुसे खाँसी होती है और न अंतड़ीका फोड़ा (अेपेंडिसाअिटिस) । डॉक्टर कहते हैं कि अंतड़ियोंमें नारंगीके बीज भर जानेसे भी अेपेंडिसाअिटिस हो जाता है। परन्तु जिसका शरीर साफ और नीरोगी है, अुसके शरीरमें बीज टिक ही नहीं सकता । जब अंतड़ियाँ शिथिल पड़ जाती हैं, तब वे अैसी चीज़ोंको अपने आप बाहर नहीं फेंक सकतीं । मेरी भी अंतड़ियाँ शिथिल हो गअी होंगी । अिसी-लिअे शायद मैं अैसी कोअी चीज़ पचा न सका हूँगा । बच्चे अैसी कअी चीज़ें खा जाते हैं । अुन पर माँ थोड़े ही ध्यान देती है ? अुनकी अंतड़ियोंकी कुदरती तौर पर ही अितनी शक्ति होती है कि वे अैसी चीज़ोंको बाहर निकाल देती हैं । अिसलिअे मैं चाहता हूँ कि मुझे नैष्ठिक ब्रह्मचारी बता कर कोअी मिथ्याचारी न बने । नैष्ठिक ब्रह्मचर्यका तेज तो जितना मुझमें है, अुससे कअी गुना ज्यादा होना चाहिये । मैं आदर्श ब्रह्मचारी नहीं हूँ, परन्तु यह सच है कि मैं वैसा बनना चाहता हूँ । मैंने आपके सामने अपने अनुभवमेंसे थोड़ी-सी बातें रखी हैं, जो ब्रह्मचर्यकी मर्यादा बताती हैं । ब्रह्मचारी होनेका यह अर्थ नहीं कि मैं किसी भी स्त्रीको न छूअूँ, अपनी बहनको भी न छूअूँ; परन्तु ब्रह्मचारी होनेका अर्थ यह है कि, जैसे अेक कागजको छूनेसे मुझमें

विकार पैदा नहीं होता, वैसे ही किसी स्त्रीको छूनेसे भी मुझमें विकार नहीं पैदा होना चाहिये । मेरी बहन बीमार हो और ब्रह्मचर्यके कारण मुझे अुसकी सेवा करनेसे, अुसे छूनेसे परहेज करना पड़े, तो वह ब्रह्मचर्य धूलके बराबर है । किसी मुर्दा शरीरको छूनेसे जैसे हमारा मन नहीं बिगड़ता, वैसे ही किसी सुन्दर से सुन्दर स्त्रीको छूनेसे भी हमारा मन न बिगड़े, तो हम ब्रह्मचारी हैं । यदि आप चाहते हैं कि लड़के-लड़कियाँ ब्रह्मचारी बनें, तो आपकी पढ़ाअीका ढाँचा आप नहीं बना सकते; मेरे जैसा, अधूरा ही क्यों न हो, ब्रह्मचारी ही बना सकता है ।

ब्रह्मचारी स्वाभाविक सन्यासी होता है । ब्रह्मचर्य आश्रम सन्यास आश्रमसे भी ज्यादा बढ़ा-चढ़ा आश्रम है । परन्तु हमने अुसे गिरा दिया, अिसलिअे हमारा गृहस्थाश्रम बिगड़ गया, वानप्रस्थाश्रम भी बिगड़ गया और सन्यास आश्रमका तो नाम भी नहीं रहा । हमारी अैसी दीन दशा हो गअी है ।

अूपर जो राक्षसी मार्ग बताया है, अुस पर चल कर तो हम पाँच सौ बरसमें भी पठानोंका मुकाबला नहीं कर सकेंगे । दैवी मार्ग पर हम आज ही लगें, तो आज ही पठानोंका मुकाबला हो सकता है; क्योंकि जहाँ दैवी मार्गसे मानसिक परिवर्तन पलभरमें हो सकता है, वहाँ शरीरको बदलनेमें जुग-जुग लगते ही हैं । अिस दैवी मार्ग पर हम तभी चल सकते हैं, जब हमारे पिछले जन्मके पुण्य होंगे और माँ-बाप हमारे लिअे योग्य सामग्री पैदा करेंगे ।

नवजीवन, २६-२-'२५

## ११

# माता-पिताकी जिम्मेदारी

जो माता-पिता अपने बच्चोंको स्कूलों या आश्रमोंमें भेजते हैं, अुनको कुछ फर्ज पूरे करने होते हैं। ये फर्ज पूरे न हों तो बच्चोंका, अुन संस्थाओंका और स्वयं माता-पिताका नुकसान होता है। जिस संस्थामें बच्चोंको भेजना हो, अुसके नियम जान लेने चाहियें। बच्चोंकी आदतें और ज़रूरतें जाननी चाहियें और किये हुअे निश्चय पर कायम रहना चाहिये। बच्चोंका जो समय आश्रममें रहनेका हो, अुस समय अुन्हें अपने स्वार्थकी खातिर वहाँसे नहीं हटाया जाय; नौकरीके लिअे न हटाया जाय, फिर ब्याह-शादीमें जानेके लिअे तो हटाया ही कैसे जा सकता है? अैसे मौकों पर बच्चोंको बुलाया ही कैसे जा सकता है? जैसे माता-पिता अपने सारे काम-काजमें बच्चोंको नहीं घसीटते, वैसे ही ब्याह-शादी जैसे कामोंमें भी अुन्हें नहीं घसीटना चाहिये। बच्चोंकी शिक्षाका समय अैसा होता है, जब अुनका ध्यान और किसी भी विषयकी तरफ नहीं खींचना चाहिये। साथ ही, शिक्षाके कालमें बच्चोंको ब्रह्मचारी रहना चाहिये। यदि अुन्हें ब्याह-शादी देखनेका रोग लग गया, तो फिर अुसमें रुकावट पैदा हो सकती है। अिसलिअे बालकोंको अैसे कामोंसे जान-बूझकर दूर रखनेकी ज़रूरत है। अिसके अलावा, जब विवाहकी बात ही अिस समय विपरीत लगती है, तब जो बालक अुससे दूर रहना चाहता हो, अुसे भी अिसके लिअे ललचाना तो अुस पर अत्याचार ही करना है। अिस जमानेमें जब मन कमजोर हो गये हैं और लालचोंका सामना करनेकी शक्ति बहुत घट गयी है, तब यदि कोअी नियम पालनेका अिरादा करे और कुछ भी त्याग करना चाहे, तो अुसकी अिस वृत्तिको बल पहुँचानेकी

होगा? अेक लड़का अपनी माँके मरनेके बाद अपने बापके पास सोता था। पिताने दूसरी शादी की और नअी पत्नीके साथ दरवाजे बन्द करके सोने लगा। जिससे अुस लड़केको कुतूहल हुआ कि मेरे पिताजी मेरे साथ क्यों नहीं सोते? या मेरी माता जीती थी, तब तो हम तीनों साथ सोते थे; अब नअी माँके आने पर मेरे पिताजी मुझे साथ क्यों नहीं सुलाते! बालकका कुतूहल बढ़ा। दरवाजेकी दरारमें से देखनेकी जी में आअी। दरारमें से अुसने जो दृश्य देखा, अुसका अुसके मन पर क्या असर हुआ होगा!

"अैसी बातें समाजमें हमेशा होती रहती हैं। यह अुदाहरण भी मैंने मनगढ़न्त नहीं दिया है।[1] यह अेक १३-१४ सालके लड़केसे सुनी हुअी हकीकत है। जो संतानें छोटी अुम्रमें आत्मनाशके रास्ते पर चलेंगी, वे स्वराज्य कैसे ले सकेंगी या चला सकेंगी? अैसा न होने देनेकी सावधानी हरअेक माता-पिता, शिक्षक, गृहपति या स्काअुट मण्डलीके मुखिया रखें तो? अकसर ब्रह्मचर्य शब्दका अर्थ समझना छोटी अुम्रमें कठिन होता है। अिसलिअे बहुतसे लड़कोंको जमा करके ब्रह्मचर्य पर भाषण देनेके बजाय अेक-अेकको अपने विश्वासमें लेकर और अुसके सच्चे मित्र बनकर यह सावधानी रखना कि वे छोटी अुम्रमें ही सदाचारकी तरफ मुड़ जायँ, ज्यादा ठीक मालूम होता है। क्या कोअी अैसा रास्ता है कि जिससे बालकके मनमें बुरे विचारोंको घुसनेका मौका ही न मिले?

"अब बड़ी अुम्रके मनुष्योंके बारेमें। जो समाज, या जाति दूसरी जातिकी स्त्रीके हाथका खानेवालोंका बहिष्कार करती है, वह पराअी स्त्री के साथ संग करनेवालेका बहिष्कार क्यों नहीं करती? जो जाति राजनैतिक परिषदोंमें अछूतोंके साथ बैठनेवालोंको सजा देती है, वही जाति व्यभिचारियोंको सजा क्यों नहीं देती? अिसका कारण मुझे तो यह लगता है कि यदि हर जाति आत्मशुद्धि करने लगे, तो जातिका शरीर बहुत ही कमजोर हो जाय। परन्तु अुन्हें अिस बातका कहाँ पता है कि कमजोर शरीरमें बलवान आत्मा हो सकती है। बहुतसी जातियोंके पंच स्वयं शराब या व्यभिचारकी बुराअीमें फँसे होते हैं, अिसलिअे अपने

ही पैरों पर कुल्हाड़ी पड़नेके डरसे अिस मामलेमें वे ध्यान नहीं देते हैं, और दूसरोंका बहिष्कार करनेके लिअे अेक पाँव पर तैयार रहते हैं। यह समाज कब सुधरेगा? जिस देशको राजनैतिक अुन्नति करना हो, वह देश यदि पहले सामाजिक अुन्नति नहीं कर लेगा, तो राजनैतिक अुन्नति आकाशमें महल बनाने जैसी होगी।"

यह सबको मानना पड़ेगा कि अिस पत्रमें बहुत तथ्य है। यह बात समझानेकी ज़रूरत नहीं कि लड़के बड़े हो जायँ, तो फिर अुसी स्त्री से या पहली स्त्री मर जाय तो दूसरी शादी करके बच्चे पैदा करनेसे बालकोंको नुकसान पहुँचता है। परन्तु अितना संयम न रखा जा सके, तो पिताको बच्चोंको दूसरे मकानमें रखना चाहिये या कमसे कम वह स्वयं अैसे किसी अलग कमरेमें रहे, जहाँसे बालक कोअी आवाज न सुन सकें और न कुछ देख सकें। अिससे भी कुछ सभ्यता तो ज़रूर बनी रहेगी। बचपन निर्दोष रहना चाहिये, अिसके बजाय माता-पिता भोगविलासके वश होकर बच्चोंको खराब करते हैं। वानप्रस्थ आश्रमका रिवाज बच्चोंकी नैतिकताके लिअे और अुन्हें स्वतंत्र और स्वावलम्बी बनानेके लिअे बहुत ही अुपयोगी होना चाहिये।

लिखनेवाले भाअीने शिक्षकोंके लिअे जो सुझाव दिया है, वह तो ठीक ही है, परन्तु जहाँ ४०-५० लड़कोंका अेक वर्ग हो और शिक्षकका शिष्योंके साथ सिर्फ अक्षरज्ञान देने जितना ही सम्बन्ध हो, वहाँ शिक्षक चाहे तो भी अितने लड़कोंके साथ आध्यात्मिक सम्बन्ध कैसे पैदा कर सकते हैं? फिर जहाँ पाँच-सात शिक्षक पाँच-सात विषय सिखा जाते हों, वहाँ लड़कोंको सदाचार सिखानेकी जिम्मेदारी किस शिक्षककी होगी? और आखिरमें कितने शिक्षक अैसे मिलेंगे, जो बालकोंको सदाचारके रास्ते ले जाने या अुनका विश्वास प्राप्त करनेके अधिकारी होंगे? अिसमें तो शिक्षाका पूरा सवाल खड़ा होता है। परन्तु अिसकी चर्चा अिस जगह नहीं हो सकती।

समाज भेड़-बकरियोंके रेवड़की तरह बिना सोचे-समझे आगे बढ़ता जाता है और कुछ लोग अिसीको प्रगति समझते हैं। अैसी भयंकर स्थितिमें भी हमारा अपना-अपना रास्ता आसान है। जो जानते हैं वे अपने-अपने क्षेत्रमें जितना हो सके सदाचारका प्रचार करें। पहला प्रचार तो वे स्वयं अपनेमें ही करें। दूसरेके दोष पर ध्यान देते समय हम स्वयं बहुत भले बन जाते हैं। परन्तु हम अपने दोषों पर ध्यान देंगे, तो हम अपने आपको कुटिल और कामी पायेंगे। दुनिया भरके काज़ी बननेसे स्वयं अपना काज़ी बनना ज्यादा लाभकारी होता है और अैसा करनेसे हमें दूसरोंके लिअे भी रास्ता मिल जाता है। 'आप भला तो जग भला' का अेक अर्थ यह भी है। तुलसीदासजीने संत पुरुषको पारसमणिकी जो अुपमा दी है, वह गलत नहीं। हम सबको संत बननेका प्रयत्न करना है। अैसा होना अलौकिक मनुष्यके लिअे अूपरसे अुतरा हुआ कोअी प्रसाद नहीं, बल्कि हर मनुष्यका कर्तव्य है। यही जीवनका रहस्य है।

नवजीवन, २६-९-'२६

# १२

## विषय वासनाकी विकृति

कुछ वर्ष हुअे बिहार सरकारके शिक्षा-विभागने अपने स्कूलोंमें फैले हुअे 'अप्राकृतिक दोष' के सवालके बारेमें जाँच करनेके लिअे अेक समिति कायम की थी। अिस समितिने बताया था कि स्कूलोंके शिक्षकोंमें भी यह बुराअी फैली हुअी है और वे अपनी अस्वाभाविक विषय-वासनाको पूरा करनेके लिअे विद्यार्थियों पर अपने पदका दुरुपयोग करते हैं। शिक्षा-विभागके संचालकने अेक गश्ती-पत्र जारी करके जिस शिक्षकमें अैसी बुराअी हो, अुस पर विभागकी तरफसे कदम अुठानेकी आज्ञा दी थी। अिस गश्ती-पत्रसे क्या नतीजा निकला — यदि कोअी निकला हो तो — यह जानना बड़ा दिलचस्प रहेगा।

अिस बुराअीकी तरफ मेरा ध्यान खींचनेवाला और यह बतानेवाला साहित्य कि यह बुराअी सारे भारतमें सरकारी और खानगी स्कूलोंमें बढ़ती जा रही है, दूसरे प्रान्तोंसे मेरे पास भेजा गया था। लड़कोंकी तरफसे मिले हुअे निजी पत्रोंसे भी यह खबर पक्की होती है।

अप्राकृतिक होने पर भी यह बुराअी हममें अनादि कालसे चली आ रही है। सभी छिपे हुअे दोषोंका अुपाय ढूँढ़ना कठिन होता है। और जब यह विद्यार्थियोंके माता-पिता जैसे शिक्षकों तक में फैल जाती है, तब तो अुपाय खोजना और भी कठिन हो जाता है। 'नमक ही अपना खारापन छोड़ दे, तो फिर खारापन कहाँसे आयेगा?' मेरी रायमें शिक्षा-विभागकी तरफसे जो कदम अुठाये गये हैं, वे साबित हो चुके सभी मामलोंमें ज़रूरी हैं, फिर भी अुनसे शायद ही यह बुराअी पूरी तरह दूर हो सकेगी। अिसका मुकाबला करनेका अुपाय तो लोकमत तैयार करके अुसे ज़रूरी अूँची भूमिका पर ले जाना ही है। परन्तु अिस

देशमें बहुतसे मामलोंमें लोकमत जैसी कोओी चीज़ है ही नहीं। राजनैतिक जीवनमें लाचारीकी जो भावना फैली हुओी है, अुसका असर दूसरे सब विभागों पर हुआ है। अिसलिअे हमारी आँखोंके सामने होनेवाली बहुतसी बुराअियोंको देखकर हम अुनकी अुपेक्षा करते हैं।

आजकी शिक्षा, जो साहित्यकी शिक्षाके सिवाय और किसी शिक्षा पर जोर नहीं देती, अिस बुराअीको दूर करनेके लिअे योग्य नहीं है। यह तो असलमें अुसे बढ़ानेवाली है। सरकारी स्कूलोंमें जानेसे पहले जो लड़के शुद्ध थे, वे वहाँकी पढ़ाअीके अंतमें अशुद्ध, अशक्त और निकम्मे बने हुअे दीखते हैं। अुपर्युक्त विहारकी समितिने अैसी सिफारिश की है कि लड़कोंके मनमें धर्मके लिअे आदर पैदा करना चाहिये। परन्तु बिल्लीके गलेमें घंटी कौन बाँधे? शिक्षक ही धर्मके लिअे आदर रखना सिखा सकते हैं। किन्तु जहाँ अुन्हींके मनमें धर्मका मान न हो, वहाँ क्या किया जाय? अिसका अेक ही अुपाय है, और वह यह कि शिक्षकोंका ठीक चुनाव किया जाय। परन्तु अैसा करनेका अर्थ या तो यह है कि आजकल शिक्षकोंको जो वेतन दिया जाता है, अुससे कहीं अूँचे वेतनवाले शिक्षक रखे जायँ, या यह कि शिक्षाको नौकरी न समझकर अेक पवित्र कर्तव्य मानने और अुसके लिअे जीवन अर्पण करनेकी पद्धति अपनायी जाय। यह पद्धति आज भी रोमन कैथोलिक सम्प्रदायमें जारी है। मुझे तो अैसा लगता है कि पहली पद्धति भारत जैसे गरीब देशमें नहीं चल सकती, अिसलिअे दूसरी पद्धति अपनाये बिना काम नहीं चल सकेगा। पर जिस राज्य पद्धतिमें हर चीजकी कीमत रुपये-आने-पाअीमें आँकी जाती है और जो दुनियामें सबसे खर्चीली है, अुसमें हमारे लिअे यह रास्ता खुला नहीं है।

आम तौर पर माता-पिता अपने बच्चोंके सदाचारके बारेमें कोओी रस नहीं लेते, अिसलिअे आजकी अिस बुराअीका सामना करनेकी कठिनाओी बढ़ जाती है। माता-पिता मान लेते हैं कि लड़कोंको स्कूल भेज दिया कि अुनका फर्ज पूरा हुआ। अिस तरह हमारे सामनेका दृश्य निराशा

पैदा करनेवाला है । परन्तु सब बुराअियोंका अेक ही अिलाज है यानी सबकी शुद्धि की जाय । यह हकीकत आशाजनक है । बुराअी बहुत बड़ी है, अिससे हमें दबना नहीं चाहिये । हममें से हरअेक आत्मशुद्धिको अपना पहला काम समझे और अपने बिलकुल आसपासके क्षेत्र पर बारीक नजर रखनेके लिअे भरसक प्रयत्न करे । हम दूसरे मनुष्यों जैसे नहीं, अैसे आत्म-सन्तोषकी भावनासे बैठे नहीं रहना चाहिये । अप्राकृतिक दोष कोअी अलग चमत्कार नहीं । यह तो सिर्फ एक ही रोगका, अुग्र चिन्ह है । हममें गंदगी हो, हम विषयी और पतित हों, तो हमें अपने पड़ोसियोंको सुधारनेकी आशा रखनेसे पहले अपने आपको सुधारना चाहिये । अपने दोषके लिअे बहुत ज्यादा अुदारता रखकर भी यदि हम दूसरोंका न्याय करने बैठें, तो व्यवहारका अतिरेक होता है । नतीजा यह होता है कि बात दुष्चक्रमें पड़ जाती है । जो मेरे अिस कहनेकी सचाअीको समझता है, अुसे अिस चक्रमें से निकल जाना चाहिये । अैसा करनेसे अुसे मालूम होगा कि प्रगति, जो आसान तो कभी नहीं होती, प्रत्यक्ष रूपसे संभव हो सकती है ।

[ यंग अिंडिया, भाग ११, पृ० २१२ से ]

## २

लाहोरके सनातन धर्म कॉलेजके प्रिंसिपाल लिखते हैं :

" अिसके साथ अखबारकी कतरन और विज्ञापन वगैरा भेजता हूँ । अिन्हें देख जानेकी आपसे प्रार्थना करता हूँ । अिन्हींसे आप सब बात समझ जायँगे । यहाँ पंजाबमें छात्र हितकारी संघ बहुत अुपयोगी काम कर रहा है । शिक्षा संस्थाओंका और अधिकारी वर्गका ध्यान अिसकी तरफ खिंचा है और लड़कोंके संस्कारी माता-पिताओंकी दिलचस्पी भी संघने अिस काममें पैदा की है । बिहारके पंडित सीताराम दास अिस कामको शुरू करनेवाले हैं और अिस कामको सहारा देनेवालोंमें यहाँके बहुतसे प्रतिष्ठित सज्जनोंके नाम गिनाये जा सकते हैं ।

"यह निर्विवाद है कि भारतके दूसरे हिस्सोंसे पंजाब और अुत्तर पश्चिमी सरहदके प्रान्तोंमें छोटी अुम्रके लड़कोंको फँसानेका दुराचार ज्यादा है।

"मेरी प्रार्थना है कि आप 'हरिजन' में या किसी और पत्रमें लेख लिखकर अिस बुराअीकी तरफ देशका ध्यान खींचें।"

अिस अत्यन्त नाजुक प्रश्नके बारेमें बहुत समय पहले छात्र हितकारी संघके मंत्रीने मुझे लिखा था। अुनका पत्र आते ही मैंने डॉ॰ गोपीचंदके साथ पत्रव्यवहार शुरू कर दिया और अुन्होंने बताया कि संघके मंत्रीके पत्रमें लिखी हुअी सब बातें सच हैं। परन्तु अिस प्रश्नकी अिस पत्रमें या और कहीं चर्चा करनेकी मुझे स्पष्ट बात नहीं सूझती थी। अिस दुराचारका मुझे पता था, परन्तु मुझे यह भरोसा न था कि पत्रमें अिसकी चर्चा करनेसे लाभ होगा या नहीं। यह भरोसा आज भी नहीं है। परन्तु कॉलेजके प्रिंसिपालकी प्रार्थनाकी मैं अुपेक्षा नहीं कर सकता।

यह दुराचार नया नहीं है। यह बहुत फैला हुआ है। यह गुप्त रखा जाता है, अिसलिअे आसानीसे पकड़ा नहीं जा सकता। विलासी जीवनके साथ यह जुड़ा रहता है। प्रिन्सिपालके बताये हुअे किस्सेमें तो यह कहा गया है कि शिक्षक ही अपने विद्यार्थियोंको भ्रष्ट करते हैं। बाड़ ही जब खेतको खाने लगे, तो शिकायत किससे की जाय? बाअिबलमें कहा है कि 'नमक ही अपना खारापन छोड़ दे, तो फिर खारापन कहाँसे आयेगा?'

यह प्रश्न अैसा है कि जिसे कोअी जाँच समिति या सरकार हल नहीं कर सकती। यह तो नैतिक सुधारकका काम है। माता-पिताके मनमें अुनकी जिम्मेदारीका भान पैदा करना चाहिये। विद्यार्थियोंको शुद्ध और पवित्र रहन-सहनके निकट सम्पर्कमें लाना चाहिये। अिस विचारका गंभीरताके साथ प्रचार करना चाहिये कि सदाचार और निर्मल जीवन सच्ची शिक्षाका आधार है। शिक्षा संस्थाओंके ट्रस्टियोंको शिक्षकोंके

चुनावमें बहुत ही सावधानी रखनी चाहिये और शिक्षकको चुन लेनेके बाद भी अिस बातका ध्यान रखना चाहिये कि अुसका चालचलन ठीक है या नहीं। ये तो मैंने थोड़ेसे अुपाय बताये हैं। जिनसे यह भयानक दुराचार जड़से, नहीं मिटे, तो भी काबूमें ज़रूर लाया जा सकता है।

हरिजनबंधु, २८-४-'३५

३

शिक्षक अपनी विद्यार्थिनियोंके साथ छिपे सम्बन्ध रखने लगें और फिर अुनमें से कोअी-कोअी अुन सम्बन्धोंको विवाहका रूप दे दें, तो अिससे अैसे सम्बन्ध पवित्र नहीं बन जाते। मेरी पक्की राय है कि जैसे सगे भाअी-बहनोंमें पति-पत्नीका नाता नहीं हो सकता, वैसे ही शिक्षक और शिष्यामें भी नहीं हो सकता। यदि अिस सुवर्ण नियमका पूरी तरह पालन न हो, तो अन्तमें शिक्षण संस्था टूट जाय; कोअी लड़की शिक्षकोंसे सुरक्षित न रह सके। शिक्षककी पदवी अैसी है कि लड़के और लड़कियाँ सदा अुनके असरमें रहते हैं; शिक्षककी बातको वे वेदवाक्य समझते हैं। अिस कारणसे शिक्षक मर्यादा न रखे, तो अुसके बारेमें अुन्हें कोअी शंका नहीं होती। अिसलिअे जहाँ शरीरसे अलग आत्माका सम्मान है, वहाँ अिस तरहके सम्बन्ध असह्य माने जाते हैं, माने जाने चाहियें।

हरिजनबंधु, २९-११-'३६

१३

# काम-विज्ञान

श्री मगनभाओी देसाओी, जिन्होंने थोड़े दिन पहले गुजरात विद्यापीठसे 'पारंगत' की पदवी ली है, अपने ७ अक्तूबरके पत्रमें लिखते हैं :

"अिस बारके 'हरिजन' के लेख परसे मेरे जीमें आया कि मैं भी अेक चर्चा आपसे कर लूँ। अिस बारेमें आपने शायद ही आज तक लिखा या कहा है। यह विषय है बालकों, खास कर विद्यार्थियोंको काम-विज्ञान सिखानेका। आप तो जानते हैं कि . . . . गुजरातमें अिस विषयके बड़े हिमायती माने जाते हैं। मुझे स्वयं तो अिस बारेमें हमेशा अंदेशा रहा है। अितना ही नहीं, मैंने तो यह माना है कि वे अिस विषयमें लायक भी नहीं हैं। परिणामसे तो अिसकी बुराओी दीखती जा रही है। वे तो शायद यही मानते होंगे कि मानो काम-विज्ञानके अज्ञानसे ही शिक्षा और समाजमें आजकी सड़ाँध है। नया मानस-शास्त्री भी मनुष्यकी प्रवृत्तिकी जड़ अिसी सोये हुअे कामको बताता है। 'काम अेव क्रोध अेव:' से आगे ये लोग जाते ही नहीं। हमारा . . . . अेक दिन मुझे कहने लगा, 'आपको कहाँ पता है कि हममें से हरअेकमें काम नामक राक्षस रहा हुआ है!' और अिस परसे अिसकी नैतिक भावना जाग्रत होनेके बजाय जड़ हुआी पाओी गओी! अिस तरह काम-विज्ञानकी शिक्षाके नाम पर ही गुजरातमें अिसका काफी प्रचार हो रहा है। अिसकी पुस्तकें भी लिखी गओी हैं और अुनके संस्करण हजारोंकी संख्यामें खपते हैं। कैसे-कैसे साप्ताहिक अिस सम्बन्धमें चलते हैं और कितनी अिनकी खपत है! यह सब तो ठीक ही है। जैसा समाज वैसे खिलानेवाले अुसे मिल ही जाते हैं और सुधारककी स्थिति और ज्यादा अटपटी बनाते हैं।

"परन्तु मैं तो आपसे शिक्षाके अिस सवालकी खुली चर्चा चाहता हूँ : क्या सचमुच शिक्षामें काम-शास्त्रकी शिक्षा ज़रूरी है ? कौन अिसका अधिकारी है ? क्या वह सबको मामूली भूगोल और हिसाबकी तरह सिखाया जाय ? अुसके सम्बन्धमें क्या सिखाया जाय ? अुसकी मर्यादा क्या हो और वह कौन बाँधे ? और खूनमें मिले हुअे अिस शत्रुकी मर्यादा अुलटी दिशामें बाँधना ठीक होगा या आजकी तरह शुभ नामसे अुसे बढ़ावा दिया जाय ? अैसे-अैसे अनेक प्रकारके और अनेक पहलुओंवाले कअी सवाल अुठते हैं । आप अिसके बारेमें अंग्रेजीमें लिखें सो तो ठीक है, परन्तु मेरा मुख्य सवाल गुजरातके सिलसिलेमें है, अिसलिअे गुजरातीमें भी लिखिये; और यह तो हमारी अेक शिकायत है ही कि आप सीधे 'हरिजनबन्धु' में कुछ नहीं लिखते । आशा है आप अिस प्रश्न पर लिखेंगे, और अुसके अलावा गुजरातीमें भी कुछ लिखेंगे ।

"मेरे सवालके सम्बन्धमें अेल० पी० जैक्सका अेक अुद्धरण* देता हूँ । आप तो अिनसे ऑक्सफोर्डमें मिले होंगे । अिसके पुस्तकीय परिचयसे मुझे तो अिस आदमीकी दृष्टि और अनुभवके लिअे बड़ा आदर है । यह अुद्धरण भी कितना मार्मिक है !"

* * *

गुजरातमें क्या और दूसरे प्रान्तोंमें क्या, कामदेव रिवाजके मुताबिक जीतते चले जा रहे हैं । अुनकी आजकलकी जीतमें यह विशेषता है कि अुनकी शरणमें जानेवाले स्त्री-पुरुष अैसा करना अपना धर्म समझते मालूम होते हैं । जब गुलाम अपनी बेड़ीको आभूषण समझकर मुस्कराये, तब अुसके मालिककी पूरी जीत हुअी मानी जाती है । अिस तरह कामदेवकी जीत होती देखकर भी मेरा अटल विश्वास है कि यह विजय क्षणिक है, तुच्छ है और अंतमें डंक मारनेके बाद बिच्छूकी तरह निस्तेज हो जानेवाली है । परन्तु अैसा होनेसे पहले पुरुषार्थ करनेकी ज़रूरत तो रहेगी ही । यहाँ मेरे कहनेका यह मतलब

* अिस प्रकरणके खण्ड २ के रूपमें यह अुद्धरण पृष्ठ ९२ पर दिया गया है ।

नहीं कि कामदेवको अन्तमें हारना पड़ेगा, अिसलिअे हमें गाफिल हो कर बैठे रहना चाहिये। कामदेव पर विजय पाना स्त्री-पुरुषके परम कर्तव्योंमें से अेक है। अुसे जीते विना स्व-राज्य असम्भव है। स्व-राज्यके विना स्वराज या रामराज होगा ही कैसे? स्व-राज्यके बिना स्वराजको खिलौनेका आम समझिये। दीखनेमें बड़ा सुन्दर और खोलें तो अन्दर पोलंपोल! कामको जीते विना कोअी सेवक हरिजनोंकी, साम्प्रदायिक अेकताकी, खादीकी, गाय माताकी और देहातियोंकी सेवा कभी नहीं कर सकता। अिस सेवाके लिअे बुद्धिकी सामग्री काफी न होगी। आत्मबलके बिना यह महान सेवा अशक्य है। और प्रभुकी कृपाके विना आत्मबल नहीं आ सकता। कामी पर अीश्वरकी कृपा हुअी कभी देखी नहीं गअी।

तो क्या काम-शास्त्रका हमारी पढ़ाअीमें स्थान है? या है तो कहाँ है? — यह सवाल मगनभाअीने पूछा है। काम-शास्त्र दो तरहके हैं। अेक तो कामदेव पर विजय पानेका शास्त्र है। अुसका स्थान शिक्षाक्रममें होना ही चाहिये। दूसरा शास्त्र कामको भड़कानेवाला है। अिससे बिलकुल दूर रहना चाहिये। सब धर्मोंने कामको बड़ा शत्रु माना है। क्रोधका दूसरा दर्जा है। गीता तो कहती है कि कामसे ही क्रोध पैदा होता है। यहाँ 'काम' का व्यापक अर्थ लिया गया है। हमारे विषयका 'काम' प्रचलित अर्थमें ही प्रयुक्त हुआ है।

अैसा होने पर भी यह सवाल रहता है कि लड़कों और लड़कियोंको गुप्त अिन्द्रियों और अुनके व्यापारके बारेमें ज्ञान कराया जाय या नहीं? मुझे लगता है कि अेक हद तक यह ज्ञान अच्छा है। आज बहुतसे लड़के और लड़कियाँ शुद्ध ज्ञान न मिलनेसे अशुद्ध ज्ञान पाते हैं और अिन्द्रियोंका काफी दुरुपयोग करते देखे जाते हैं। अैसे होने पर भी हम न देखें, तो अिससे काम पर विजय नहीं पाअी जा सके। मैं लड़के-लड़कियोंको अुन अिन्द्रियोंके सुपयोग और दुरुपयोगका

ज्ञान देनेकी ज़रूरत मानता हूँ। मेरे हाथमें आये हुअे लड़के-लड़कियोंको मैंने अिस तरहका ज्ञान देनेका प्रयत्न भी किया है।

परन्तु यह शिक्षा दूसरी ही दृष्टिसे दी जाती है। अिस तरह अिन्द्रियोंका ज्ञान देते समय संयम सिखाया जाता है, यह सिखाया जाता है कि कामको कैसे जीता जाय। यह ज्ञान देते हुअे ही मनुष्य और पशुके बीचका भेद समझाना ज़रूरी हो जाता है। मनुष्य वह है जिसमें हृदय और बुद्धि है। यह 'मनुष्य' शब्दका धात्वर्थ है। हृदयको जाग्रत करनेका अर्थ है, आत्माको जाग्रत करना। बुद्धिको जाग्रत करनेका अर्थ है, सार और असारका भेद सिखाना। यह सिखाते हुअे ही यह भी सिखाया जाता है कि कामदेव पर विजय कैसे मिले।

यह अच्छा शास्त्र कौन सिखाये? जैसे खगोल या ज्योतिष शास्त्र वही सिखा सकता है जो अुसमें पारंगत हो, वैसे ही कामशास्त्र वही सिखा सकता है जिसने कामको जीत लिया हो। अुसकी भाषामें संस्कार होगा, बल होगा और जीवन होगा। जिसके अुच्चारणके पीछे अनुभव-ज्ञान नहीं, अुसका अुच्चारण जड़वत् होता है, वह किसी पर असर नहीं डाल सकता। जिसे अनुभव-ज्ञान है, अुसकी बातका फल निकलता है।

आजकलका हमारा बाहरी व्यवहार, हमारा वाचन, हमारा विचार-क्षेत्र सब कामकी जीत बतानेवाले हैं। अिसके फंदेमें से निकलनेका प्रयत्न करना है। यह कार्य अवश्य टेढ़ी खीर है। किन्तु जिन्हें शिक्षण-शास्त्रका अनुभव है और जिन्होंने कामदेवको जीतनेका धर्म अंगीकार कर लिया है, अैसे गुजराती भले मुट्ठी भर ही हों, परन्तु यदि अुनकी श्रद्धा अटल रहेगी, वे सदा जाग्रत रहेंगे और सतत प्रयत्न करेंगे, तो गुजरातके लड़के-लड़कियोंको शुद्ध ज्ञान मिलेगा, वे कामके जालसे छूट जायेंगे, और जो न फँसे होंगे, वे अुससे बच जायेंगे।

हरिजनबन्धु, २२-११-'३६

(२)

## कामशास्त्रकी शिक्षा

[ अूपरके लेखमें दिये गये पत्रमें अेल० पी० जेक्सके जिस अुद्धरणका अुल्लेख किया गया है, अुसका अनुवाद नीचे दिया जाता है। यह अुद्धरण अिस लेखककी 'मनुष्यकी सर्वांगीण शिक्षा' — The Education of the Whole Man' नामक पुस्तकमें से है।]

"मुझे यह स्वीकार करना चाहिये कि यह मानना मुझे महा भयंकर भ्रम मालूम होता है कि काम-शास्त्रकी पूरी और शुद्ध चर्चा करनेसे बालक और नौजवान अिसकी विकृतिसे बच जायेंगे। अिसी तरह अैसी 'पूरी और शुद्ध' चर्चा करनेकी जिम्मेदारी जिन शिक्षकों या शिक्षिकाओंके कंधों पर हो, अुनकी जगह लेनेको भी मेरा मन नहीं होगा। यह चीज़ अैसी है कि अिसकी चर्चा भी, विशेष कर बालकोंके साथ की जाने पर, अुनके लिअे सुझावका रूप ले लेती है और अुनके मनमें अैसी वासनाअें जाग्रत करनेका कारण बन जाती है। अिसकी गुप्तताका कुछ हद तक यही रहस्य है। चर्चासे कुतूहल अेक रूपमें शान्त होता है, तो दूसरे रूपमें जाग्रत होता है। जो नौजवान, शिक्षकोंकी देखरेखमें (ये शिक्षक स्वयं भी शायद ही खतरेसे खाली होते होंगे) काम-शास्त्रमें विशारद हुआ हो और जिसे पेड़के फलनेसे लगाकर यह सारा 'विषय' कण्ठस्थ हो, वह अच्छी तरह जानता है कि अुसका ज्ञान जब तक प्रयोगकी हद तक नहीं पहुँचाया जायगा, तब तक वह ज्ञान बिलकुल अधूरा रहेगा; और संभव तो यह है कि वह कुछ ही समयमें अिसका प्रयोग किये बिना न रहेगा। अुसे यह भी संदेह रहता है कि शिक्षकोंने अुसे अिस बारेमें पूर्ण सत्य बताया है या नहीं। खास कर जब सदाचारके सिद्धान्तों पर बहुत जोर दिया जाता है, तब तो नौजवानको हमेशा यह शक रहता है; और जब अैसा होता है तो वह अधिक जल्दी प्रयोग करनेकी स्थितिमें पहुँचेगा और

यह पता लगायेगा कि शिक्षकोंने अुसे अँधेरेमें रखा है या नहीं। शायद सिद्धान्तसे प्रयोग पर, कामशास्त्रके ज्ञानसे आचरण पर जल्दी-जल्दी पहुँचनेकी यह प्रगति युरोपके दक्षिणी भागके देशोंमें बुरी न समझी जाती हो, या शायद अिसीको ध्येय माना जाता हो; परन्तु ठंडे देशोंमें स्त्री-पुरुषके सम्बंधमें सुधार करानेकी अिच्छा रखनेवाले जब नौजवानोंको कामशास्त्र सिखानेकी बात कहते हैं, तब अुनके मनमें यह चीज़ नहीं होती। विज्ञानके नामसे पहचानी जानेवाली ज्ञानकी दूसरी शाखाओंमें शिक्षा देते समय पाठ पूरा करने और अुसे विद्यार्थीके गले अुतारनेकी खातिर प्रयोग ज़रूरी समझा जाता है। गणितके जिस सवालका सिद्धान्त विद्यार्थीको समझाया जाता है, वह सवाल अुसे स्वयं करके देख लेना चाहिये; जिस चीज़के गुण अुसे बताये जाते हैं, अुस चीज़की अुसे जाँच कर लेनी चाहिये और अुसके नमूने और नक़लें तैयार करनी चाहियें। वर्गमें जो कुछ सिखाया गया हो, अुसकी जाँच प्रयोगशालामें करके देख लेनी चाहिये, स्कूलसे बाहर अपने ज्ञानकी परीक्षा कर लेनी चाहिये, आदि। परन्तु जो विषय हमारे सामने है, अुसमें यही सवाल अैसा है, जहाँ शिक्षकको रुक जाना पड़ता है। क्योंकि अिसका हेतु प्रयोगको अुत्तेजन देनेके बजाय प्रयोगको रोकना होता है; और सच्चा डर यह है कि जो चीज़ शिक्षकने अधूरी रखी है, अुसे विद्यार्थी शिक्षकके सोचे हुअे समयसे जल्दी ही और वह न चाहे अिस तरीकेसे पूरा कर लेगा। ऑक्सीजनके गुण या पाचनकी क्रिया समझाते समय वह जैसे 'ठंडे खून' से काम लेता है, वैसा अिसमें नहीं होता। यहाँ तो गरमागरम खूनसे, प्रयोगके लिअे गरम हो रहे खूनसे वह काम लेता है: वह आगके साथ खेलता है।

"शिक्षकके, लिअे जो डर रहता है, अुसे विस्तारसे बतानेकी ज़रूरत नहीं। काम-विकारके मामलेमें दिल खोल कर बात करना कठिन है। परन्तु यदि मनमें चोरी रखी हो, तो नौजवान अुसे जल्दी पकड़ लेते हैं; और अैसा ज़रा भी शक अुन्हें हो जाय कि शिक्षकने

दिलमें कुछ छिपाकर बात की है, तो अच्छे नतीजेकी आशा मारी जाती है। धर्मके बारेमें भी यही बात है।

"अिसलिअे मैं तो अिस निर्णय पर पहुँचता हूँ कि 'काम-विकारके प्रश्नका निपटारा' जिस हद तक शिक्षकके हिस्सेमें आता है, अुस हद तक अुसका कर्तव्य यह है कि ज्ञान प्राप्ति तक ही शिक्षाका ध्येय न रख कर अुसे आगे बढ़ावे और नवसर्जनकी कुशलता तक अुसे ले जाय। सीधी भाषामें अिसका अर्थ यह है कि कलाको (यहाँ कलाका अर्थ विशाल यानी बहुत कुशलतासे किया हुआ कर्तव्य कर्म समझना चाहिये) पढ़ाअीमें ज्यादा महत्त्वका और ज्यादा केन्द्रीय स्थान मिलना चाहिये।

"अिस सवालके बारेमें माता-पिताका क्या कर्तव्य है, अिसकी भी चर्चा कर लें। . . . मैंने अूपर जो कुछ कहा है, वह यहाँ थोड़ा मर्यादित रूपमें लागू किया जा सकता है। अिस विषयमें वाद-विवादकी गुंजाअिश ही नहीं है कि यदि कामशास्त्रका ज्ञान देना हो, तो माता-पिता अुसके अच्छेसे अच्छे शिक्षक हैं या होने चाहियें। गृह-जीवनके साधारण वातावरण पर सारा आधार है। गृह-जीवन यदि निष्प्राण या विषय-भोगसे भरा हो, तो कामशास्त्र जितना दूसरी जगह खतरनाक हो सकता है, अुतना ही घरमें भी हो सकता है।"

हरिजनबन्धु, २९-११-'३६

## १४

# शरीरश्रमकी महिमा

### कुछ सवाल-जवाब*

अेक मित्रने कुछ दिन हुअे गांधीजीके साथ बातें करते समय फुरसतका सवाल अितना कठिन है, अिस बारेमें आश्चर्य प्रगट किया और पूछा: "आप यह आग्रह क्यों रखते हैं कि मनुष्यको रोज़ आठ घण्टे शरीरश्रम करना चाहिये? सुव्यवस्थित समाजमें क्या यह नहीं हो सकता कि कामके घंटे घटाकर दो कर दिये जायँ और मनुष्यको बुद्धि और कलाके कामोंके लिअे काफी फुरसत दी जाय?"

"हम जानते हैं कि जिन्हें अैसी फुरसत मिलती है — फिर भले वे मज़दूर हों या बुद्धिजीवी — वे अुसका अच्छेसे अच्छा अुपयोग नहीं करते, अुलटे हम तो देखते हैं कि खाली दिमाग शैतानका कारखाना बन जाता है।"

"जी नहीं; मनुष्य आलसी बनकर बैठा नहीं रहता। मान लीजिये हम दो घंटे शरीरश्रम और छ: घंटे बौद्धिक श्रम, अिस तरह दिनके हिस्से करें, तो अिससे राष्ट्रको लाभ न होगा?"

"मैं नहीं मानता कि अैसा हो सकता है। मैंने अिसका हिसाब ही नहीं लगाया, परन्तु कोअी आदमी राष्ट्रके लिअे बौद्धिक श्रम न करके सिर्फ स्वार्थके लिअे करे, तो यह योजना पार नहीं पड़ सकती। सरकार अुसे दो घंटेकी मज़दूरीके बदलेमें काफी रुपया दे और दूसरा काम कुछ दिये बिना करनेको मजबूर करे तो दूसरी बात है। वह बहुत सुन्दर चीज़ होगी। परन्तु यह बात अेक तरहकी सरकारी जबरदस्तीके बिना नहीं हो सकती।"

---

* श्री महादेवभाअीके पत्रमें से।

"परन्तु आपका ही अुदाहरण लीजिये। आपसे आठ घंटे शरीरश्रम हो ही नहीं सकता; आपको आठ घंटे या अिससे भी ज्यादा बौद्धिक काम करना पड़ता है। आप तो अपनी फुरसतका दुरुपयोग नहीं करते!"

"यह लाजिमी काम है और अिसमें फुरसत ही नहीं रहती। अुदाहरणके लिअे मैं टेनिस खेलने जाअूँ, तो कहा जा सकता है कि यह फुरसतका समय है। मेरा अुदाहरण लेकर भी मैं यह कहूँगा कि यदि हम आठ घंटे हाथ-पैरोंसे मेहनतका काम करते होते, तो हमारे मन आजसे कहीं ज्यादा अच्छे होते, हमें अेक भी निकम्मा विचार न आता। मैं यह नहीं कह सकता कि मेरे मनमें कभी बुरे विचार आते ही नहीं। आज भी मैं जो अैसा हूँ, अिसका कारण यह है कि मैंने अपने जीवनमें बहुत जल्दी शरीरश्रमकी कीमत समझ ली थी।"

"परन्तु यदि शरीरश्रममें अितना ज्यादा गुण हो, तो हमारे जो लोग रोज आठ घंटेसे भी ज्यादा काम करते हैं, अुनके मनकी पवित्रता या शक्ति पर अुसका कोअी खास असर क्यों नहीं दिखाअी देता?"

"जिस तरह मानसिक श्रममें ही सारी शिक्षा नहीं समा जाती, अुसी तरह शरीरश्रममें भी सारी शिक्षा नहीं समा जाती। हमारे लोग जानते नहीं। परन्तु अुनकी दृष्टिमें तो यह व्यर्थका श्रम है और अिससे मनुष्यकी सूक्ष्म वृत्तियाँ जड़ बन जाती हैं। सवर्ण हिन्दुओंके खिलाफ मेरी यही तो सबसे बड़ी शिकायत है। अिन्होंने मजदूरोंके कामको बिना लाभका काम बना दिया है। अिससे अुन लोगोंको न कुछ आनंद मिलता है और न अुनकी अिसमें कोअी दिलचस्पी होती है। यदि हमने अुन्हें समाजके समान दर्जेवाले सदस्य माना होता, तो अुनका स्थान समाजमें सबसे ज्यादा गौरवभरा होता। यह कलियुग माना जाता है। मैं मानता हूँ कि सतयुगमें समाज आजसे अधिक सुव्यवस्थित था। हमारा देश बहुत पुराना है। अिसमें कअी संस्कृतियाँ पैदा हुअीं और मिट गअीं, और किस युगमें हम कैसे थे, यह निश्चयपूर्वक कहना कठिन है। परन्तु अिस बारेमें जरा भी शक

नहीं कि हमने बहुत लम्बे अर्से तक शूद्रोंकी जो अुपेक्षा की, अुसीके कारण हमारी आज यह दुर्दशा हुअी है। आजकी गाँवोंकी संस्कृति — यदि अुसे संस्कृति कह सकते हों तो — भयानक संस्कृति है। गाँवोंके लोग पशुओंसे भी बुरा जीवन बिताते हैं। कुदरत पशुओंको काम करने और स्वाभाविक जीवन बितानेको मजबूर करती है। हमने अपने मज़दूर वर्गका अैसा बुरा हाल किया है कि वे कुदरती तौर पर न तो काम कर सकते हैं, न जी सकते हैं। हमारे लोगोंने बुद्धिसे आनंदभरा शरीरश्रम किया होता, तो आज हमारी दूसरी ही स्थिति होती।"

"तो यही बात है न कि श्रम और संस्कारिताको अलग नहीं कर सकते?"

"नहीं। प्राचीन रोममें अैसा करनेका प्रयत्न किया गया था, परन्तु वह बिलकुल निष्फल गया। श्रम किये बिना मिली हुअी संस्कारिता किसी भी कामकी नहीं। रोमन लोगोंने मौज करनेकी आदत डाली और बरबाद हो गये। सारे समय मनुष्य सिर्फ लिखकर, पढ़कर या भाषण करके ही मनका विकास नहीं कर सकता। मैंने जो कुछ पढ़ा है वह जेलमें फुरसतके समयमें पढ़ा है और मुझे अुससे लाभ हुआ है। क्योंकि यह सब वाचन चाहे जैसे नहीं, बल्कि अेक निश्चित हेतुसे किया गया था। और मैंने दिनों और महीनों तक आठ-आठ घंटे रोज काम किया है, फिर भी मैं नहीं मानता कि मेरा दिमाग खाली हो गया है। मैं बहुत बार रोज चालीस-चालीस मील चला हूँ, फिर भी मुझे दिमागकी जड़ताका अनुभव नहीं हुआ।"

"किन्तु आपको तो मनकी अितनी तालीम जो मिली हुअी थी!"

"नहीं भाअी, आपको पता नहीं कि मैं स्कूलमें और विलायतमें कैसा मध्यम बुद्धिका था। वाद-विवादकी सभाओंमें या अन्नाहारियोंकी सभाओंमें कभी बोलने तककी मेरी हिम्मत नहीं होती थी। यह न

समझिये कि जन्मसे ही मुझमें कोअी असाधारण शक्ति थी। मैं मानता हूँ कि अीश्वरने जान-बूझकर ही मुझे अुस समय बोलनेकी शक्ति नहीं दी थी। आपको मालूम होना चाहिये कि हमारे समूहमें सबसे कम वाचन मेरा है।"

हरिजनबन्धु, २-८-'३६

## १५

# मेरी कामधेनु

मैंने चरखेको अपने लिअे मोक्षका द्वार बताया है। मैं जानता हूँ अिस पर कुछ लोग हँसते हैं। परन्तु जो आदमी मिट्टीका गोला बना कर अुसे पार्थिवेश्वर चिंतामणिका बड़ा नाम देता है और फिर अुसी पर ध्यान लगाकर अुसीमें परमात्माके दर्शन करनेकी सुंदर आशा रखता है, अुसकी बुराअी मूर्तिकी महिमा न जाननेवाले ज़रूर कर सकते हैं। अिससे कोअी अिस तरह आत्म-दर्शन करनेके लिअे पागल होनेवाले अपना ध्यान थोड़े ही छोड़ देंगे? और जहाँ निन्दा करनेवाला जहाँका तहाँ रह जायगा, वहाँ ये तो अीश्वरके दर्शन करके ही छोड़ेंगे। अिसी तरह यदि चरखेके लिअे मेरी भावना शुद्ध होगी, तो मेरे लिअे तो यह चरखा ज़रूर मोक्ष देनेवाला सिद्ध होगा। रामनामकी गूँज सुनते ही हिन्दूके कान तुरंत अुधर घूम जायँगे। अुसकी धुन चलती होगी, अुस समय तो वह ज़रूर विकार-रहित होगा। अिस धुनका असर दूसरे धर्मवालों पर न हो तो अिससे क्या? 'अल्लाहो-अकबर' की आवाज सुनकर हिन्दू पर भले ही कोअी असर न हो, परन्तु मुसलमान तो यह आवाज़ सुनकर ज़रूर होशियार हो जायगा। भावुक अंग्रेज 'गॉड' का नाम लेते ही घड़ी भर तो अपना गुस्सा ठंडा करके विकारोंको छोड़ ही सकेगा। क्योंकि जिसकी जैसी भावना होती है, अुसे वैसा ही फल मिलता है।

अिस तर्कके अनुसार चरखेमें कुछ भी न हो, तो भी मैंने अुसमें बेहद शक्ति मानी है । अतः मेरे लिअे तो वह ज़रूर कामधेनु है । मैं हर तारको कातते समय भारतके गरीबोंका ध्यान करता हूँ । भारतके कंगाल लोगोंका अीश्वर परसे विश्वास अुठ गया है; फिर मध्यम वर्ग या अमीरोंका तो रहे ही कहाँसे ? जिसके पेटमें भूख है और जो अुस भूखको मिटाना चाहता है, अुसका तो पेट ही परमेश्वर है। जो आदमी अुसे रोटीका साधन देगा, वही अुसका अन्नदाता बनेगा; और अुसके जरिये शायद वह अीश्वरके दर्शन भी करेगा । जिन मनुष्योंके हाथ-पैर होने पर भी अुन्हें सिर्फ अन्न दे देना तो स्वयं ही दोषके भागी बनकर अुन्हें भी दोषके भागी बनानेके बराबर है । अुन्हें कुछ न कुछ मज़दूरी मिलनी चाहिये । करोड़ोंकी मज़दूरी चरखा ही हो सकता है। और अिस चरखे पर अुनकी श्रद्धा मैं कोरे भाषणोंसे नहीं जमा सकता, स्वयं कात कर ही जमा सकता हूँ । अिसीलिअे मैं कातनेकी क्रियाको तपस्या या यज्ञ-रूप बताता हूँ । और क्योंकि मैं यह मानता हूँ कि जहाँ शुद्ध चिन्तन है, वहाँ अीश्वर ज़रूर है, मैं हर तारमें अीश्वरको देख सकता हूँ ।

यह तो मैंने अपनी भावनाकी बात कही । यदि आप भी अिसे मान लें, तो फिर और क्या चाहिये ? परन्तु आप अिसे न स्वीकार करें, तो भी आपके लिअे कातनेके और बहुतसे कारण हैं । अिनमेंसे कुछ यहाँ लिखता हूँ :

१. आप कातेंगे तभी दूसरोंसे कतवा सकेंगे ।

२. आपके कातनेसे और अपना काता हुआ सूत चरखा संघको दे देनेसे अन्तमें खादीका भाव सस्ता हो सकेगा ।

३. कातनेकी कला सीख लेंगे, तो आप भविष्यमें या अभी जब चाहें तभी खादी-प्रचारके काममें मदद कर सकते हैं । क्योंकि अनुभवसे पाया गया है कि जिसे यह क्रिया कुछ भी नहीं आती, वह मदद नहीं कर सकता ।

४. आप कातें तो सूतकी किस्म सुधरे । रुपयेके लिअे कातने-वालोंको जल्दी रहती है । अिसलिअे वे जिस नम्बरका सूत कातते होंगे, अुसी नम्बरका कातते रहेंगे । सूतके नम्बरमें सुधार करनेका काम शोधक और शौकीनका है । यह भी अनुभवसे सिद्ध हुअी बात है । यदि आज तक सेवाकी वृत्तिसे कातनेवाले कुछ स्त्री-पुरुष तैयार न हुअे होते, तो सूतकी किस्ममें जो प्रगति हुअी है, वह नहीं हो सकती थी ।

५. यदि आप कातें, तो आपकी बुद्धिका अुपयोग चरखेमें सुधार करनेके लिअे हो सकता है । यह बात भी अनुभवसे सिद्ध हो चुकी है । चरखेमें जो सुधार आज तक हुअे हैं और अुसकी गतिमें जो तेजी आअी है, अुसका श्रेय सिर्फ यज्ञके तौर पर कातनेवाले याज्ञिकोंकी शक्तिको ही है ।

६. भारतकी पुरानी कारीगरी मिटती जा रही है । अुसका पुनरुद्धार भी कातनेकी कलाके पुनरुद्धार पर बहुत कुछ निर्भर करता है । कातनेमें कितनी कला भरी है, यह यज्ञके लिअे कातनेवाला जान सकता है । सत्याग्रहके सप्ताहमें कातनेवाले कातते-कातते थकते ही नहीं थे । चरखेके बारेमें अुनका जो भाव था, वह भी अुनके न थकनेका अेक कारण जरूर था । परन्तु कातनेमें यदि कोअी कला न होती, कातते समय होनेवाली आवाजमें संगीत न होता, तो २२॥ घंटे तक जमकर खुशीके साथ कुछ जवानोंने जो काता, सो नहीं हो सकता था । यहाँ हमें याद रखना चाहिये कि अिन कातनेवालोंको कोअी भी आर्थिक लालच नहीं था । अुनका कातना शुद्ध यज्ञ था ।

७. हमारे देशमें मजदूरी हलका पेशा माना जाता है । कवियोंने भी यह ठहरा दिया है कि सुखी मनुष्योंको यहाँ तक आराम रहता है कि अुन्हें चलना भी नहीं पड़ता और अुनके पैरोंके तलवेमें भी बाल अुगते हैं । अिस तरह जो अच्छेसे अच्छा कर्म है, जिस कर्मके साथ ही प्रजापतिने सब जीवोंको पैदा किया है, अुस कर्मको हम शिक्षाका रूप देना चाहते हैं । जिसे कोअी धन्धा नहीं मिलता, वही पेटके लिअे

कातता है। अिस तरहका गलत खयाल न फैलने देनेके लिअे भी आपका कातना ज़रूरी है। आप राजा हों या रंक, फिर भी यज्ञके लिअे आपको कातना ही चाहिये।

अूपर बताये हुअे सब कारण, आप लड़के हों या लड़की, आपके लिअे लागू होते हैं। परन्तु आपके लिअे (किशोर समाजके लिअे) कातनेके कुछ और भी खास कारण हैं। अुनकी तरफ मैं आपका ध्यान खींचना चाहता हूँ :

१. बचपनसे आप गरीबोंके लिअे मज़दूरी करें; यह कितनी बढ़िया बात है! क्योंकि कातनेकी क्रिया बचपनसे ही आपकी परोपकार बुद्धिको बढ़ायेगी।

२. आप रोज नियमित कातें, तो अिससे आपके जीवनमें नियमसे काम करनेकी आदत हो जायगी, क्योंकि कातनेके लिअे आप कोअी समय निश्चित करेंगे, तो और कामोंके लिअे भी समय नियत करेंगे। और जो हर कामके लिअे समय नियत करते हैं, वे अनियमित काम करनेवालोंसे दुगुना काम करते हैं, यह सभीका अनुभव है।

३. आपकी सुघड़ता बढ़ेगी, क्योंकि सुघड़ताके बिना सूत कतता ही नहीं। आपकी पूनियाँ साफ होनी चाहियें, आपके हाथ साफ और बिना पसीनेवाले होने चाहियें; आसपास धूल वगैरा न होनी चाहिये; कातनेके बाद आपको सूत सुघड़तासे अटेरन पर अुतार लेना चाहिये, अुसे फुंकारना चाहिये और अन्तमें अुसकी सुन्दर गुंडी बनानी चाहिये।

४. आपको यंत्र सुधारनेका मामूली ज्ञान मिलेगा। आम तौर पर भारतमें बच्चोंको यह जानकारी नहीं कराअी जाती। यदि आप आलसी बनकर अपने नौकरों या बड़ोंसे चरखा साफ करायेंगे, तो आपको यह ज्ञान नहीं मिलेगा। परन्तु जो बच्चे सूत भेजेंगे या भेजते हैं, अुनमें चरखेका प्रेम है, अैसा मैंने मान लिया है। और जो प्रेमके साथ कातते हैं, वे अपने यंत्रके हर हिस्से पर पूरा काबू रखते हैं। बढ़अीके औजार बढ़अी ही साफ कर लेता है। जो बढ़अी अपने औजार साफ

करना नहीं जानता, अुसकी बढ़अियोंमें गिनती ही नहीं होती। जो कातनेवाला अपना चरखा ठीक नहीं कर सकता, माल नहीं बना सकता, तकुअेकी साड़ी तैयार नहीं कर सकता और चमरखे अपने आप नहीं बना सकता, वह कातनेवाला कहलाता ही नहीं। या यह माना जायगा कि वह बेगार टालता है।

नवजीवन, १८-४-'२६

१६

## "महात्माजीकी आज्ञा है"

अेक शिक्षक लिखते हैं :

"कुछ महीनेसे हमारे स्कूलके थोड़ेसे लड़के १००० गज सूत कातकर नियमसे अ० भा० चरखा संघको भेजा करते हैं और यह छोटीसी सेवा वे सिर्फ आपके लिअे बहुत ज्यादा प्रेम होनेके कारण कर रहे हैं। अुनसे कोअी पूछता है कि तुम क्यों कातते हो, तो वे जवाब देते हैं : 'महात्माजीकी आज्ञा है। अिसे तो मानना ही पड़ेगा।' मुझे लगता है कि अिस तरहकी मनोवृत्ति लड़कोंमें हर तरह बढ़ानी चाहिये। गुलाम मनोवृत्ति वीर-पूजा या निःशंक होकर आज्ञा माननेकी वृत्तिसे अलग चीज है। अिन लड़कोंको अब आपकी तरफसे आपके ही हाथका लिखा हुआ कोअी सन्देश चाहिये, ताकि अुन्हें प्रोत्साहन मिले। मुझे आशा है कि आप अुनकी प्रार्थना मंजूर करेंगे।"

मैं नहीं कह सकता कि अिस पत्रमें बताअी हुअी मनोवृत्ति वीर-पूजा है या अंधभक्ति है। अैसे प्रसंगोंकी कल्पना की जा सकती है, जब कुछ भी दलील किये बिना निःशंक होकर आज्ञा मानना जरूरी हो जाता है। अिस तरह आज्ञा माननेका गुण सिपाहीमें तो होना ही चाहिये; और अैसा गुण अधिकतर लोगोंमें न हो, तब तक कोअी जाति बहुत

अूँची नहीं अुठ सकती। परन्तु अैसे आज्ञा पालनेके प्रसंग बहुत थोड़े होते हैं और किसी भी सुव्यवस्थित समाजमें थोड़े ही होने चाहियें।

यदि स्कूलके विद्यार्थियोंको शिक्षक जो कुछ कहे अुसे आँख बंद करके मानना ही पड़े, तो अुनकी कमबख्ती आयी समझिये। अुलटे, शिक्षकोंको अपने पासके लड़कों और लड़कियोंकी तर्क शक्तिको बढ़ाना हो, तो कअी बार अुन्हें बुद्धिका अुपयोग करने और स्वतंत्र विचार करनेको मजबूर करना चाहिये। श्रद्धाकी गुंजाअिश तो वहीं है, जहाँ बुद्धि कुंठित हो जाय। परन्तु दुनियामें अैसे थोड़े ही काम हैं, जिनके लिअे ठीक कारण न ढूँढ़े जा सकें। मान लीजिये, किसी मुहल्लेके कुअेंका पानी बिगड़नेकी शंका हो और वहाँ अुबला हुआ और साफ पानी पीनेका कारण लड़कोंसे पूछा जाय और लड़के कहें कि फलाँ महात्माकी आज्ञा है अिसलिअे अैसा पीते हैं, तो यह जवाब शिक्षकको बरदाश्त ही नहीं करना चाहिये। और यदि अिस अुदाहरणमें यह जवाब ठीक न हो, तो अुस स्कूलमें कातनेके लिअे लड़कोंने जो कारण बताया है, अुसे कातनेके कारणके रूपमें मान लेना अनुचित ही कहा जायगा।

अिस स्कूलमें जब मैं 'महात्मा' के पदसे गिर जाअूँगा, तब तो बेचारे मेरे चरखेकी हालत खराब ही होगी न? और बहुतसे घरोंसे मेरा यह पद जा रहा है, अिसका मुझे पता है; क्योंकि कुछ पत्र लिखने-वाले मुझे वैसा बतानेकी मेहरबानी करते हैं। कअी बार काम व्यक्तिसे ज्यादा बड़ा-चढ़ा हो जाता है। और चरखा तो ज़रूर ही मुझसे बढ़कर है। अुस हालतमें मैं यदि कोअी बेवकूफीका काम करूँ, या लोग किसी कारणसे मुझसे नाराज़ हो जायँ और मेरे प्रति अुनकी पूजाकी भावना खतम हो जाय और अिस वजहसे चरखेकी कल्याण-प्रवृत्तिको धक्का पहुँचे, तो मुझे बहुत ज्यादा दुःख हो। अिसलिअे जिन बातोंके बारेमें विचार और दलील हो सकती है, अुन सब बातोंके कारण और दलील हर विद्यार्थी अपने-अपने मनमें समझ ले, तो यह मेरी आज्ञा माननेसे हजार दर्जे अच्छा है। चरखा तो अैसी चीज़ है, जिसकी

ज़रूरत दलीलसे सिद्ध की जा सकती है। मेरी रायमें भारतकी सारी जनताकी भलाअीका चरखेसे निकट सम्बन्ध है। अिसलिअे विद्यार्थियोंको आम लोगोंकी भयंकर गरीबीके बारेमें कुछ न कुछ जान लेना चाहिये। कुछ बरबाद होते हुअे गाँवोंमें अुनको ले जाकर वहाँकी गरीबीका अुन्हें खयाल कराना चाहिये। अुन्हें भारतकी आबादीके बारेमें जानकारी होनी चाहिये। अुन्हें यह ज्ञान भी होना चाहिये कि यह प्रायद्वीप कितना बड़ा है; और अुन्हें यह भी जानना चाहिये कि करोड़ों गरीब लोग कौनसा धन्धा करके अपनी आने-दो आनेकी आमदनीमें कुछ वृद्धि कर सकते हैं। अुन्हें देशके गरीब और दबाये हुअे लोगोंके साथ अेक होना सीखना चाहिये। जो चीज़ गरीबसे गरीबको न मिल सके, अुस चीज़का त्याग करना अुन्हें सिखाना चाहिये। तब कातनेकी कीमत अुनकी समझमें आयेगी। और यह कीमत समझमें आ जायगी, तो फिर मैं महात्माके बजाय अल्पात्मा सिद्ध होअूँ या आकाश-पाताल अेक हो जाय, तो भी वे कातना नहीं छोड़ेंगे। चरखेकी प्रवृत्ति अितनी बड़ी और कल्याणकारी तो है ही कि अुसका आधार वीर-पूजाकी कच्ची बुनियाद पर नहीं रहना चाहिये। शास्त्रीय और आर्थिक दृष्टिसे अुसकी पूरी तरह समीक्षा हो सकती है।

मैं जानता हूँ कि अूपरके पत्रमें बताअी हुअी अंधी वीरपूजा हममें काफी है। और मैं आशा रखता हूँ कि राष्ट्रीय स्कूलोंके शिक्षक, मैंने चेतावनी की जो बात कही है अुसे ध्यानमें रखकर, अपने विद्यार्थियोंको बड़े कहलानेवाले मनुष्योंके वचनों पर जाँच किये बिना आँखें बन्द करके अमल करनेसे रोकेंगे।

नवजीवन, २७-६-'२६

# खादीका विज्ञान

मैने कभी बार कहा है कि जहाँ खादी आर्थिक दृष्टिसे लाभदायक है, वहाँ वह विज्ञान और काव्य भी है। मुझे ख्याल है कि 'कपासका काव्य' नामकी अेक पुस्तक है। अुसमें कपासकी अुत्पत्तिका अितिहास देकर यह बतानेका प्रयत्न किया गया है कि कपासकी खोजसे संस्कृतिका प्रवाह किस तरह बदला। मनुष्यमें विज्ञानकी, खोज-बीनकी और कवित्वकी वृत्ति हो, तो हर चीज़का विज्ञान या काव्य बनाया जा सकता है। कितने ही लोग खादीकी हँसी अुड़ाते हैं और चरखेकी बात निकलते ही धीरज छोड़ने और नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं। परन्तु ज्यों ही आप यह मान लेते हैं कि सारे हिन्दमें फैले हुअे आलस्य, बेकारी और अुनके कारण पैदा हुअी गरीबीको दूर करनेकी शक्ति खादीमें है, त्यों ही अुससे घृणा करने या अुसकी हँसी अुड़ानेकी वृत्ति चली जाती है। यह बात नहीं कि खादी सचमुच अिन तीन प्रकारके दुःखोंकी रामबाण दवा होनी ही चाहिये। अुसे खूब दिलचस्प बनानेके लिअे अितना काफी है कि हम अीमानदारीसे अुसमें यह शक्ति मान लें। परन्तु खादीमें यह शक्ति मान लेनेके बाद भी जिस तरह कोअी अज्ञान और गरजवाला कारीगर रोटीके लिअे मजबूर होकर ओटता, पींजता, कातता या बुनता है, अुसी तरह हम भी करें, तो काम नहीं चल सकता। जिस आदमीको खादीकी शक्ति पर भरोसा होगा, वह खादीसे सम्बन्ध रखनेवाली सारी क्रियाअें श्रद्धा, ज्ञान, पद्धति और वैज्ञानिक वृत्तिके साथ करेगा। वह किसी भी चीज़को यों ही नहीं मान लेगा, हर बातको प्रयोगकी कसौटी पर कसकर देखेगा, हकीकतों और आँकड़ोंका मेल बिठाकर जाँचेगा, कितनी ही बार हार होने पर भी निराश नहीं होगा, छोटी-छोटी

सफलताओंसे फूल कर कुप्पा न होगा, और जब तक ध्येय पूरा न हो तब तक संतोष मान कर नहीं बैठेगा। स्व० मगनलाल गांधीको खादीकी शक्तिके बारेमें जीती-जागती श्रद्धा थी। वे अिसे अद्भुत रससे भरा हुआ काव्य मानते थे। अुन्होंने खादी-शास्त्रके मूल तत्त्व लिख डाले थे। अुनके खयालसे अेक भी तफसील निकम्मी नहीं थी; कोअी भी योजना अुन्हें बूतेसे बाहर नहीं लगती थी। रिचार्ड ग्रेगमें भी श्रद्धाकी अैसी ही रोशनी थी और है। अुन्होंने खादीका व्यापक अर्थ बताया है। अुनकी 'खादीका व्यापक अर्थशास्त्र' नामकी पुस्तक खादीके काममें अेक मौलिक देन है। वे चरखेको अहिंसाका अुत्तम प्रतीक मानते हैं। यह प्रतीक यह हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है। परन्तु किसी भी दिलचस्प विषयसे जो रस और आनंद मिल सकता है, वह मगनलाल गांधीकी श्रद्धा अुन्हें देती थी और रिचार्ड ग्रेगकी श्रद्धा अुन्हें दे रही है। विज्ञानको विज्ञान तभी कह सकते हैं, जब वह शरीर, मन और आत्माकी भूख मिटानेकी पूरी ताकत रखता हो। शंकाशील लोगोंको कअी बार अचंभा होता है कि खादीसे यह भूख कैसे मिट सकती है? या दूसरे शब्दोंमें कहें, तो मैं जो 'खादी विज्ञान' शब्द अिस्तेमाल करता हूँ, अुसका अर्थ क्या करता हूँ, अिस सवालका जवाब देनेका अच्छेसे अच्छा तरीका यह है कि मेरे पास परीक्षा देनेके लिअे आये हुअे अेक खादीसेवकके लिअे मैंने जो प्रश्न जल्दीमें तैयार किये थे, वे यहाँ दे दूँ। ये प्रश्न तर्कशुद्ध क्रमके अनुसार नहीं बनाये गये थे और न सम्पूर्ण ही थे। अिनका क्रम बदला और बढ़ाया भी जा सकता है।

## पहला भाग

१. भारतमें कपास कहाँ और कितनी पैदा होती है? अुसकी किस्में गिनाओ। अिस कपासमें से कितनी भारतमें रहती है, कितनी हाथ कताअीमें लगती है, कितनी विलायत जाती है और कितनी दूसरे देशोंको जाती है?

२. (क) भारतकी मिलोंमें कितना कपड़ा तैयार होता है? जिसमें से कितना जिस देशमें खर्च होता है और कितना बाहर जाता है?

(ख) अपरके कपड़ेमें से कितना स्वदेशी मिलोंके सूतका होता है और कितना विदेशी सूतका?

(ग) विदेशसे भारतमें कितना कपड़ा आता है?

(घ) खादी कितनी बनती है?

नोट: जवाब वर्ग गज़ोंमें और रुपयेमें हों।

३. अपर बताये तीनों किस्मके कपड़ेकी अच्छाजी-बुराजी बताओ।

४. कुछ लोग कहते हैं कि खादी महँगी होती है, मोटी होती है और टिकाअू नहीं होती। जिन शिकायतोंका जवाब दो और जहाँ शिकायतें ठीक हों, वहाँ अुन्हें दूर करनेके अुपाय बताओ।

५. खादीके कामसे कितनी कतिनों, जुलाहों वगैराको रोजी मिलती है और जितने बरसमें अुन्हें कितना रुपया मिला है? जिनकी तुलनामें स्वदेशी मिलोंमें काम करनेवाले कारीगरोंको हर साल क्या मिलता है?

६. (क) चरखा संघका कारबार कैसे होता है? अुसके व्यवस्था-खर्चमें कितना रुपया चला जाता है?

(ख) स्वदेशी मिलोंमें कौन-कौनसे वर्ग भाग लेते हैं और अुन्हें मजदूरोंकी तुलनामें क्या मिलता है?

७. (क) जीवनकी ज़रूरतोंमें कपड़ेका कितना भाग है?

(ख) जीवनकी ज़रूरतें क्या-क्या हैं और कुल ज़रूरतोंके हिसाबसे हरअेकका अनुपात क्या माना जाय?

८. भारतमें देशी या विदेशी मिलका बना हुआ कपड़ा कोअी भी न पहने, तो देशमें कितना रुपया बचे? और यह रुपया किस किसके पास रहे?

९. भारतमें जो कपड़ा परदेशसे आता है, अुसकी कीमतके बदलेमें जिस देशसे क्या जाता है? जिस आयात-निर्यातसे भारतको क्या नुकसान होता है?

१०. देशकी आबादीका कितना प्रतिशत भाग कपड़ा खरीद सकता है?

११. अपना कपड़ा खुद बना लेनेके लिओ समय, परिस्थिति और साधन कितने सैकड़ा घरोंमें हैं? और वह किस तरह?

१२. क्या यह वाक्य सच है कि "खादीसे आर्थिक साम्यवाद कायम होगा"? कारणोंके साथ जवाब दो।

१३. खादीका प्रचार सब जगह हो जाय, तो व्यापार-धन्धा और आने-जानेके साधनों पर कैसा-कैसा असर होगा?

१४. मान लो अभी पचास बरस तक खादीका प्रचार न हो, तो अितने समयमें हमारे देशकी आर्थिक दशा पर अिसका क्या असर पड़ सकता है, अिसका विस्तारसे बयान करो।

## दूसरा भाग

१. भारतमें आजकल जो चरखे चलते हैं, अुनके वर्णन लिखो। अिनमें से कौनसा चरखा सबसे अच्छा है? प्रचलित चरखेके सब हिस्सोंके नाम बताओ, चित्र दो। हरअेकमें काम आनेवाली लकड़ीकी किस्म, तकुअेका घेरा और मालकी मोटाअी बताओ।

२. गति, कीमत और मामूली सुभीतेकी दृष्टिसे प्रचलित चरखेकी तुलना यरवदा चक्रसे करो।

३. रुअीकी परीक्षा कैसे की जाती है? सूतकी मजबूती और अुसका अंक किस तरह निकाला जाता है?

४. तुम कितने अंकका, कितनी मजबूतीवाला सूत कातते हो? तकली पर और चरखे पर तुम्हारी गति कितनी है? आम तौर पर कौनसा चरखा अिस्तेमाल करते हो?

५. अेक पुरुषको कितना कपड़ा चाहिये? अेक स्त्रीको कितना चाहिये? अुतना कपड़ा बनवानेमें कितना सूत चाहिये? अुतना सूत कातनेमें कितने घण्टे लगेंगे?

६. अेक कुटुम्बके लिअे कितना सूत चाहिये? अुतने सूतके लिअे कितनी कपास चाहिये? और अुतनी कपास अुगानेके लिअे कितनी जमीन

चाहिये? अेक कुटुम्बमें स्त्री, पुरुष और तीन बच्चे — अेक लड़की और दो लड़के (सात, पाँच और तीन बरसके) माने जायँ।

७. आजकल जिस पींजनका रिवाज है और जो नअी बनती है अुन दोनोंकी तुलना करो। तुम कितना पींजते हो? तुम यह कैसे समझ सकते हो कि रूअी ठीक पींजी गअी या नहीं? अेक रतल या आधा सेर रूअीकी पूनी बनानेमें तुम्हें कितना समय लगता है? अेक तोला रूअीसे कितनी पूनी बनाते हो?

८. अेक घंटेमें कितनी कपास ओटते या लोढ़ते हो? हाथसे ओटने और मशीनसे ओटनेके गुण-दोष बताओ। आज जो हाथ-चरखी काममें ली जाती है, अुसका चित्रोंके साथ वर्णन करो।

९. बीस अंकके सूतकी ३६ अिंच पनेकी अेक गज़ खादीके लिअे कितना सूत चाहिये? अुतना बुननेके लिअे मामूली तौर पर कितने आदमी चाहियें?

१०. हाथके करघे और फटकेवाले करघे (शटल) की तुलना करो।

हरिजनबन्धु, १७-१-'३७

# १८

# विद्यालयमें खादीका काम

स्व० श्री रेवाशंकर जगजीवन झवेरीके मुख्य प्रयत्नसे और श्री जमनादास गांधीकी मददसे राजकोटमें सोलह वर्ष पहले राष्ट्रीय शाला खुली थी। अुसका सोलहवाँ वार्षिक अुत्सव पिछले महीनेमें श्री नरहरि परीखकी अध्यक्षतामें मनाया गया था। अिस शालाके तीन विभाग हैं: विनय, कुमार और बालमन्दिर। अुसमें कुल १९० विद्यार्थी (११० लड़के और ८० लड़कियाँ) शिक्षा पाते हैं। श्री नारणदास गांधीकी रिपोर्टमें से ध्यान खींचनेवाले नीचेके हिस्से देता हूँ:

"खादीका अुद्योग असा है, जो राष्ट्रके करोड़ों आदमियोंको पालनेमें मदद दे सकता है। अुद्योगमें अुसे मुख्य स्थान देनेसे अुसके द्वारा राष्ट्रके करोड़ों गरीबोंके साथ मेल साधनेकी शिक्षा मिलती है। अिस-लिअे अिसे अेक महत्वकी शिक्षा समझना चाहिये।

अिस अुद्योगमें बच्चे काफी रस ले रहे हैं। अेक विद्यार्थीने गरमीकी छुट्टियोंमें ४० वर्ग गज़ खादीके लायक सूत काता और चरखा द्वादशीके मौके पर ६७ वर्ग गज़ खादीके लायक सूत काता। अिस तरह साल भरमें कुल १५० वर्ग गज़ कपड़ा हुआ। अिसे बड़ा काम माना जायगा। अिसकी तुलनामें औरोंने थोड़ा किया, परन्तु कुल मिलाकर अच्छा काम हुआ है।

अिस अुद्योगके सिवाय:

सिलाअी वर्ग — शालाके अुद्योगके लिअे है। अिसके सिवाय बाहर-वालोंके लिअे भी रखा गया था। अुसमें से दो भाअी अच्छी तरह सीख कर सीनेके धंधेमें लग गये हैं। अेक शिक्षक यह काम खास तौर पर सीखे हुअे हैं।

बुनाअी शाला — शालामें अेक जुलाहा परिवार बसाया गया है। अिन अढ़ाअी सालमें लगभग २६०० वर्ग गज़ खादी बुनी गअी है।

खेती — अिस साल कपास भी हुअी थी और लड़कोंने कपास चुनी भी थी।

शालामें १३ हरिजन बालक पढ़ते हैं। अिनके सिवाय पाँच हरिजन सुबह म्युनिसिपेलिटीमें काम करके दुपहरको शालामें छः घंटे कातनेका काम करते हैं। अुनको अिससे कुछ आमदनी हो जाती है। घटिया रूअीसे थोड़े दिनमें ही वे बारह नंबरका सूत कातने लगे हैं। अिस तरह खादीके क्षेत्रमें भी यह अच्छा अनुभव माना जायगा। हरिजनोंके लिअे शालामें अनाजकी दुकान भी खोली गअी है।

ग्रामवस्तु भण्डार — सच्चा पोषण देनेवाली खुराक, जैसे हाथका पिसा आटा, हाथ कुटे व दले चावल-दाल और शालामें दो घानियाँ लगाकर शुद्ध तेल देनेका अिन्तज़ाम किया गया है।

दुग्धालय — कुछ समयसे जयन्त दुग्धालयको शालामें ले आये हैं और अखिल भारत गोसेवा संघकी दृष्टिसे अुसे चलानेका प्रयत्न किया जायगा। ”

यह खुशीकी बात है कि अिस तरह लड़के-लड़कियोंमें खादीके बारेमें रस पैदा किया जा सकता है। यह महत्त्वकी बात है कि कपास भी शालामें पैदा हो, दुग्धालय चले और युक्ताहारकी चीज़ें भी वहीं तैयार हों। अिन अंगोंका अच्छा विकास हो और लड़के-लड़कियोंको अिन चीज़ोंका शास्त्र अिस तरह सिखाया जाय कि अुनकी समझमें आये, तो अुनकी बुद्धिका सच्चा विकास होगा। यह मानना भ्रम है कि जिन चीज़ोंका जीवनमें कोअी अुपयोग न हो, अुन्हें बालकोंके दिमागमें ठूँसनेसे अुनकी बुद्धि बढ़ती है। अिसमें बुद्धिका विलास भले ही हो, परन्तु विकास नहीं; क्योंकि बुद्धि भले-बुरेका विवेक नहीं कर सकती। परन्तु जहाँ लड़के या लड़कीको कोअी क्रिया करनी पड़ती है और वह क्रिया अुसे मशीनकी तरह न सिखाअी जाकर अुसके कारण समझाये जाते हैं, वहाँ अुसकी बुद्धिका विकास अपने आप होता है, बालकको अपना भान होता है, वह स्वाभिमान सीखता है और स्वावलम्बी बनता है।

हरिजनबन्धु, २१-४-'३७

## १९

# मातृभाषा *

शिक्षाके माध्यमके रूपमें देशी भाषाओंका सवाल राष्ट्रीय महत्वका है। देशी भाषाका अनादर राष्ट्रीय आत्महत्या है। शिक्षाके माध्यमके रूपमें अंग्रेजी भाषा जारी रखनेकी हिमायत करनेवालोंमें बहुत से लोग यह कहते सुने जाते हैं कि अंग्रेजी शिक्षा पानेवाले भारतीय ही जनताके और राष्ट्रीय कामके रक्षक हैं। अैसा न हो तो वह भयंकर स्थिति मानी जायेगी। अिस देशमें जो भी शिक्षा दी जाती है, वह अंग्रेजी भाषाके द्वारा दी जाती है। सच्ची हालत यह है कि हम अपनी शिक्षा पर जितना समय खर्च करते हैं, अुसके हिसाबसे नतीजा कुछ भी नहीं मिलता। हम आम लोगों पर कोअी असर नहीं डाल सके। . . .

. अिस विषय पर ताजेसे ताजा बयान वाअिसरॉय[1]का है। ये साहब कोअी अेक रास्ता नहीं बता सके। फिर भी वे हमारे स्कूलोंमें देशी भाषाओं द्वारा शिक्षा देनेकी जरूरत अच्छी तरह समझते हैं। मध्य और पूर्वी युरोपके यहूदी दुनियाके बहुतसे हिस्सोंमें फैल गये हैं। अुन्होंने आपसके व्यवहारके लिअे अेक समान भाषाकी जरूरत जानकर अीडिशको भाषाका दर्जा दिया है। अुन्होंने दुनियाके साहित्यमें मिलनेवाली अच्छीसे अच्छी किताबोंका अीडिशमें अनुवाद करनेमें सफलता पायी है। वे बहुतेरी दूसरी भाषाअें अच्छी तरह जानते हैं, फिर भी अुनकी आत्माको पराअी भाषामें शिक्षा मिलनेसे शान्ति नहीं मिली। अिसी तरह अुनके छोटेसे शिक्षित वर्गने यह नहीं चाहा कि अपनी हैसियत समझ सकनेके

---

* डॉ० प्राणजीवन महेता द्वारा प्रकाशित 'हिन्दनी शाळाओ अने कॉलेजोमां देशी भाषा शिक्षणनां वाहन तरीके' नामक गुजराती पुस्तिकाकी यह प्रस्तावना है।

१ लॉर्ड चेम्सफोर्ड

पहले यहूदी जनताको विदेशी भाषा सीखनेकी तकलीफ अुठानी चाहिये। अिस तरह जो किसी समय अेक टूटी-फूटी बोली समझी जाती थी, परन्तु जिसे यहूदी बच्चे अपनी माँसे सीखते थे, अुसीको अुन्होंने अपने विशेष प्रयत्नसे दुनियाके अच्छेसे अच्छे विचारोंका अनुवाद करके कीमती बना लिया है। सचमुच यह अेक अद्भुत काम है। यह काम आजकी पीढ़ीने ही किया है। अुस भाषाका वेब्स्टरके कोषमें यह लक्षण दिया गया है कि वह तरह-तरहकी भाषाओंसे बनी हुअी अेक टूटी-फूटी बोली है और अलग-अलग राज्योंमें बसनेवाले यहूदी आपसके व्यवहारमें अुसका अुपयोग करते हैं। यदि अब मध्य और पूर्वी युरोपके यहूदियोंकी भाषाका अिस तरह वर्णन किया जाय तो अुन्हें बुरा लग जाय। यदि ये यहूदी विद्वान अेक पीढ़ीमें ही अपनी जनताको अेक भाषा दे सके हैं — जिसके लिअे अुन्हें गर्व है — तो हमारी देशी भाषाओंके, जो परिपक्व भाषाअें हैं, दोष दूर करनेका काम तो हमारे लिअे अवश्य आसान होना चाहिये।

दक्षिण अफ्रीका हमें यही पाठ पढ़ाता है। वहाँ डच भाषाकी अपभ्रंश टाल और अंग्रेजीके बीच होड़ होती थी। बोर माताओं और बोर पिताओंने निश्चय किया था कि हम अपने बच्चों पर, जिनके साथ हम बचपनमें टाल भाषामें बातचीत करते हैं, अंग्रेजी भाषामें शिक्षा लेनेका बोझ नहीं डालने देंगे। वहाँ भी अंग्रेजीका पक्ष बड़ा जोरदार था, अुसके हिमायती शक्तिवाले थे। परन्तु बोर देशाभिमानके सामने अंग्रेजी भाषाको झुकना पड़ा था। यह जानने लायक बात है कि अुन्होंने अूँची डच भाषाको भी नामंजूर कर दिया। स्कूलोंके शिक्षकोंको भी, जिन्हें युरोपकी सुधरी हुअी डच भाषा बोलनेकी आदत पड़ी हुअी है, ज्यादा आसान टाल भाषा बोलनेको मजबूर होना पड़ा है। और दक्षिण अफ्रीकामें टाल भाषामें, जो कुछ ही वर्षों पहले सादे परन्तु बहादुर देहातियोंके बीच बात करनेका समान साधन था, आजकल अुत्तम प्रकारका साहित्य अुन्नति कर रहा है। यदि हमारा विश्वास हमारी भाषाओं परसे अुठ गया हो, तो वह अिस बातकी निशानी है कि हमारा अपने आप पर विश्वास

नहीं रहा । यह हमारी गिरी हुआी हालतकी साफ निशानी है । और जो भाषाअें हमारी माताअें बोलती हैं, अुनके लिअे हमें जरा भी मान न हो, तो किसी भी तरहकी स्वराज्यकी योजना, भले ही वह कितनी ही परोपकारी वृत्ति या अुदारतासे हमें दी जाय, हमें कभी स्वराज्य भोगनेवाली प्रजा नहीं बना सकेगी ।

('गांधीजीकी विचारसृष्टि' से)

## २०

# पराअी भाषाका घातक बोझ

कर्वे महाविद्यालयमें हैदराबाद रियासतके शिक्षा-मंत्री नवाब मसूद जंग बहादुरने देशी भाषाओं द्वारा शिक्षा देनेकी जो जबरदस्त वकालत की थी, अुसका जवाब 'टाअिम्स ऑफ अिण्डिया' ने दिया है । अुसमें से अेक मित्रने नीचे लिखा हिस्सा मेरे पास जवाब देनेके लिअे भेजा है:

"अिन नेताओंके लेखोंमें जो कुछ भी कीमती और फल देनेवाली चीज़ है, वह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपमें पश्चिमी संस्कृतिका फल है । . . . पिछले ६० सालका अितिहास देखनेके बजाय १०० वर्षका अितिहास देखें, तो भी हमें मालूम होगा कि राजा राममोहन रायसे लगाकर महात्मा गांधी तक जिस किसी भारतीयने किसी भी दिशामें कोअी भी तारीफके लायक काम किया हो, तो वह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपमें पश्चिमी शिक्षाका परिणाम है ।"

अिस अुद्धरणमें अंग्रेजी भाषाकी शिक्षाके माध्यमके रूपमें कीमत नहीं बताअी गअी है । बात अितनी ही है कि पश्चिमी सभ्यताने खास-खास मनुष्यों पर क्या असर डाला है । पश्चिमी सभ्यताके महत्त्व या प्रभावके बारेमें नवाब साहबने या दूसरे किसीने भी कोअी विरोध नहीं किया है । जिस चीज़का विरोध किया जाता है, वह तो यह है कि

पश्चिमी सभ्यताके लिअे भारतीय या आर्य संस्कृतिका बलिदान किया जाता है। यदि यह भी सिद्ध कर दिया जाय कि पश्चिमी शिक्षा पूर्वी या आर्य संस्कृतिसे बढ़कर है, तो भी भारतकी अत्यन्त होनहार सन्तानोंको पश्चिमी शिक्षा देने और अुन्हें आम लोगोंसे अलग करके राष्ट्रभ्रष्ट बनानेमें सारे भारतका नुकसान है।

मेरे विचारसे अूपरके अुद्धरणमें बताये हुअे पुरुषोंने जनता पर जो कुछ अच्छा असर डाला है, वह पश्चिमी सभ्यताके अुलटे असरके होते हुअे भी अुसी हद तक डाला है, जिस हद तक वे आर्य संस्कृतिको अपनेमें पचा सके हैं। पश्चिमी सभ्यताका अुलटा असर मैं जिस अर्थमें कहता हूँ कि आर्य संस्कृतिका पूरा असर पड़नेमें जिस हद तक वह रुकावट बना हो। मुझ पर पश्चिमी सभ्यताका जितना ऋण है, अुसे खुले दिलसे मैंने मंजूर किया है। फिर भी मुझे कहना चाहिये कि मैंने जनताकी कुछ भी सेवा की हो, तो अुसका श्रेय जिस हद तक आर्य संस्कृतिको मैंने अपने जीवनमें पचाया है अुसीको है। मैं युरोपियन-सा बनकर अेक राष्ट्रभ्रष्ट आदमीके रूपमें जनताके सामने खड़ा होता, तो अुसके बारेमें मैं कुछ भी न जान सकता, अुसकी अुपेक्षा करता, अुसके रिवाजों, विचारों और अुसकी अिच्छाओंको तुच्छ समझकर अुसकी कुसेवा करता। जहाँ जनताने अपनी सभ्यताको हजम नहीं किया हो, वहाँ अिसका अंदाज लगाना कठिन है कि कितनी ही अच्छी होने पर भी अपने प्रतिकूल जानेवाली पराअी सभ्यताके हमलेका सामना करनेमें जनताको कितनी शक्ति खर्च करनी पड़ती है।

सारे प्रश्न पर सब तरफसे विचार करना चाहिये। यदि चैतन्य, नानक, कबीर, तुलसीदास और दूसरे कअी सुधारकोंको बचपनसे अच्छीसे अच्छी अंग्रेजी पाठशालामें रखा जाता, तो क्या अुन्होंने ज्यादा काम किया होता? क्या 'टाअिम्स' के लेखमें बताये हुअे पुरुषोंने अिन सुधारकोंसे ज्यादा काम किया है? महर्षि दयानंद सरस्वती किसी सरकारी युनिवर्सिटीसे अेम० अे० हुअे होते, तो क्या वे ज्यादा काम कर सके होते?

बचपनसे पश्चिमी शिक्षाके ही असरमें पले हुअे आजके मौज अुड़ानेवाले, अैश-आराम करनेवाले और अंग्रेजी बोलनेवाले राजा-महाराजाओंमें अेक ता अैसा बताअिये, जिसका नाम बड़ी-बड़ी मुसीबतोंसे टक्कर लेनेवाले और अपने मावलोंके* साथ अुन्हींका-सा कठिन जीवन बितानेवाले शिवाजीके साथ लिया जा सके। अिन राजाओंमें से किसका आचरण भयको भगानेवाले राणा प्रतापसे बढ़कर है? अरे, अिन्हें पश्चिमी सभ्यताके भी अच्छे नमूने कैसे माना जा सकता है? जब अिन राजाओंकी अपनी नगरियाँ कभी दुःख-दर्दों, रोगों और संकटोंसे जल रही हैं, तब भी ये लंदन और पेरिसके नाच-गानमें डूबे हुअे हैं। जिस शिक्षाने अुन्हें अपने ही देशमें परदेशी बनाया है, जो शिक्षा अुन्हें अपनी प्रजाके, जिसका अीश्वरने अुन्हें शासक बनाया है, सुख-दुःखमें शामिल होनेके बजाय युरोपमें प्रजाके धन और अपनी आत्माको नष्ट करना सिखाती है, अुस शिक्षामें घमण्ड जैसी क्या बात है?

परन्तु पश्चिमी शिक्षाकी तो यहाँ बात ही नहीं। प्रश्न तो शिक्षाके माध्यमका है। हमें जो भी अूँची शिक्षा मिली है या जो कुछ शिक्षा मिली है, वह सिर्फ़ अंग्रेजी भाषा द्वारा ही मिली है। अिसीलिअे तो आज दीये जैसी साफ़ बातको दलीलें देकर सिद्ध करना पड़ता है कि किसी भी राष्ट्रको अपने नौजवानोंमें राष्ट्रीयता कायम रखनी हो, तो अुन्हें अूँची और नीची सारी शिक्षा अुन्हींकी भाषामें देनी चाहिये। राष्ट्रके नौजवानोंको जब तक अैसी भाषाके द्वारा ज्ञान मिलता और पचता न हो, जिसे आम लोग समझते हों, तब तक यह अपने आप सिद्ध है कि वे जनताके साथ जीता-जागता सम्बन्ध जोड़ सकते हैं और न हमेशा अुसे कायम रख सकते हैं। पराव भाषा और अुसके मुहावरों पर, जिनका अिन नौजवानोंकी जिन्दगी कोअी काम नहीं पड़ता और जिन्हें सीखनेमें अुन्हें अपनी मातृभा और अुसके साहित्यकी अुपेक्षा करनी पड़ी है, काबू पानेमें हजारों युवकों

* महाराष्ट्रकी अेक पहाड़ी वीर जाति।

कअी कीमती वर्ष बीत जाते हैं। अिसका अंदाज कौन लगा सकता है कि अिससे जनताकी कितनी अपार हानि होती है? अिस मान्यतासे अधिक बुरा वहम मैं नहीं जानता कि अमुक भाषाका तो विकास हो ही नहीं सकता या अमुक भाषामें अटपटे या तरह-तरहके विज्ञानके विचार प्रकट किये ही नहीं जा सकते। भाषा तो बोलनेवालोंके चरित्र और अुन्नतिका सच्चा प्रतिबिम्ब है।

विदेशी राजकी कअी बुराअियोंमें अेक बड़ीसे बड़ी बुराअी अितिहासमें यह मानी जायगी कि अुसमें देशके नौजवानों पर पराअी भाषाके माध्यमका यह घातक बोझ डाला गया। अिस माध्यमने राष्ट्रकी शक्तिको नष्ट कर दिया है, विद्यार्थियोंकी अुम्र घटा दी है, अुन्हें आम लोगोंसे अलग कर दिया है, और शिक्षाको बिना कारण महँगी बना दिया है। यदि यह प्रथा अब भी जारी रहेगी, तो अिससे राष्ट्रकी आत्माका ह्रास होना निश्चित है। अिसलिअे शिक्षित भारतीय पराअी भाषाके माध्यमकी भयंकर मोहनीसे जितने जल्दी छूट जायँ, अुतना ही अुनके लिअे और राष्ट्रके लिअे अच्छा है।

नवजीवन, ८-७-'२८

## २१

# अेक विद्यार्थीके प्रश्न

अमेरिकामें ग्रेज्युअेट तककी पढ़ाअी पूरी करके आगे पढ़नेवाला अेक विद्यार्थी लिखता है :

"भारतकी गरीबी मिटानेके अेक अुपायके तौर पर भारतकी सभी तरहकी पैदावारका भारतमें ही अुपयोग होना हितकर है, अैसा समझने वालोंमें से मैं अेक हूँ। अिस देशमें आये मुझे छः साल हुअे। लकड़ीका रसायन मेरा खास विषय है। भारतके औद्योगिक विकासके महत्त्वके बारेमें मेरा अितना पक्का विश्वास न होता, तो शायद मैं नौकरी करने लगा होता, या डॉक्टरीकी पढ़ाअी शुरू कर देता।

* * *

"कागज बनानेके अुद्योग जैसे किसी अुद्योगमें मैं पड़ूँ, तो क्या आप अुसकी राय देंगे? भारतमें मानव दयाकी बुनियाद पर अुद्योग-नीति खड़ी करनेके बारेमें आपकी क्या राय है? आप विज्ञानकी अुन्नतिके हिमायती हैं? मैं अिस तरहकी अुन्नतिकी बात कहता हूँ कि जिससे 'पैस्चर ऑफ फ्रांस' और टॉरण्टोवाले डॉ॰ बेण्टिंककी पुस्तकों जैसे अमूल्य रत्न लोगोंको मिलें।"

क्योंकि विद्यार्थियोंकी तरफसे अैसे प्रश्न कअी बार मुझसे पूछे जाते हैं और विज्ञान सम्बन्धी मेरे विचारोंके बारेमें बड़ी गलतफहमी फैली है, अिसलिअे मैं अिन प्रश्नोंकी खुली चर्चा करता हूँ। यह विद्यार्थी जिस ढंगका औद्योगिक काम शुरू करना चाहता है, अुससे मेरा कोअी विरोध नहीं हो सकता। अलबत्ता, मैं यह नहीं कहूँगा कि अुसमें मानव दया ही है। हाथकताअीके सफल पुनरुद्धारको ही मैं सच्ची मानव दयावाली अुद्योग-नीति समझता हूँ, क्योंकि चरखेके द्वारा ही आज

गाँवोंकी आबादीमें घर-घर बरबादी लानेवाली गरीबी जल्दी मिटाअी जा सकती है। बादमें देशकी पैदावारकी शक्ति बढ़ानेवाली और सब बातें अुसमें जोड़ी जा सकती हैं। हमारी झोंपड़ियोंमें चलनेवाले चरखेसे जो काम हमें आज मिलता है, अुससे ज्यादा काम देनेवाले सुधार अुसमें हो सकते हों, तो मैं चाहूँगा कि शास्त्रीय तालीम पाये हुअे युवक अपनी कुशलताका अुपयोग अुस तरहके सुधारमें करें। मैं अिस बातके विरुद्ध नहीं हूँ कि विज्ञानकी अेक विषयके रूपमें अुन्नति हो। अितना ही नहीं, मैं पश्चिमकी वैज्ञानिक वृत्तिको आदरकी दृष्टिसे देखता हूँ। और यदि अिस आदरकी दृष्टिके साथ थोड़ा-बहुत डर मिला हुआ हो, तो अुसका कारण यह है कि पश्चिमके वैज्ञानिक अीश्वरकी सृष्टिमें गूँगे प्राणियोंको कुछ गिनते ही नहीं हैं।

शरीर-शास्त्रकी पढ़ाअीके लिअे जीवित प्राणियोंको काट कर अुन्हें पीड़ा पहुँचानेकी प्रथाके खिलाफ मेरी आत्मा विद्रोह करती है। तथाकथित विज्ञान और मानवधर्मके नामसे होनेवाली निर्दोष जीवोंकी अक्षम्य हत्यासे मुझे नफरत है। बेगुनाहोंके खूनसे सनी हुअी वैज्ञानिक खोजको मैं किसी कामका नहीं समझता। जीवित प्राणियोंको चीरे बिना खूनके दौरेका तत्त्व मालूम न हुआ होता, तो अुसके बिना दुनियाका काम चल जाता। और मैं तो अुस दिनके अुगनेकी आशा करता हूँ, जब पश्चिम विज्ञानके प्रामाणिक ज्ञानकी खोज करनेके आजकलके तरीकोंकी हद कायम कर देगा। भविष्यमें मानव कुटुम्बके हिसाबके साथ हरअेक जीवकी भी गिनती की जायगी। और जैसे हम अब समझने लगे हैं कि अपने पाँचवें हिस्सेकी आबादीवाले देशभाअियोंको दबाये रखकर हिन्दू अपना भला करना चाहें या पश्चिमकी जातियाँ पूर्व और अफ्रीकाके देशोंको चूसकर और कुचलकर स्वयं आगे बढ़ना चाहें, तो अुनका यह विचार गलत है; अुसी तरह समय आने पर हम यह भी समझ जायँगे कि निचले दर्जेके प्राणियों पर हमारा साम्राज्य अुन्हें मारनेके लिअे नहीं, बल्कि

हमारी तरह अुनकी भी भलाअीके लिअे है। क्योंकि मुझे भरोसा है कि जैसी मेरी आत्मा है, वैसी ही अुनकी भी आत्मा है।

* * *

विद्यार्थीने दूसरा सवाल यह पूछा है:

"भारतके संयुक्त राज्योंमें हम देशी रियासतोंको आज जैसी ही रहने देंगे, या लोकसत्तात्मक राज्य कायम करेंगे? राजनैतिक अेकताके लिअे हमारी राष्ट्रभाषा क्या होनी चाहिये? वह अंग्रेजी क्यों नहीं हो सकती?"

यह तो कुछ-कुछ दीखने लगा है कि देशी रियासतें आजसे ही अपना स्वरूप बदलने लगी हैं। जब सारा राष्ट्र प्रजासत्ताक बनता है, तब वे निरंकुश नहीं रह सकतीं। परन्तु आज कोअी नहीं बता सकता कि भारतका प्रजासत्ताक राज्य कैसा रूप लेगा। यदि अंग्रेजी राष्ट्रभाषा होनेवाली हो, तब तो भविष्य जान लेना आसान है। क्योंकि वह तो मुट्ठीभर आदमियोंका ही प्रजासत्ताक राज्य होगा। परन्तु यदि हमारा अिरादा भारतीय राष्ट्रके सभी लोगोंकी राजनैतिक अेकता करनेका हो, तो भविष्यवेत्ता ही कह सकता है कि हमारा भविष्य कैसा होगा। हमारे विशाल जनसमूहकी अेक भाषा अंग्रेजी हो ही नहीं सकती। हमारी भाषा तो हिन्दी और अुर्दूकी सुन्दर मिलावटसे बनी हुअी अेक तीसरी भाषा यानी हिन्दुस्तानी ही हो सकती है। हमारी अंग्रेजी भाषाने हमें करोड़ों देशभाअियोंसे अलग कर दिया है। हम अपने ही देशमें पराये हो गये हैं। जिस ढंगसे अंग्रेजी भाषा राजनैतिक झुकाववाले हिन्दुओंमें घुसी है, वह मेरे नम्र मतसे देशके प्रति ही नहीं, बल्कि सारी मानव-जातिके प्रति बड़ा अपराध है; क्योंकि हम स्वयं अपने ही देशकी अुन्नतिके रास्तेमें बड़ी रुकावट बन गये हैं। भारत आखिर तो खंड ही कहलायेगा। और जिस तरह मानवजातिकी प्रगति पर खंडकी प्रगतिका आधार है, वैसे ही खंडकी प्रगति पर मानवजातिकी प्रगतिका आधार है। जो कोअी अंग्रेजी पढ़ा-लिखा भारतीय गाँवोंमें घूमा है, अुसने

अिस धधकती हुअी सचाअीको पहचाना है; जैसे मैंने पहचाना है। मेरे दिलमें अंग्रेजी भाषा और अंग्रेज लोगोंके भारी गुणोंके लिअे बड़ी अिज्जत है। किन्तु अंग्रेजी भाषा और अंग्रेज लोगोंने आज हमारे जीवनमें अेक अैसी जगह कर रखी है, जो अुनकी व हमारी प्रगतिको रोके हुअे है। अिसमें मुझे जरा भी शक नहीं।

नवजीवन, २७-१२-'२५

## २२

# विविध प्रश्न

### १

कच्छके अेक शिक्षकने कुछ प्रश्न पूछे हैं। अुनके अुत्तर खुले तौर पर देने लायक हैं। अिसलिअे यहाँ प्रश्न देकर अुनके अुत्तर देता हूँ :

"मैं विद्यालयका शिक्षक हूँ। मुझमें जितना चाहिये अुतना चारित्र्य, सत्य और ब्रह्मचर्य नहीं है। अलबत्ता, मैं अुन्हें प्राप्त करनेका बहुत ज्यादा प्रयत्न कर रहा हूँ। मेरे पिताके सिर पर कर्ज है। अैसी परिस्थितिमें क्या आप मुझे शिक्षककी जगहसे अिस्तीफा देनेकी सलाह देते हैं?"

मैं मानता हूँ कि ज़रूरी चारित्र्य न होनेसे अिस्तीफा देनेका विचार सुन्दर है। फिर भी अिसमें विवेककी ज़रूरत है। यदि काम करते-करते हमारे दोष कम होते जायँ, तो अिस्तीफा देनेकी ज़रूरत नहीं। संपूर्ण तो कोअी भी नहीं होता। आज तो शिक्षकोंमें चारित्र्य बहुत नहीं देखनेमें आता। यदि हम अपने-अपने काममें जाग्रत रहें और जहाँ तक हो सके अुद्यम करते रहें, तो संतोष रखा जा सकता है। परन्तु अैसे मामलेमें सबके लिअे अेक ही कायदा नहीं हो सकता। सबको अपने-अपने लिअे सोच लेना चाहिये।

पछतावा होता है।' अिस तरहकी दलील देकर कोअी शिक्षक विद्यार्थीको मारे, तो क्या वह क्षम्य है?

४. शारीरिक दण्डके सिवाय और कौन-कौनसे दण्डोंकी राष्ट्रीय स्कूलोंमें मनाही होनी चाहिये?

५. विद्यार्थीको किस-किस तरहका दण्ड देनेमें राष्ट्रीय स्कूलके शिक्षककी अहिंसा धर्म पालनेकी प्रतिज्ञा टूटती है?

"अूपरके प्रश्न सिर्फ पूछनेके लिअे ही आपसे नहीं पूछे गये हैं। अिन प्रश्नोंके बारेमें यहाँकी शालाके अध्यापकोंमें कुछ समयसे चर्चा हो रही है और अुसमें कुछ भाअियोंकी दी हुअी दलीलोंको ही मैंने प्रश्नोंमें रख दिया है। क्योंकि ये प्रश्न महत्वके हैं, अिसलिअे यदि अिनके अुत्तर आप 'नवजीवन' के जरिये देंगे, तो बहुतेरे शिक्षक भाअियोंको रास्ता मिलेगा।"

मेरी राय यह है कि विद्यार्थियोंको किसी भी तरहका दण्ड देना ठीक नहीं है। विद्यार्थियोंके लिअे शिक्षकोंके दिलमें जो मान और शुद्ध प्रेम होना चाहिये, अुसमें अैसा करनेसे कमी आती है। दण्ड देकर विद्यार्थियोंको पढ़ानेका तरीका दिन-दिन छोड़ा जा रहा है। मैं जानता हूँ कि कअी मौके अैसे आ जाते हैं, जब बड़ेसे बड़े शिक्षकसे भी दण्ड दिये बिना नहीं रहा जाता। परन्तु अैसे मौके अिक्के-दुक्के ही होते हैं और अुनका किसी तरह भी समर्थन करना ठीक नहीं। अुसको मारना पड़े, तो यह बड़े शिक्षककी कलाकी कमी ही मानी जानी चाहिये। स्पेन्सर जैसोंने तो किसी भी तरहके दण्डको अनुचित ही माना है, पर वह अपने सिद्धान्त पर सदा अमल नहीं कर सका।

मेरे अिस तरहका अुत्तर देनेके बाद, जो प्रश्न पूछे गये हैं, अुनका ब्यौरेवार अुत्तर देना जरूरी नहीं है।

आम तौर पर अहिंसाके साथ दण्डका मेल नहीं बैठ सकता। अैसे अुदाहरण तो मैं जरूर गढ़ सकता हूँ, जिनमें दण्डको दण्ड न माना जाय। किन्तु ये अुदाहरण शिक्षकोंके लिअे निरर्थक समझने चाहियें। जैसे कोअी

पिता बहुत ही दुःखी हो गया हो और दुःखमें अपने लड़केको पीट डाले, तो वह प्रेमका दण्ड है। लड़का भी अिसे हिंसा नहीं समझेगा। या सन्निपातमें बकवास करनेवाले बीमारको कभी-कभी सेवा करनेवालोंको थप्पड़ लगानी पड़ती है, अिसमें हिंसा नहीं, अहिंसा है। किन्तु ये अुदाहरण शिक्षकोंके बिलकुल कामके नहीं। अुन्हें मारपीट किये बिना विद्यार्थियोंको पढ़ानेकी और अनुशासनमें रखनेकी कला सीखनी चाहिये। अैसे शिक्षकोंके अुदाहरण मौजूद हैं, जिन्होंने किसी दिन भी अपने विद्यार्थियोंको नहीं मारा। शरीर-दण्डके सिवाय दूसरे दण्ड विद्यार्थीको नीचे अुतार देना, अुससे अुठ-बैठ करवाना, अँगूठे पकड़वाना, गाली देना वगैरा हैं। मेरे विचारसे अिनमें से कोअी भी दण्ड शिक्षक विद्यार्थियोंको न दें।

विद्यार्थियोंको सुधारनेके लिअे दण्ड देना और फिर पछताना पश्चात्ताप नहीं। और दण्ड देनेसे सुधार हो सकता है, यह मान्यता विद्यार्थीमें पैदा करने और शिक्षकके रखनेसे अन्तमें वह समाजमें भी घर कर लेती है। अिसीलिअे समाजमें हिंसाके बलसे सुधार करनेका झूठा भ्रम पैदा हुआ है। मेरी यह राय है कि जो राष्ट्रीय शिक्षक जान-बूझकर दण्डसे काम लेता है, वह ज़रूर अपनी प्रतिज्ञा भंग करता है।

नवजीवन, २१-१०-'२८

# २३

## व्यायामकी पद्धतिके बारेमें*

मेरे विचारसे विद्यार्थियोंका शारीरिक व्यायाम पुराने ढंगके अनुसार होना चाहिये, यानी प्राणायाम, आसन आदि द्वारा। मेरा यह विश्वास है कि मूलर जैसे पश्चिमवालोंने हालमें शरीरको बढ़ानेके लिअे जो-जो पुस्तकें लिखी हैं, और जिसमें थोड़ी बहुत सफलता मिली है, अुसकी जड़ प्राचीन पद्धतिमें है। अिन लोगोंने सिर्फ अुसे आजके विज्ञानशास्त्रकी भाषामें रखा है और अुसमें कुछ सुधार भी किये हैं। मैं मानता हूँ कि अिस दिशामें हमने बहुत ही कम काम किया है। अिस पद्धतिसे व्यायाम सीखनेके बाद आजकलकी कुश्ती वगैरा जिसे सीखना हो, अुसे सीखनेकी सुविधा देनी चाहिये। परन्तु लाठी-तलवार चलाना सीखना ज़रूरी नहीं मानना चाहिये। मैंने यह नहीं माना है कि बच्चोंको पहलेसे ही लाठी वगैराके प्रयोगोंमें पड़नेकी ज़रूरत है। शरीरको कसने और अलग-अलग अवयवोंका विकास करनेमें लाठीका बहुत कम स्थान है। यह व्यायामका अंग नहीं, परन्तु अिसे अपने बचावके लिअे या अिसी तरहके दूसरे कारणोंसे दी जानेवाली तालीमका भाग समझना चाहिये।

* * *

[अेक पत्रमें से]

कसरत और खेल अनिवार्य कर दिये गये, अिससे मुझे तो बहुत अच्छा लगा। हम अपने लिअे जो कुछ अच्छा है अुसे अनिवार्य बना लें। गुजराती, संस्कृत वगैरा विषयोंको हम अच्छा और ज़रूरी समझते हैं, अिस-

* अिन प्रकरणके दो भाग संभवतः सत्याग्रह आश्रमकी शालाके हस्तलिखित 'मधपूडा' में से हैं। अुनकी निश्चित तारीख नहीं मिली। अैसा अन्दाज़ है कि वे १९२४-२५ के अरसेमें लिखे गये थे।

लिअे अुन्हें अनिवार्य बना लेते हैं। खेल और कसरतको अितना ज़रूरी नहीं समझा, अिसलिअे अुन्हें विद्यार्थियोंकी मरजी पर छोड़ दिया। अब यह मानना चाहिये कि अुन्हें गुजरातीके बराबर ही आप ज़रूरी समझते हैं, अिसीलिअे वे अनिवार्य हो गये। हमारी मरजीके खिलाफ लगाया हुआ अंकुश हमें पराधीन बनाता है। अपने आप माना हुआ या लगाया हुआ अंकुश हमारी सच्ची आज़ादी बढ़ाता है।

## २४

## व्यायाम-मंदिर किसलिअे ?*

आज जो व्यायामके खेल मैंने देखे, वे बहुत अच्छे थे। अुनके लिअे मैं डॉ० पटवर्धनको और खिलाड़ियोंको बधाअी देता हूँ। आप सब जानते हैं कि मैं मर्यादित काम करनेवाला हूँ। बहुतसे कामोंमें दखल देना मेरा काम नहीं। परन्तु जब डॉ० पटवर्धनने मुझसे प्रार्थना की, तो मैं अिनकार न कर सका। मुझे कहा गया है कि अिस व्यायाम-शालामें हिन्दू-मुसलमान सबको आनेका मौका मिलता है। मुसलमान खिलाड़ी भी हैं और अुनके सिवाय अछूत विद्यार्थी भी हैं। यह जान कर मुझे बड़ा आनन्द होता है।

हमारे शास्त्र बताते हैं कि जो विद्यार्थी व्यायाम करना चाहते हैं और अुसका अच्छा अुपयोग करना चाहते हैं, अुन्हें ब्रह्मचर्य पालना चाहिये। मैं यह कह सकता हूँ कि मैंने सारे भारतमें दौरा किया है। मैं भारतकी दुखी हालत जानता हूँ। परन्तु सबसे ज्यादा दुःखदायी बात यह है कि हमारे यहाँके नौजवानोंके शरीर शक्तिहीन हैं। जहाँ बाल-विवाहका रिवाज जारी है और अुससे सन्तानें पैदा होना भी जारी है, वहाँ व्यायाम असंभव हो जाता है। व्यायामके लिअे भी थोड़ी बहुत शारीरिक सम्पत्ति

* अमरावतीके व्यायाम-मंदिरमें दिया हुआ भाषण।

चाहिये। क्षयरोगीको व्यायाम करनेकी सलाह कौन देगा? हाँ, को
हलकी कसरत अुसे बताअी जा सकती है। परन्तु आज जो दाव आ
देखे, वे तो अुसके लिअे असंभव हैं। अिसलिअे यदि हम भारत
और हिन्दू जातिकी अुन्नति चाहते हैं, तो बाल-विवाहका बुरा रि
मिट जाना चाहिये। जैसा मनु महाराजने कहा है, हरअेक विद्यार्थीको
साल तक अखंड ब्रह्मचर्य पालना चाहिये। ये दो शर्तें पूरी न हों,
कितना ही व्यायाम किया जाय, बेकार होगा।

परन्तु तीसरी बात। मेरी प्रतिज्ञा है, मेरा धर्म है कि मैं कि
भी अशान्तिके काममें हिस्सा नहीं लूँगा। भले ही कोअी कहे कि अहिं
धर्म सनातन धर्म नहीं। मेरे लिअे यही सनातन धर्म है, दूसरा को
नहीं। किसीको यह शंका हो सकती है कि मेरे जैसा अहिंसाका पुजा
यहाँ कैसे आ सकता है, परन्तु यह शंका करनेकी जरूरत नहीं। अहिंसा
अर्थ हिंसाकी शक्तिको छोड़ना है। जिसमें हिंसा करनेकी शक्ति न ह
वह अहिंसक नहीं हो सकता। अहिंसाकी तो अुपासना करनी पड़ती है
वह कोअी अपने आप मिल जानेवाली चीज़ नहीं। क्योंकि, जैसा मैं क
चुका हूँ, यह अेक प्रचण्ड शक्ति है। हिंसा करनेकी पूरी शक्ति ह
तो ही अहिंसक बननेकी गुंजाअिश रहती है। यह शक्ति जुटानेके लि
बल ही पैदा करना चाहिये, यह मैं नहीं मानता। किन्तु मैं मानता
कि बच्चों और नौजवानोंको निर्बल बनाकर और अुनके शरीर क्षी
करके तो अुन्हें अहिंसक नहीं बनाया जा सकता; नौजवानोंके हाथ
हथियार छीनकर अुन्हें अहिंसक नहीं बनाया जा सकता। अिस राज्य
बहुतसे गुनाहोंमें से अेक गुनाह यह है कि अुसने हमसे हथियार छी
लिये हैं; और यह हमें अहिंसक बनानेके लिअे नहीं, बल्कि कमजो
बनानेके लिअे किया है। मैं तो भारतको ताकतवर बना हुआ देख
चाहता हूँ।

यह व्यायाम-मंदिर मुझे पसन्द है। परन्तु यदि अेक भी व्यायाम
मंदिर मुसलमान, अीसाअी, हिन्दू या किसी भी जातिको मिटानेके लि

खोला जाय, तो अुसे मेरा आशीर्वाद नहीं मिल सकता। जिस व्यायाम-मन्दिरके जरिये सब जातियोंका, सब धर्मोंका संगठन होता हो, जो व्यायाम-मन्दिर अहिंसाके धर्मका रहस्य जाननेके लिअे हो, अुसके लिअे मेरा सदा आशीर्वाद है। मुझे यह विश्वास दिलाया गया है कि यह व्यायाम-मन्दिर अैसे ही ध्येयसे कायम हुआ है और अिसी विश्वास पर मैं यहाँ आया हूँ।

मैं आपको बधाअी देता हूँ और आपकी अुन्नति चाहता हूँ। मेरी अीश्वरसे प्रार्थना है कि तुम विद्यार्थी लोग सच्चे बनो, ब्रह्मचर्य पालो, धर्मकी रक्षा करो और भारतको तेजस्वी बनाओ।

नवजीवन, २६-१२-'२६

## २५

## दायाँ बनाम बायाँ

दाहिने और बायें हाथके बीच फर्क कैसे पड़ा, और कुछ काम बायें हाथसे नहीं किये जा सकते और कुछ दाहिनेसे ही किये जा सकते हैं यह रिवाज कब पड़ा, यह कोअी निश्चयके साथ नहीं कह सकता। परन्तु परिणाम तो हम जानते हैं कि बहुतसे कामोंमें अुपयोग न करनेके कारण बायाँ हाथ निकम्मा हो जाता है और हमेशा दाहिनेसे कमजोर रहता है।

जापानमें अैसा नहीं होता। वहाँके लोगोंको बचपनसे ही दोनों हाथोंका अेकसा अुपयोग सिखाया जाता है। अिससे अुनके शरीरकी अुपयोगिता हमारे शरीरसे बढ़ जाती है।

ये विचार मैं अपने मौजूदा अनुभवके सिलसिलेमें पढ़नेवालोंके लाभके लिअे रखता हूँ। जापानकी बात पढ़े हुअे मुझे बीस बरससे अूपर हो गये। जब मैंने यह बात सुनी, तभीसे मैंने बायें हाथसे लिखनेकी आदत डालनी शुरू

कर दी और साधारण् आदत डाल ली । मैंने यह मानकर कि मुझे फुरसत नहीं है, दाहिने हाथ जैसी तेजी बायेंमें पैदा नहीं की । जिसका मुझे अब पछतावा होता है । मेरा दाहिना हाथ अब मैं जैसा चाहता हूँ, वैसा लिखनेका काम नहीं देता । ज्यादा लिखनेसे अुसमें दर्द होता है । जहाँ तक संभव हो हाथसे लिखनेकी शक्ति बनाये रखनेका लोभ है । अिसलिअे मैंने फिरसे बायें हाथसे काम लेना शुरू किया है । मुझे अब अितनी फुरसत तो है ही नहीं कि मैं सब कुछ बायें हाथसे ही लिखूँ और अुसमें दाहिनेके बराबर फुरती आ जाय । फिर भी वह मुझे कठिन समयमें काम दे रहा है, अिसलिअे मैं अपना अनुभव पढ़नेवालोंके सामने रखता हूँ । जिसे फुरसत और अुत्साह हो, वह बायें हाथको भी तालीम दे । कुछ समय बाद सब अुसको अुपयोगी बना सकेंगे । सिर्फ लिखनेकी ही नहीं, और भी क्रियाओंका अभ्यास बायें हाथसे करनेमें ज़रूर फायदा है । क्या कितने ही लोगोंका यह अनुभव नहीं होगा कि दाहिने हाथको कुछ हो जाने पर अुनसे बायें हाथसे खाया तक नहीं जाता ? अिस लेखसे कोअी यह सार हरगिज न निकाले कि बायें हाथको बराबर की तालीम देनेके पीछे कोअी पागल हो जाय । अिस टिप्पणीका आशय अितना ही है कि आसानीसे बायें हाथकी जितनी आदत डाली जा सके, अुतनी डालनेकी सलाह दी जाय । शिक्षक लोग अिस सूचनाका अुपयोग बालकोंके लिअे करें, यह अिष्ट मालूम होता है ।

नवजीवन, १९–७–'२५

## २६

# जीवनमें संगीत

### १

[ अहमदाबादके राष्ट्रीय संगीत मंडलका दूसरा वार्षिकोत्सव सत्याग्रह आश्रमके प्रार्थना चौकमें गांधीजीकी मौजूदगीमें हुआ था। अुस मौके पर गाना-बजाना हो जानेके बाद गांधीजीने यह भाषण दिया था।]

हमारे यहाँ अेक सुभाषित है कि जिसे संगीत प्यारा न हो, वह या तो योगी है या पशु है। हम योगी तो हैं नहीं, परन्तु जिस हद तक संगीतमें कोरे हैं, अुस हद तक पशुके जैसे समझे जायेंगे। संगीत जाननेका अर्थ है, अपने सारे जीवनको संगीतसे भर देना। हमारी जिन्दगी सुरीली न होनेसे ही तो हमारी हालत दयाजनक है। जहाँ जनताका अेक सुर न निकलता हो, वहाँ स्वराज्य कहाँसे हो?

जहाँ अेक सुर न निकलता हो, जहाँ सब अपना अपना राग अलापते हों या सब तार टूटे हुअे हों, वहाँ अराजकता या बुरा राज्य होता है। हममें संगीत न होनेसे हमें स्वराज्यके साधन अच्छे नहीं लगते। और अिस अर्थमें प्लेटोका कहना सच है कि संगीतकी हालत देखकर आप समाजकी राजनैतिक स्थिति बता सकते हैं। यदि हममें संगीत आ जाय, तो स्वराज्य भी आ जाय। जब करोड़ों आदमी अेक स्वरसे भजन गाने लगें, अेक स्वरसे कीर्तन करने लगें, या रामधुन गाने लगें और जब अेक भी बेसुरी आवाज़ न निकले, तब यह कह सकते हैं कि हमारे सामाजिक जीवनमें संगीत आ गया। अितनी सीधी-सी बात भी हम न कर सकें, तो स्वराज्य कैसे लेंगे?

*   *   *

जहाँ बदबू है, वहाँ संगीत नहीं। हमें यह समझ लेना चाहिये कि सुगंध भी अेक तरहका संगीत है। आम तौर पर जब किसीके

कंठसे मुरीली आवाज निकलती है, तो अुसे सुननेको जी चाहता है और अुसे हम संगीत कहते हैं। परन्तु संगीतका विशाल अर्थ करेंगे, तो मालूम होगा कि जीवनके किसी भी भागमें हमारा संगीतके बिना काम नहीं चल सकता। संगीतका अर्थ आज तो स्वच्छन्दता और स्वेच्छाचार हो गया है। किसी भी बेशरम स्त्रीके नाचने-गानेको हम संगीत मान लेते हैं। और हमारी पवित्र माँ-बहनें तो बेसुरा ही गाती हैं। वे संगीत सीखें तो शरमकी बात समझी जाती है। अिस तरह संगीतके साथ सत्संग न होनेके कारण डॉक्टर (संगीत मंडलके सभापति डॉ० हरिप्रसाद) को दस विद्यार्थियोंसे ही सन्तोष करना पड़ा है।

असलमें देखा जाय तो संगीत पुरानी और पवित्र चीज़ है। हमारे सामवेदकी ऋचायें संगीतकी खान हैं। कुरान शरीफ़की अेक भी आयत सुरके बिना नहीं बाली जा सकती, और अीसाअी धर्ममें डेविड के 'साम' (गीत) सुनें तो अैसा लगता है, मानो सरस्वती अिस कलाकी चरम सीमा पर पहुँच गअी है, जैसे हम सामवेद सुन रहे हों। आज गुजरात संगीतहीन, कलाहीन हो गया है। अिस दोषसे बचना हो, तो अिस संगीत मंडलको अुत्तेजन मिलना चाहिये।

संगीतमें हमें हिन्दू-मुसलमानोंका मेल चाहिये। हिन्दू गाने-बजानेवालोंके साथ बैठकर मुसलमान गाने-बजानेवाले गाते-बजाते हैं। परन्तु वह शुभ दिन कब आयेगा, जब अिस राष्ट्रके दूसरे कामोंमें भी अैसा संगीत जमेगा? अुस समय हम सब राम और रहीमका नाम अेक साथ लेने लगेंगे।

आप संगीतको जो थोड़ी भी मदद देते हैं, अुसके लिअे बधाअीके पात्र हैं। आप लोग अपने लड़के-लड़कियोंको ज्यादा भेजेंगे, तो वे भजन-कीर्तन सीखेंगे, और वे अितना करेंगे तो भी आप राष्ट्रीय अुन्नतिमें कुछ न कुछ हाथ ज़रूर बटायेंगे।

परन्तु अिससे आगे बढ़ें। यदि हमें करोड़ों लोगोंको संगीतमय बनाना है, तो हम सबको खादी पहनना होगा और चरखा चलाना होगा।

आज खाँसाहबका संगीत बहुत मीठा था, किन्तु वह हम जैसे थोड़े लोगोंको ही मिल सकता है। सबको नसीब नहीं हो सकता। परन्तु चरखेका जो संगीत घर-घरमें सुनाओ दे सकता है, अुसके सामने वह संगीत फीका लगता है। क्योंकि चरखेका संगीत कामधेनु है, करोड़ोंके पेट भरनेका साधन है। मेरे खयालसे वह सच्चा संगीत है। अीश्वर सबका भला करे, सबको अच्छी बुद्धि दे।

नवजीवन, ४-४-'२६

## २

कॉलेजके विद्यार्थियोंके प्रश्नोंके संग्रहमें आखिरी प्रश्न यह है:

"संगीतसे आपके जीवन पर क्या असर हुआ है?"

संगीतसे मुझे शान्ति मिली है। मुझे अैसे मौके याद हैं, जब मुझे किसी कारण परेशानी हुअी हो। अुस समय संगीत सुननेसे मनको शान्ति मिल गअी। यह भी अनुभव हुआ है कि संगीतसे क्रोध मिट जाता है। अैसी तो कअी बातें याद हैं कि जिनके बारेमें यह कहा जा सकता है कि गद्यमें लिखी हुअी चीज़ोंका असर नहीं हुआ और अुन्हीं चीज़ोंके बारेमें भजन सुननेसे असर हो गया। मैंने देखा है कि जब बेसुरा भजन गाया गया, तो अुसके शब्दोंका अर्थ जानते हुअे भी वह न सुननेके बराबर लगा। और वही भजन जब मीठे सुरमें गाया गया, तो अुसमें भरे हुअे अर्थका असर मेरे मन पर बहुत गहरा हुआ। गीताजी जब मीठे सुरमें अेक आवाजसे गाअी जाती है, तब अुसे सुनते-सुनते मैं थकता ही नहीं, और गाये जानेवाले श्लोकोंका अर्थ दिलमें ज्यादा-ज्यादा गहरा पैठता है। मीठे स्वरमें जो रामायण बचपनमें सुनी थी, अुसका असर अब तक चला आ रहा है। अेक बार जब अेक मित्रने 'हरिनो मारग छे शूरानो' भजन गाया, तो अुसका असर मुझ पर पहले कअी बार सुना अुससे कहीं ज्यादा गहरा हुआ। सन् १९०७ में ट्रांसवालमें मुझ पर मार पड़ी थी। घावके टाँके लगाकर, डॉक्टर चला गया था।

मुझे दर्द हो रहा था। जो दुःख मैं स्वयं गाकर या मनन करके नहीं मिटा सकता था, वह ओलिव डोकसे अेक मशहूर भजन सुनकर मिटा लिया। यह बात आत्मकथामें लिखी जा चुकी है।

मेरे यह लिखनेका कोअी अैसा मतलब न लगाये कि मुझे संगीत आता है। यह कहा जा सकता है कि संगीतका मेरा ज्ञान नहींके बराबर है। यह भी नहीं कहा जा सकता कि मैं संगीतकी परीक्षा कर सकता हूँ। यह मेरे लिअे अेक अीश्वरकी देन है कि कुछ संगीत मुझे अच्छा लगता है या अच्छा संगीत मुझे पसन्द है।

मुझ पर संगीतका असर जिस तरह हमेशा अच्छा ही हुआ है, अिससे मैं यह सार नहीं निकालना चाहता कि सब पर अैसा ही असर होता है या होना ही चाहिये। मैं जानता हूँ कि गानों द्वारा बहुतोंने अपनी विषय-वासनाओंको अुत्तेजित किया है। अिससे यह सार निकाला जा सकता है कि जिसकी जैसी भावना हो, अुसे वैसा ही फल मिलता है। तुलसीदासने ठीक ही कहा है :

> जड़ चेतन गुण-दोषमय विश्व कीन्ह करतार ।
> संत हंस गुण गहहिं पय परिहरि वारि विकार ।

*परमेश्वरने जड़, चेतन सबको गुण-दोषवाला बनाया है। किन्तु जो* विवेकी है वह, जैसे कहानीका हंस दूधमें से पानी छोड़कर मलाअी ले लेता है, वैसे ही दोष छोड़कर गुणकी पूजा करेगा।

नवजीवन, २५-११-'२८

# शालाओंमें संगीत

गांधर्व महाविद्यालयके पंडित नारायणशास्त्री खरेने लड़के-लड़कियोंमें शुद्ध संगीतका प्रचार करनेके काममें जीवन अर्पण किया है। खास तौर पर अहमदाबादमें और आम तौर पर गुजरातमें अिस दिशामें जो बड़ी प्रगति हो रही है, अुसका हाल अुन्होंने भेजा है, और अिस बारेमें अपना दुःख प्रकट किया है कि संगीतको पढ़ाअीमें शामिल करनेकी बात शिक्षा-विभागके अधिकारी नहीं सुनते। पंडितजीकी अनुभव पर कायम की हुअी राय यह है कि प्रारंभिक शिक्षाके पाठ्यक्रममें संगीतको जगह मिलनी ही चाहिये। मैं अिस सूचनाका हृदयसे समर्थन करता हूँ। बच्चेके हाथको शिक्षा देनेकी जितनी ज़रूरत है, अुतनी ही ज़रूरत अुसके गलेको शिक्षा देनेकी है। लड़के-लड़कियोंके भीतर जो अच्छाअियाँ भरी रहती हैं, अुन्हें बाहर लाने और पढ़ाअीमें भी अुनकी सच्ची दिलचस्पी पैदा करनेके लिअे कवायद, अुद्योग, चित्रकारी और संगीत साथ-साथ सिखाने चाहियें।

यह बात मैं मानता हूँ कि अिसका अर्थ शिक्षाकी पद्धतिमें क्रान्ति करनेके बराबर है। राष्ट्रके भावी नागरिकोंके जीवन-कार्यकी पक्की बुनियाद डालनी हो, तो ये चार चीज़ें ज़रूरी हैं। किसी भी प्राथमिक शालामें जाकर देख लीजिये, तो वहाँ लड़के मैले होंगे, व्यवस्थाका नाम न होगा और कअी बेसुरी आवाज़ें निकलती होंगी। अिसलिअे मुझे तो कोअी शंका नहीं कि जब कअी प्रान्तोंके शिक्षामंत्री शिक्षा-पद्धतिकी नये सिरेसे रचना करेंगे और अुसे देशकी ज़रूरतके मुताबिक बनायेंगे, तब जिन ज़रूरी बातोंकी तरफ मैंने अूपर ध्यान खींचा है, अुन्हें वे छोड़ नहीं देंगे। मेरी प्राथमिक शिक्षाकी योजनामें ये चीज़ें शामिल ही हैं। जिस समय

बच्चोंके सिरसे अेक कठिन विदेशी भाषा सीखनेका बोझा अुतार दिया जायगा, अुसी समय ये चीज़ें आसान हो जायेंगी ।

बेशक, हमारे पास अिस नअी पद्धतिसे शिक्षा दे सकनेवाले शिक्षक नहीं हैं । परन्तु यह कठिनाअी तो हर नये साहसमें आने ही वाली है । आजका शिक्षक वर्ग सीखनेको राजी हो, तो अुसे यह मौका देना चाहिये; और यदि वे ये जरूरी विषय सीख लें, तो अुनकी तनखाहें तुरन्त बढ़ानेकी तजवीज भी करनी चाहिये । यह कल्पना भी नहीं की जा सकती कि जो नये विषय प्राथमिक शिक्षामें शामिल करने हैं, अुन सबके लिअे अलग-अलग शिक्षक रखे जायँ । अिससे तो खर्च बहुत बढ़ जायगा । अिसलिअे यह बिलकुल अनावश्यक है । यह हो सकता है कि प्राथमिक शालाओंके कितने ही शिक्षक अितने कच्चे हों कि वे अिन नये विषयोंको थोड़े समयमें न सीख सकें, परन्तु जो लड़का मैट्रिक तक पढ़ा हो, अुसे संगीत, चित्रकारी, कवायद और हाथ-अुद्योगके मूलतत्त्व सीखनेमें तीन महीनेसे ज्यादा समय न लगना चाहिये । अिनकी कामचलाअू जानकारी वह कर ले, तो फिर वह पढ़ाते-पढ़ाते अिस ज्ञानको हमेशा बढ़ाता रह सकता है । बेशक, यह काम तभी हो सकता है जब शिक्षकोंमें राष्ट्रको फिरसे अूँचा अुठानेके लिअे अपनी योग्यता दिन-दिन बढ़ाते रहनेकी लगन और अुत्साह हो ।

*हरिजनबन्धु, १२-९-'३७*

# अेक अटपटा प्रश्न

अेक शिक्षक नीचे लिखा प्रश्न पूछते हैं :

"हमारी धार्मिक पुराणोंकी कहानियोंमें देवी-देवताओंके तरह-तरहके रूपोंके वर्णन हैं और कअी प्रकारकी अजीब कथाअें दी हुअी हैं। हम मानते हैं कि ये देवी-देवता भावनाओं या कुदरती शक्तियोंके प्रतीक या रूपक हैं। हम अुनके भीतरी रहस्य या आत्माको पूजते हैं, परन्तु यह नहीं मानते कि अैसे स्वरूपवाले देवी-देवता स्वर्गमें, कैलाशमें या वैकुण्ठमें रहते हैं। फिर भी यह मानकर कि पुराणोंकी कथाओंमें धर्मकी शिक्षा या काव्य है, हम अिन कहानियोंको स्वीकार करते और अुनका अुपयोग करते हैं। अब प्रश्न यह है कि बच्चोंके सामने ये कहानियाँ किस रूपमें रखी जायँ? यदि अिनकी आत्मा कायम रखकर ढाँचा बदल दें, तो आजकी बहुतसी कहानियाँ रद्द करके नअी कहानियाँ गढ़नी पड़ें। बालकोंसे यह कहना ही पड़े कि कुछ कहानियाँ अैसी हैं, जो कल्पित या मनगढ़न्त हैं। (जैसे यह कि राहु चन्द्र और सूर्यको निगल जाता है।) दूसरी कहानियोंमें (जैसे शंकर-पार्वती, समुद्र-मंथन आदि) देवताओंका स्वरूप वर्णन किये बिना कहानीमें मजा ही क्या रहे? तो क्या पग-पग पर यह कहते रहें कि ये कहानियाँ भी झूठी यानी कल्पित हैं? या अिन कहानियोंको अेक साथ ही रद्द कर दिया जाय? अैसा करनेसे क्या रूपक (जो बच्चोंके मन पर बहुत असर कर सकते हैं और जिनमें काव्य भी होता है) जैसे विषयको ही शिक्षामें से निकाल नहीं देना पड़ेगा? कहते हैं कि 'हमारी धार्मिक कहानियाँ कहते समय धार्मिक वातावरण अच्छी तरह कायम रहना चाहिये। अिसमें समालोचकका काम नहीं।' या मूर्ति या देवी-देवताकी पूजा भूल नहीं, बल्कि हलका

सत्य हैं और तीव्र सत्य जब बच्चे बड़े होंगे तो समझ लेंगे, यह मानकर ये कहानियाँ बिना किसी फेरबदलके बच्चोंको कही जायँ ? यदि अैसा करें तो अिसमें सत्यका भंग होता है या नहीं ? यह प्रश्न कहानीके वर्गमें आता है, अिसलिअे व्यावहारिक है । सार यह कि हमारी पुराणोंकी कहानियोंके बारेमें हिन्दू और शिक्षकके नाते हमारा क्या रुख होना चाहिये ?"

क्योंकि मैं भी अेक तरहका शिक्षक हूँ और मैंने कभी प्रयोग किये हैं और कर रहा हूँ, अिसलिअे अिस प्रश्नका अुत्तर देनेकी हिम्मत करता हूँ । यह प्रश्न अेक साथीने किया है । बहुत समयसे मैंने अिस और अैसे दूसरे प्रश्नोंको सँभालकर रख छोड़ा है । साथीकी माँग 'नवजीवन' के जरिये ही समझानेकी नहीं है । परन्तु बहुतसे शिक्षकोंसे मेरा काम पड़ता है और अुनमेंसे कुछको मेरे विचारोंसे मदद मिल सकती है, अिस आशासे अुत्तर 'नवजीवन' में देनेका विचार किया है ।

मैं स्वयं तो पुराणोंको धर्मग्रंथके रूपमें मानता हूँ । देवी-देवताओंको मानता हूँ । परन्तु जिस तरहसे पुराणियोंने अुन्हें माना है या हमसे मनवाया है, अुस तरह मैं अुन्हें नहीं मानता । मैं जानता हूँ कि जिस तरह समाज अुन्हें अभी मानता है, अुस तरह मैं नहीं मानता । मैं यह नहीं मानता कि अिन्द्र, वरुण आदि देवता आकाशके भीतर रहते हैं और वे अलग-अलग व्यक्ति हैं या सरस्वती आदि देवियाँ भी अलग-अलग व्यक्तियाँ हैं । परन्तु मैं यह जरूर मानता हूँ कि देवी-देवता अनेक शक्तियोंके वाचक हैं । अुनके वर्णन काव्य हैं । धर्ममें काव्यको स्थान है । जिस चीज़को हम किसी भी तरह मानते हैं, अुसे हिन्दू धर्मने शास्त्रका रूप दे दिया है । जैसे, जो अीश्वरकी अनन्त शक्तियोंमें विश्वास रखनेवाले हैं, वे देवी-देवताओंको मानते ही हैं । जैसे अीश्वरकी अनेक शक्तियाँ हैं, वैसे ही अुसके अपार रूप भी हैं । जिसे जो अच्छा लगे, वह अुसी नाम और रूपसे अीश्वरको पूजे । अिसमें तो जरा भी दोष नहीं दीखता । रूपकोंको छोड़कर बच्चोंको जहाँ-जहाँ अुनका रहस्य बतानेकी जरूरत हो, वहाँ-वहाँ बतानेमें मुझे तो कोअी संकोच नहीं

होता। यह भी मैंने नहीं देखा कि जिसका कोअी बुरा फल निकला हो। बेशक, मैं बच्चोंको अुलटे रास्ते नहीं ले जाअूँगा। अैसा माननेमें मुझे जरा भी कठिनाअी नहीं होती कि हिमालय शिवजी हैं और अुनकी जटामें से पार्वतीके रूपमें गंगा निकलती है। अितना ही नहीं, अिससे मेरी अीश्वरके प्रति रही भावना बढ़ती है और मैं यह ज्यादा अच्छी तरह समझ सकता हूँ कि सब कुछ अीश्वरमय है। समुद्र-मन्थन आदिका अर्थ जिसे जैसा अुचित लगे वैसा लगा ले। हाँ, अुससे नीति और सदाचारकी वृद्धि होनी चाहिये। पंडितोंने अपनी बुद्धिके अनुसार अैसे अर्थ लगाये हैं। अैसी कोअी बात नहीं कि वही अर्थ लग सकते हैं। जैसे मनुष्यमें विकास हुआ करता है, वैसे ही शब्दों और वाक्यों आदिके अर्थमें भी हुआ करता है। जैसे-जैसे हमारी बुद्धि और हृदयका विकास हो, वैसे-वैसे शब्दों और वाक्यों आदिके अर्थका भी विकास होना चाहिये और हुआ करता है। जहाँ लोग अर्थको मर्यादित कर देते हैं, अुसके आसपास दीवार खड़ी कर लेते हैं, वहाँ लोगोंका पतन हुअे बिना रह ही नहीं सकता। अर्थ और अर्थ करनेवाले दोनोंका विकास साथ-साथ होता है। और सब अपनी-अपनी भावनाके अनुसार अर्थकी खींचातानी करते ही रहेंगे। व्यभिचारी भागवतमें व्यभिचार देखेंगे, अेकनाथको अुसीमें से आत्माके दर्शन हुअे। मेरा पक्का विश्वास है कि भागवत लिखनेवालेने व्यभिचारको बढ़ानेके लिअे भागवत नहीं लिखी। साथ ही कलियुगके लोग अिस ग्रन्थमें अैसी कोअी बात देखें, जो वे सहन न कर सकें, तो वे अुसे जरूर छोड़ दें। और यह मान बैठना कि जो कुछ छपा हुआ है — फिर भले ही वह संस्कृतमें ही क्यों न हो — वह सब धर्म ही है, धर्मान्धता या जड़ता ही है।

अिसलिअे अिस प्रश्नको हल करनेके लिअे मैं तो अेक ही सुनहला कायदा जानता हूँ और वह सब शिक्षकोंके सामने रखना चाहता हूँ। जो कुछ हम पढ़ें, फिर भले ही वह वेदोंमें हो, पुराणोंमें हो या किसी भी धर्म पुस्तकमें हो, वह यदि सत्यको भंग करे या हमारी दृष्टिसे

सत्यको भंग करता हो या दुर्गुणोंका पोषण करनेवाला हो, तो अुसे छोड़ देना हमारा धर्म है। जेलमें मुझ पर जो बात बीती, वह यहाँ लिख देता हूँ। जयदेवके गीत-गोविन्दकी प्रशंसा मैंने बहुतोंसे कअी बार सुनी थी। किसी दिन अुसे पढ़ जानेकी अिच्छा मेरे मनमें थी। अिस काव्यसे भले ही बहुतोंका भला हुआ होगा, किन्तु मेरे लिअे अिसका पढ़ना अेक सजा ही साबित हुआ। पढ़ तो गया, परन्तु अुसके वर्णन दुखदायी निकले। यह माननेमें मुझे जरा भी संकोच नहीं होगा कि अिसमें सिर्फ मेरा ही दोष हो सकता है। परन्तु मैंने अपनी हालत तो पढ़नेवालेके सन्तोषकी ख़ातिर बताअी है। क्योंकि गीत-गोविन्दका असर मुझ पर अच्छा नहीं हुआ, अतः मेरे लिअे वह त्याज्य हो गया; और मैं अुसे छोड़ सका, क्योंकि मेरे पास अपना स्वतंत्र माप था। जो चीज़ मेरे विकार मिटा सके, मेरे राग-द्वेषको कम कर सके, जिस चीज़के अुपयोगसे मेरा मन सूली पर चढ़ते समय भी सत्य पर डटा रहे, वही चीज़ धर्मकी शिक्षा समझी जानी चाहिये। अिस कसौटी पर गीत-गोविन्द खरा न अुतरा और अिसीलिअे मेरे लिअे वह त्याज्य पुस्तक हो गअी।

आजकल हममें अैसे बहुतसे नौजवान और बूढ़े भी हैं, जो यह मानते हैं कि कोअी बात शास्त्रमें लिखी है अिसीलिअे करने लायक है। अैसा करनेसे हमारा पतन अपने आप हो जायगा। शास्त्र किसे कहें, अिसकी मर्यादाका हमें पता नहीं होता। शास्त्रके नाम पर जो भी ढोंग चल रहा हो वह धर्म है, यह मानकर हम अपना व्यवहार करें, तो अिससे बुरा नतीजा ही निकलेगा। मनुस्मृतिको ही लें। मनुस्मृतिमें क्या क्षेपक है और क्या असल है, यह मैं नहीं जानता। किन्तु अुसमें कितने ही श्लोक अैसे हैं, जिनका धर्मके रूपमें बचाव हो ही नहीं सकता। अैसे श्लोकोंको हमें छोड़ना ही चाहिये। मैं तुलसीदासका पुजारी हूँ। रामायणको अुत्तमसे अुत्तम ग्रंथ मानता हूँ। किन्तु 'ढोल, गँवार, शूद्र, पशु, नारी, ये सब ताड़नके अधिकारी' में जो विचार भरा है, अुसका

में आदर नहीं कर सकता । अपने समयके पुराने रिवाजके वशमें होकर तुलसीदासजीने ये विचार प्रकट किये, अिसलिअे मैं शूद्रके नामसे पुकारे जानेवालोंको या अपनी धर्मपत्नीको या जानवरको, जब-जब ये मेरे वशमें न रहें, मारने लग जाअूँ, तो यह कोअी न्यायकी बात नहीं ।

अब मुझे लगता है कि अूपरके प्रश्नोंका अुत्तर स्पष्ट हो जाता है । देवी-देवताओंकी बात जिस हद तक सदाचारको बढ़ानेवाली हो, अुस हद तक अुसे माननेमें मुझे जरा भी कठिनाअी नहीं दीखती । मैं यह नहीं मानता कि रूपक छोड़कर बतानेसे बच्चोंकी अुन कथाओंमें दिलचस्पी नहीं रहती । किन्तु दिलचस्पी न भी रहती हो, तो भी सत्यका नाश करके दिलचस्पी बढ़ानेके रिवाजको मैं नहीं मानता । सत्यमें जितना रस भरा है, वही रस हमें बच्चोंके आगे रख देना चाहिये । यह मेरा अनुभव है कि यह रस प्रगट किया जा सकता है । पहले बच्चोंको यह स्पष्ट कह दिया जाय कि दस सिरवाला राक्षस न तो दुनियामें कभी हुआ और न होगा । अिसके बाद हम यह मानकर भी बात करें कि अैसा रावण हो गया है, तो अिसमें मुझे सत्य या रसकी हानि नहीं मालूम होती । बच्चे समझते ही हैं कि दस सिरवाला रावण हमारे दिलमें बसी हुअी दस नहीं, बल्कि हजार सिरवाली दुष्ट वासनाअें हैं । अीसपकी कहानियोंमें पशु-पक्षी बोलते हैं । बच्चे जानते हैं कि पशु-पक्षी बोल नहीं सकते । फिर भी अीसपकी कहानियाँ पढ़नेमें जो आनन्द आता है, वह बिलकुल कम नहीं होता ।

नवजीवन, १८-७-'२६

२९

# सत्यका अनर्थ

अेक भाअी अेक पाठशालाके आचार्यकी मददसे विद्यार्थियोंमें गीताकी पढ़ाअी जारी करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। परन्तु गीताका वर्ग शुरू होनेके थोड़े समय बाद हुअी सभामें अेक बैंकके मैनेजर खड़े हुअे और सभाके काममें विघ्न डालकर बोले : 'विद्यार्थियोंको गीता पढ़नेका हक नहीं है। गीता कोअी बच्चोंके हाथमें देनेका खिलौना नहीं है।' अब शुन भाअीने मुझे अिस घटनाके बारेमें लम्बा और दलीलोंसे भरा पत्र लिखा है और अपनी दलीलके समर्थनमें रामकृष्ण परमहंसके कितने ही वचन दिये हैं। शुनमें से कुछ यहाँ देता हूँ:

"बालकों और नौजवानोंको अीश्वर प्राप्तिकी साधना करनेका प्रोत्साहन देना चाहिये। वे बिना बिगाड़े हुअे फलोंकी तरह होते हैं और दुनियावी वासनाओंका दूषित स्पर्श शुन्हें जरा भी नहीं लगा होता। ये वासनायें जहाँ अेक बार शुनके मनमें घुसीं कि फिर उन्हें मोक्षके रास्तेकी तरफ मोड़ना बहुत मुश्किल है।

"मैं नौजवानोंको अितना ज्यादा क्यों चाहता हूँ? अिसलिअे कि वे अपने मनके सोलहों आने मालिक हैं। वे जैसे बड़े होते जायेंगे, वैसे शुसमें छोटे-छोटे भाग होते जायेंगे। विवाहित आदमीका आधा मन स्त्रीमें बसा रहता है। जब बच्चा होता है, तो चार आने मन वह खींच लेता है। बाकीके चार आने माता-पिता, दुनियाके मान-मर्तबे, कपड़े-लत्तोंके शौक वगैरामें बँट जाते हैं। अिसलिअे बालकोंका मन अीश्वरको आसानीसे पहचान सकता है। बूढ़े आदमीके लिअे यह बड़ी कठिन बात है।

"तोतेका गला बड़ी शुमरमें पक जाता है, तब शुसे गाना नहीं सिखाया जा सकता। वह बच्चा हो तभी सिखाना चाहिये। अिसी

तरह बुढ़ापेमें अीश्वर पर मन लगाना मुश्किल है। बचपनमें वह आसानीसे लगाया जा सकता है।

"अेक सेर मिलावटके दूधमें छटाँकभर पानी हो, तो पानीको जलानेमें बहुत थोड़ी मेहनत और थोड़ा अींधन चाहिये। परन्तु सेर भर दूधमें तीन पाव पानी हो, तो अुसे जलानेके लिअे कितनी मेहनत और कितना अींधन चाहिये? बच्चोंके मनको वासनाओंका मैल थोड़ा ही लगा होता है, अिसलिअे वह अीश्वरकी तरफ मुड़ सकता है। वासनाओंसे पूरी तरह रंगे हुअे बूढ़े लोगोंके मनको किस तरह मोड़ा जा सकता है?

"छोटे पेड़को जैसा चाहें मोड़ लीजिये, परन्तु पके बाँसको मोड़ने लगें तो वह टूट जायगा। बच्चोंके दिलको अीश्वरकी तरफ़ मोड़ना आसान है, परन्तु बूढ़े आदमीका दिल खींचने चलें तो वह छटक जाता है।

"मनुष्यका मन राअीकी पुड़िया जैसा है। जैसे पुड़ियाके फट जाने पर बिखरे हुअे दाने चुनकर जमा करना कठिन है, वैसे ही जब मनुष्यका मन कअी तरफ दौड़ता हो और संसारके जालमें फँस गया हो, तब अुसे मोड़कर अेक जगह लगाना बहुत कठिन है। बच्चोंका मन कअी तरफ नहीं दौड़ता, अिसलिअे अुसे किसी चीज़ पर आसानी से अेकाग्र किया जा सकता है। किन्तु बूढ़ेका मन दुनियामें ही रमा रहनेके कारण अुसे अिधरसे खींचकर अीश्वरकी तरफ मोड़ना बहुत कठिन है।"

वेद पढ़नेके अधिकारके बारेमें मैंने सुना था, परन्तु यह मुझे कभी खयाल भी न था कि अुस बैंकके मैनेजरकी कल्पनाके अधिकारकी ज़रूरत गीता पढ़नेके लिअे भी पड़ेगी। वे यह बता देते तो अच्छा था कि अुस अधिकारके लिअे क्या गुण ज़रूरी हैं। स्वयं गीताने ही स्पष्ट शब्दोंमें कहा है कि गीता निन्दकके सिवाय और सबके लिअे है। सच पूछें तो हिन्दू धर्मकी मूल कल्पना ही यह है कि विद्यार्थियोंका जीवन

ब्रह्मचारीका है और अुन्हें अिस जीवनकी शुरुआत धर्मके ज्ञानसे और **धर्मके आचरणसे** करनी चाहिये, जिससे जो कुछ वे सीखते हैं, अुसे हजम कर सकें और धर्मके आचरणको अपने जीवनमें ओतप्रोत कर सकें। पुराने जमानेका विद्यार्थी यह जाननेसे पहले ही कि मेरा धर्म क्या है, अुस पर अमल करने लग जाता था; और अिस तरह अमल करनेके बाद अुसे जो ज्ञान मिलता था, अुससे अपने लिअे नियत किये गये अमलका रहस्य वह समझ सकता था।

अिस तरह अधिकार तो अुस समय भी था। परन्तु वह अधिकार पाँच यम — अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य — रूपी सदाचारका था। धर्मका अध्ययन करनेकी अिच्छा रखनेवाले हर आदमीको ये नियम पालने पड़ते थे। धर्मके अिन आधार भूत सिद्धान्तोंकी ज़रूरत सिद्ध करनेके लिअे धर्मग्रंथोंके पढ़नेकी ज़रूरत नहीं रहती।

किन्तु आजकल अिस तरहके बहुतसे अर्थवाले शब्दोंकी तरह 'अधिकार' शब्द भी विकृत हो गया है। अेक धर्मभ्रष्ट मनुष्यको सिर्फ ब्राह्मण कहलानेके कारण ही शास्त्र पढ़नेका और हमें समझानेका हक माना जाता है; और दूसरे अेक आदमीको, जिसे किसी खास स्थितिमें जन्म लेनेके कारण 'अछूत' पद मिल गया है — भले ही वह कितना ही धर्मात्मा हो — शास्त्र पढ़नेकी मनाही है।

परन्तु जिस महाभारतका गीता अेक भाग है, अुसके लेखकने अिस पागलपन भरी मनाहीके विरोधमें ही यह महाकाव्य लिखा और वर्ण या जातिका जरा भी भेद किये बिना सबको अुसे पढ़नेकी आज़ादी दे दी। मेरा खयाल है कि अिसमें सिर्फ मेरे बताये हुअे यमोंकि पालनकी शर्त रखी होगी। 'मेरा खयाल है' ये शब्द मैंने अिसलिअे जोड़े हैं कि यह लिखते समय मुझे याद नहीं आता कि महाभारत पढ़नेके लिअे यमोंके पालनेकी शर्त रखी गअी होगी। किन्तु अनुभव बताता है कि हृदयकी शुद्धि और भक्तिभाव, ये दो बातें शास्त्रग्रंथ अच्छी तरह समझनेके लिअे ज़रूरी हैं।

आजकलके छापेखानेके ज़मानेने सारे बंधन तोड़ डाले हैं। आज जितनी आज़ादीसे धर्मनिष्ठ लोग शास्त्र पढ़ते हैं, अुतनी ही आज़ादीसे नास्तिक भी पढ़ते हैं। किन्तु हम यहाँ तो अिसकी चर्चा करते हैं कि विद्यार्थियोंका धर्मकी शिक्षा और अुपासनाके अेक अंगके रूपमें गीता पढ़ना ठीक है या नहीं। अिस बारेमें मैं यह कहता हूँ कि यम-नियमके पालनेकी शक्ति और अिस कारण गीता पढ़नेकी योग्यतामें विद्यार्थियोंसे बढ़कर अेक भी वर्ग मेरे ध्यानमें नहीं आता। दुर्भाग्यसे यह मानना पड़ता है कि विद्यार्थी और शिक्षक ज़्यादातर पाँच यमोंके सच्चे अधिकारके बारेमें ज़रा भी विचार नहीं करते।

नवजीवन, ११-१२-'२७

## ३०

# राष्ट्रीय स्कूलोंमें गीता

अेक भाओी मुझे लिखकर पूछते हैं कि राष्ट्रीय स्कूलोंमें हिन्दू-अहिन्दू तमाम विद्यार्थियोंके लिओ गीताकी शिक्षा अनिवार्य की जा सकती है या नहीं। दो साल पहले जब मैं मैसूरका दौरा कर रहा था, तब अेक माध्यमिक स्कूलके हिन्दू लड़कोंके गीता न जानने पर मुझे अफ़सोस जाहिर करनेका मौका मिला था। अिस तरह सिर्फ़ राष्ट्रीय स्कूलोंमें ही नहीं, बल्कि हर शिक्षण-संस्थामें गीताकी पढ़ाओीके लिओ मेरा पक्षपात है। हिन्दू लड़कों या लड़कियोंके लिओ गीताका न जानना शर्मकी बात मानी जानी चाहिये। किन्तु मेरा आग्रह गीताकी पढ़ाओी अनिवार्य करनेसे — खास कर राष्ट्रीय स्कूलोंमें अनिवार्य करनेसे — अिनकार करता है। यह सच है कि गीता सार्वत्रिक धर्मका ग्रन्थ है, परन्तु यह अैसा दावा है जो किसीसे ज़बरदस्ती नहीं मनवाया जा सकता। कोओी भी ओीसाओी, मुसलमान या पारसी यह दावा नामंजूर कर सकता है; या बाओिबल, क़ुरान या अवेस्ताके लिओ यही दावा कर सकता है। मुझे डर है कि

जो लोग अपना हिन्दू वर्गमें गिना जाना पसन्द करते हैं, अुन सबके लिअे भी गीता अनिवार्य नहीं की जा सकती। बहुतसे सिक्ख और जैनी अपनेको हिन्दू मानते हैं, किन्तु अुनके बच्चोंके लिअे गीताकी शिक्षा अनिवार्य करनेकी बात आये, तो वे अुसका विरोध करेंगे। सांप्रदायिक स्कूलोंकी बात अलग है। जैसे अेक वैष्णव स्कूल गीताको अपने यहाँकी शिक्षाका अंग माने, तो मैं अुसे सर्वथा अुचित समझूँगा। हर खानगी स्कूलको अपना शिक्षाक्रम तय करनेका अधिकार है। राष्ट्रीय स्कूलको कुछ खास और साफ मर्यादाओंके भीतर रहकर चलना पड़ता है। किसीके अधिकारमें दखल देनेका नाम जबरदस्ती है। जहाँ अेक खानगी स्कूलमें भरती होनेके अधिकारका कोअी दावा नहीं कर सकता, वहाँ राष्ट्रीय स्कूलमें राष्ट्रका हरअेक आदमी भरती होनेके अधिकारका दावा अनुमानतः कर सकता है। अिस तरह अेक जगह जो भरती होनेकी शर्त मानी जायगी, वह दूसरी जगह जबरदस्ती समझी जायगी। बाहरके दबावसे गीता सब जगह नहीं फैल सकती। यदि अिसके भक्त अिसे जबरदस्ती दूसरोंके गले अुतारनेका प्रयत्न न करके अिसकी शिक्षाको अपने जीवनमें अुतारेंगे, तो ही अिसका सब जगह प्रचार होगा।*

* यंग अिंडिया, २०-६-'२९ से

## ३१

# बालक क्या समझें ?

गुजरात विद्यापीठका अेक विद्यार्थी लिखता है :

" आपके लेख पढ़कर पैदा हुअी शंका यहाँ प्रश्नके रूपमें रखता हूँ । आपके दो-तीन लेखोंके पढ़नेसे मुझे अैसा लगा कि आप बच्चोंके बारेमें कुछ अजीबसे विचार रखते हैं । बालककी बुद्धिकी कल्पना और अुसे आत्मज्ञान होनेके बारेमें आपकी मान्यता मुझे असंभव लगी । आपने अेक जगह हिन्दीमें यों लिखा है :

'बालकके लिअे लिखना-पढ़ना सीखने और दुनियावी जानकारी प्राप्त करनेके पहले अिस बातका ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है कि आत्मा क्या है, सत्य क्या है, प्रेम क्या है और आत्माके अन्दर कौन-कौनसी शक्तियाँ छिपी हुअी हैं ।'

" ये वाक्य हमारी पाठमालाके अेक पाठमें आये हैं । बच्चा दुनियावी ज्ञान प्राप्त करनेसे पहले आत्मा, प्रेम, सत्य आदिको किस तरह पहचान सकता है ? ये तो तत्त्वज्ञानके गहरे ज्ञान और वाद-विवादके प्रश्न हैं । और किसी भी बच्चेको लिखना-पढ़ना सीखनेसे पहले आत्मा, सत्य, आदिका ज्ञान होना संभव भी नहीं, क्योंकि अुसकी बुद्धि अभी कच्ची है । यह बात किसी भी तरह गले नहीं अुतरती ।

" दूसरा अुल्लेख आपने ' नवजीवन ' में ' अेक अटपटा प्रश्न ' नामक लेखमें किया है :

' बच्चे समझते ही हैं कि दस सिरवाला रावण हमारे दिलमें बसी हुअी दस नहीं, बल्कि हज़ार सिरवाली दुष्ट वासनाअें हैं ।'

" बच्चे समझते ही हैं,' यह आप कैसे कह सकते हैं ? मुझे कल्पना भी नहीं होती कि बच्चेको रावणकी बात सुनकर अैसा विचार कभी आ सकता है ।

"दिलमें बसी हुआी दस सिरवाली वासनाओंकी कल्पना तो किसी अच्छे पढ़े-लिखेको भी नहीं आयेगी। तत्त्वचिंतन करनेवाले या आध्यात्मिक रास्ते पर चलनेवाले आदमीको ही अैसी कल्पना हो सकती है। जब मामूली तौर पर बड़े आदमीको भी अैसी कल्पना नहीं आती, तो फिर समझमें नहीं आता कि बच्चेके बारेमें आप यह बात किस हेतुसे लिखते हैं। मै तो मानता हूँ कि किसी भी बच्चेको अैसी कल्पना नहीं आ सकती।

"आपकी मान्यताका प्रत्यक्ष अुदाहरण आश्रमकी प्रार्थनाके समय आप बच्चोंको जो 'गीता' और 'तुलसी रामायण' पढ़ाते हैं वह है।

"मेरे पास यह माननेके लिअे कोअी कारण नहीं कि आप यह पढ़ाअी सिर्फ अिसीलिअे कराते हैं कि अिससे बच्चोंका शब्दभण्डार बढ़े, भाषा पर अधिकार हो जाय। किन्तु कभी-कभी जब आप बच्चोंके सामने तत्त्वज्ञानके गंभीर प्रश्न रखते हैं और बेचारे बच्चे समझते नहीं और अूँघने लगते हैं, तब सचमुच हमारे सामने यह प्रश्न बहुत बड़े रूपमें खड़ा हो जाता है कि बापूजी किस लिअे बच्चोंको प्यारे शूपमें हटाकर 'स्थितप्रज्ञता', 'कर्म', 'त्याग' आदि गहन विषयोंमें, जहाँ बच्चेकी बुद्धि सुअीकी नोंकके बराबर भी नहीं जाती, प्रवेश कराना चाहते हैं?"

अिस पत्रमें जो अुदाहरण दिये गये हैं, अुन अुदाहरणवाले लेखोंको मैं पढ़ नहीं सका हूँ। किसी लेखमें से कोअी अेकाध अुदाहरण छाँटकर, आगे-पीछेके सम्बन्ध पर विचार किये बिना, अुससे मेल खानेवाला अर्थ निकालना हमेशा सम्भव नहीं। फिर भी अिस अुदाहरणमें जो भाव भरा है, वह मेरे अनुभवसे निकला है। अिसलिअे असली लेख पढ़े बिना अुत्तर देनेमें मुझे कठिनाअी नहीं। पाठक यहाँ बालकका अर्थ दो सालका बच्चा न समझें। बल्कि यह अर्थ करना चाहिये कि जिस वर्षमें बालकको आम तौर पर स्कूल भेजना शुरू किया जाता है अुस अुमरका बालक।

मेरे गीता पढ़ते समय बच्चे सो जायँ, तो अैसा नहीं कहा जा सकता कि यह अुनकी समझनेकी शक्तिका अभाव बताता है।

यह भले ही कह सकते हैं कि मैं अुनमें गीता पढ़नेकी दिलचस्पी पैदा नहीं कर सका, या अैसा भी हो सकता है कि बालक अुस समय थके हुअे हों। अंक-गणित सीखते समय, मजेदार बातें सुनते समय और नाटक देखते समय मैंने कअी बार बालकोंको सो जाते देखा है। और गीताजी आदिके पाठके समय बड़ी अुम्रवालोंको भी अूँघते देखा है। अिसलिअे नींद और आलसकी बात हमें अूपरके प्रश्न पर विचार करते समय छोड़ देनी चाहिये।

बच्चेके शरीरके जन्मसे पहले आत्माका अस्तित्व था; आत्मा अनादि है और अुसे बचपन, जवानी और बुढ़ापा आदि स्थितियोंसे कोअी वास्ता नहीं। यह बात जिसके लिअे दीये जैसी साफ है, अुसके मनमें अूपरके प्रश्न अुठने ही न चाहियें। देहाध्यासके कारण, हवाके रुखको देखकर और गहरे जाकर विचार करनेके आलस्यके कारण हम मान लेते हैं कि बच्चा सिर्फ खेलना ही जानता है या बहुत हुआ तो अक्षर रटना जानता है। और अिससे भी आगे बढ़ें, तो युरोप-अमेरिकाकी नदियों वगैराके अटपटे नाम याद करना जानता है और कठिनाअीसे बोले जा सकनेवाले नामोंवाले वहाँके राजाओं, डाकुओं और खूनियोंका अितिहास समझ सकता है।

मेरा अपना अनुभव अिससे अुलटा है। बच्चोंकी समझमें आने लायक भाषामें आत्मा, सत्य और प्रेम क्या है, यह अुन्हें ज़रूर बताया जा सकता है। जिन्हें दुनियाका सयानापन बिलकुल न छू पाया हो अैसे अेक नहीं, कअी बच्चोंको मुर्दा देखकर यह पूछते सुना है, 'अिस आदमीका जीव कहाँ गया?' जो बालक अैसा सवाल अपने आप कर सकता है, अुसे आत्माका ज्ञान ज़रूर कराया जा सकता है। भारतके करोड़ों बेपढ़े बच्चे जबसे समझने लगते हैं, तभी से सत्य-असत्यका और प्रेम-अप्रेमका भेद जान सकते हैं। कौनसा बच्चा अपने माता-पिताकी

आँखसे झरनेवाला प्रेमका अमृत या क्रोधका अंगार नहीं पहचान सकता? प्रश्न पूछनेवाला विद्यार्थी अपने बचपनको ही भूल गया है। अुसे मैं याद दिलाना चाहता हूँ कि अुसे पढ़ना-लिखना आया, अुससे पहले वह माता-पिताके प्रेमका अनुभव कर चुका था। यदि प्रेम, सत्य और आत्माके प्रकट होनेके लिअे भाषाकी ज़रूरत होती, तो ये कभीके मिट गये होते।

अूपरके अुद्धरणोंमें बच्चोंके सामने तत्त्वज्ञानकी शुष्क और निर्जीव चर्चा करनेकी बात नहीं; बल्कि सत्य आदि शाश्वत गुणोंका अुनके सामने प्रदर्शन करके यह साबित करनेकी बात है कि ये गुण अुनमें भी हैं। सार यह कि अक्षरज्ञान चरित्रके पीछे शोभा पाता है। चरित्रके पहले अक्षरज्ञानको रखा जाय, तो वह अुतना ही शोभा पायेगा और सफल होगा, जितनी गाड़ीके पीछे घोड़ेको रखकर अुसकी नाकसे गाड़ीको ढकेलवानेकी क्रिया शोभा देगी और सफल होगी। अैसे अनुभवसे ही डार्विनका समकालीन विज्ञान-शास्त्री वॅलेस नब्बे वर्षकी अुम्रमें कह गया है कि मैंने पढ़ी-लिखी और सुधरी हुअी मानी जानेवाली जातियोंकी मूलनीतिमें जंगली कहलानेवाले हब्शियोंकी नीतिसे बढ़कर कुछ भी नहीं देखा। यदि हम आजकलके हर तरहके बाहरी प्रलोभनोंमें न फँस गये हों, तो हम वॅलेसकी कही हुअी बातको अनुभव करेंगे और अपने विद्याभ्यासकी कल्पना और रचना अलग तरहसे करेंगे।

दस सिरवाले रावणके बारेमें जो प्रश्न है, अुसके अुत्तरमें मैं अेक अुलटा प्रश्न पूछता हूँ: बालकको क्या समझाना आसान है? जैसा दस सिरवाला प्राणी किसी समय बनाया ही नहीं जा सकता, अैसा अेक रावण हो गया है — यह चीज़ बच्चोंके गले अुतारना आसान है, या सबके दिलमें चोरकी तरह छिपे बैठे दस सिरवाले रावणका साक्षात्कार करा देना आसान है? बच्चोंको कल्पना और बुद्धिकी शक्तिसे हीन मान कर हम अुनके साथ घोर अन्याय करते हैं और अपनी अवगणना करते हैं। 'बच्चे समझते ही हैं' जिसका यह मतलब लगानेकी ज़रूरत नहीं कि समझाये बिना ही वे समझते हैं। दस सिरवाला शरीरधारी मनुष्य

हो सकता है, यह बात तो बहुत समझाने पर भी बच्चोंकी समझमें न आयेगी और दिलमें बैठे हुअे दस सिरवाले रावणकी बात वे कहते ही समझ जायेंगे ।

अब मुझे आशा है कि विद्यार्थीके लिअे यह प्रश्न पूछना बाकी नहीं रहेगा कि तुलसीदासकी रामायण और व्यासकी गीता बच्चोंके आगे पढ़नेमें मुझे क्यों शर्म नहीं आती। 'कर्म', 'त्याग' और 'स्थितप्रज्ञता' का तत्त्वज्ञान मुझे बालकोंको नहीं सिखाना है । मैं नहीं मानता, नहीं जानता कि मुझे भी यह ज्ञान मिल गया है । शायद कर्म वगैराके बारेमें तत्त्वज्ञानसे भरी हुअी पुस्तकें पढ़ने पर समझूँ भी नहीं; और कठिनाअीसे समझूँ, तो भी अूब तो ज़रूर जाअूँ । और जब मनुष्य अूब जाता है, तो अुसे मीठी-मीठी नींद भी आने लगती है । किन्तु जब करोड़ों लोगोंकी खातिर कातने या यज्ञ-कर्म करनेका विचार होता है और अुसके लिअे भोगोंको छोड़नेका विचार आता है, तब मीठी-मीठी नींद मुझे जहर-सी लगती है और मैं जाग जाता हूँ। मेरा यह अनुभवसे बना हुआ अटल विश्वास है कि गीताजी वगैराकी सरल भावसे बचपन में कराअी हुअी पढ़ाअीके अंकुर बच्चोंमें आगे चलकर ज़रूर फूट निकलते हैं ।

नवजीवन, ९-९-'२८

## ३२

# धार्मिक शिक्षा

विद्यापीठमें किये गये प्रश्नोंमें से जो प्रश्न रह गये थे, अुनमें से अेकको चर्चा मैं पिछले हफ्ते कर चुका हूँ। दूसरा प्रश्न यह है :

"विद्यापीठमें धार्मिक शिक्षाका स्थूल रूप क्या हो?"

मेरे खयालसे धर्मका अर्थ सत्य और अहिंसा या सिर्फ सत्य ही करें तो भी काफी है। अहिंसा सत्यके पेटमें ही समाअी हुअी है। अुसके बिना सत्यकी झाँकी तक नहीं हो सकती। अैसे सत्य और अहिंसाका जिस ढंगकी शिक्षासे पालन हो, अुसी ढंगकी शिक्षा धार्मिक शिक्षा हुअी। और अैसी शिक्षा देनेका सबसे बढ़िया तरीका यह है कि सभी शिक्षक सत्य और अहिंसाका पालन करनेवाले हों। विद्यार्थियोंके लिअे अुनका सत्संग ही धार्मिक शिक्षा है, फिर भले ही वे गुजराती, संस्कृत, गणित या अंग्रेजी, किसी भी विषयकी क्लासमें बैठे हों।

किन्तु अिसे शायद धार्मिक शिक्षाका सूक्ष्म रूप माना जायगा। धार्मिक शिक्षाके लिअे कोअी अलग और अुसी नामका स्थान हो सकता है। अिसलिअे हरअेक विद्यार्थीको अुसी संप्रदायका, जिसे वह स्वयं मानता हो, अैसा ज्ञान प्राप्त करनेका अुत्तेजन देना चाहिये, जो दूसरे सम्प्रदायोंका विरोधी न हो। और हर वर्गमें अेक समय अैसा रखा जाय, जब सभी सम्प्रदायोंका अुदार और निष्पक्ष साधारण ज्ञान आदर-भावके साथ दिया जाय। विद्यापीठमें सब विद्यार्थी और अध्यापक मिल कर पहले अीश्वरका ध्यान करते हैं और फिर अपने-अपने वर्गमें जाते हैं। शायद अिससे ज्यादा आज कुछ संभव नहीं है। अिस तरह अीश्वरका ध्यान करते समय थोड़ी देर हर धर्मके बारेमें कुछ जानकारी करायी जाय, तो मैं अुसे धार्मिक शिक्षाका स्थूल रूप मानूँगा। जो

दुनियाके माने हुअे धर्मोंके लिअे आदर पैदा करना चाहते हों, अुन्हें अुन धर्मोंकी साधारण जानकारी कर लेना ज़रूरी है। और अैसे धर्मग्रंथ आदरके साथ पढ़े जायँ, तो अुनसे पढ़नेवालेको सदाचारका ज्ञान और आध्यात्मिक आश्वासन मिल जाता है। अिस तरह अलग-अलग धर्मग्रन्थोंको पढ़ते-पढ़ाते समय अेक बात ध्यानमें रखनी चाहिये। वह यह कि अुन धर्मोंके प्रसिद्ध आदमियोंकी लिखी हुआी पुस्तकें पढ़नी और विचारनी चाहियें। मुझे भागवत पढ़ना हो तो मैं अीसाअी पादरीका आलोचनाकी दृष्टिसे किया हुआ अनुवाद नहीं पढ़ूँगा, बल्कि भागवतके भक्तका किया हुआ अनुवाद पढ़ूँगा। मुझे 'अनुवाद' अिसलिअे लिखना पड़ता है कि हम बहुतसे ग्रन्थ अनुवादके रूपमें ही पढ़ते हैं। अिसी तरह बाअिबल पढ़ना हो, तो हिन्दूकी लिखी हुआी टीका नहीं पढ़ूँगा, बल्कि यह पढ़ूँगा कि संस्कारवान अीसाअीने अुसके बारेमें क्या लिखा है। अिस तरह पढ़नेसे हमें सब धर्मोंका निचोड़ मिल जाता है और अुससे सम्प्रदायोंसे परली पार जो शुद्ध धर्म है, अुसकी झाँकी होती है।

कोअी यह डर न रखे कि अिस तरहकी पढ़ाअीसे अपने धर्मके प्रति अुदासीनता आ जायगी। हमारी विचार श्रेणीमें यह कल्पना की गअी है कि सभी धर्म सच्चे हैं और सभीके लिअे आदर होना चाहिये। जहाँ यह हाल हो वहाँ अपने धर्मका प्रेम तो होगा ही। दूसरे धर्मके लिअे प्रेम पैदा करना पड़ता है। जहाँ अुदारवृत्ति है, वहाँ दूसरे धर्मोंमें जो विशेषता पाअी जाय, अुसे अपने धर्ममें लानेकी पूरी आज़ादी रहती है।

धर्मकी सभ्यताके साथ तुलना की जा सकती है। जैसे हम अपनी सभ्यताकी रक्षा करते हुअे भी दूसरी सभ्यतामें जो कुछ अच्छाअी हो अुसे आदरके साथ ले लेते हैं, वैसे ही पराये धर्मके बारेमें किया जा सकता है। आज जो डर फैला हुआ है, अुसके लिअे आसपासका वायुमण्डल जिम्मेदार है। अेक दूसरेके लिअे द्वेष या वैर-भाव है,

अेक दूसरे पर भरोसा नहीं, यह डर रहता है कि दूसरे धर्मवाले हमें और हमारे आदमियोंको 'भ्रष्ट कर दें तो?' अिसीसे दूसरे धर्मके ग्रन्थोंको हम बुराअीसे भरे हुअे समझकर अुनसे दूर भागते हैं। जब धर्मों और धर्मवालोंके साथ आदरका बरताव होगा, तब यह अस्वाभाविक भय दूर होगा।

नवजीवन, ९-९-'२८

## (२)

थोड़े ही दिन पहले बातचीत करते हुअे अेक पादरी मित्रने मुझसे प्रश्न किया था कि भारत यदि सचमुच आध्यात्मिक तौर पर आगे बढ़ा हुआ देश है, तो मुझे यह क्यों मालूम होता है कि अपने ही धर्मका, श्रीमद् भगवद्गीताका भी थोड़ेसे ही विद्यार्थियोंको ज्ञान है? अिस बातके समर्थनमें अुन मित्रने, जो शिक्षक भी हैं, मुझे यह भी कहा था कि अुन्हें जो-जो विद्यार्थी मिले हैं, अुनसे अुन्होंने खास तौर पर पूछ देखा है कि, 'कहो, तुम्हें अपने धर्मका या श्रीमद् भगवद्गीताका क्या ज्ञान है?' और अुन्हें मालूम हुआ कि अुनमें से बहुत ज्यादाको अिस बारेमें कोअी भी ज्ञान नहीं है।

कुछ विद्यार्थियोंको अपने धर्मका कुछ भी ज्ञान नहीं, अिसीसे हिन्दुस्तान आध्यात्मिक दृष्टिसे आगे बढ़ा हुआ देश नहीं, अिस अनुमानके बारेमें अभी मैं अितना ही कहूँगा: अैसा नहीं कहा जा सकता कि विद्यार्थियोंको अपने धर्मग्रंथोंका ज्ञान नहीं, अिसलिअे लोगोंमें भी धार्मिक जीवनका या आध्यात्मिकताका नाम-निशान नहीं है। फिर भी अिसमें शक नहीं कि सरकारी स्कूलोंसे निकलनेवाले विद्यार्थियोंके बहुत बड़े हिस्सेको किसी भी तरहकी धार्मिक शिक्षा नहीं मिलती। अूपरकी टीका अुस पादरी मित्रने मैसूरके विद्यार्थियोंके बारेमें बोलते हुअे की थी और यह देखकर किसी हद तक मुझे दुःख हुआ था कि मैसूरके विद्यार्थियोंको भी राज्यके स्कूलोंमें कोअी धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाती।

मैं जानता हूँ कि अेक दल यह माननेवालोंका है कि सार्वजनिक स्कूलोंमें संसारी शिक्षा ही देनी चाहिये। मैं यह भी जानता हूँ कि भारत जैसे देशमें, जहाँ दुनियाके बहुतसे धर्म प्रचलित हैं और जहाँ अेक ही धर्ममें भी कअी सम्प्रदाय हैं, वहाँ धार्मिक शिक्षाका प्रबन्ध करना मुश्किल है। किन्तु यदि हिन्दुस्तानका आध्यात्मिक दिवाला नहीं पीटना हो, तो अुसे अपने नौजवानोंको धार्मिक शिक्षा देनेका काम और कुछ नहीं तो भी संसारी शिक्षाके बराबर ज़रूरी तो समझना ही चाहिये। यह सच है कि धर्मग्रन्थोंका ज्ञान ही धर्मका ज्ञान नहीं है, किन्तु हम यदि धर्मका ज्ञान न दे सकें तो अुसीसे हमें संतोष मानना पड़ेगा।

किन्तु स्कूलोंमें अैसी शिक्षा दी जाती हो या न दी जाती हो, पकी हुअी अुम्रके विद्यार्थियोंको दूसरी बातोंकी तरह धार्मिक बातोंमें भी अपने पैरों पर खड़े होनेकी कला सीखनी चाहिये। जैसे वे वाद-विवाद सभायें और कताअी-मंडल स्वतंत्र रूपसे चलाते हैं, वैसे अुन्हें अिस विषयके अध्ययन-मंडल भी खोलने चाहियें।

शिमोगाके कॉलेजियट हाअिस्कूलके विद्यार्थियोंके सामने बोलते हुअे अुसी सभामें की गअी पूछताछसे मुझे मालूम हुआ कि अुनमें सौ या ज्यादा हिन्दू विद्यार्थियोंमें से श्रीमद् भगवद्गीता पढ़े हुअे विद्यार्थियोंकी संख्या मुश्किलसे आठ तक होगी। जिन थोड़े विद्यार्थियोंने भगवद्गीता पढ़ी थी, अुनमें से अुसे समझनेवालोंको हाथ अुठानेका कहने पर अेक भी हाथ नहीं अुठा। यह भी मालूम हुआ कि सभामें जो पाँच या छः मुसलमान विद्यार्थी थे, अुन सबने कुरान पढ़ा है, किन्तु यह कहने पर कि जिसने समझा हो वह हाथ अुठाये, सिर्फ अेक ही हाथ अुठा था। मेरी रायमें गीता समझनेमें बड़ी सरल पुस्तक है। वह कुछ बुनियादी पहेलियाँ पेश करती है, जिनका हल करना बेशक मुश्किल है। किन्तु मेरी रायमें गीताका सामान्य रुख दीयेकी तरह स्पष्ट है। सभी हिन्दू सम्प्रदायोंने गीताको प्रमाण-ग्रंथ माना है। किसी भी तरहके स्थापित मतवादसे यह मुक्त है। यह कारणोंके साथ समझाये हुअे पूरे

नीतिशास्त्रकी ज़रूरत पूरी करती है। बुद्धि और हृदय दोनोंको वह सन्तोष देती है। अुसमें तत्त्वज्ञान और भक्ति दोनों भरे हैं। अुसका प्रभाव सार्वत्रिक है। और भाषा अितनी आसान है कि क्या कहा जाय। फिर भी मैं मानता हूँ कि हर देशी भाषामें अिसका प्रामाणिक अनुवाद होना चाहिये। वह परिभाषाओंसे मुक्त और अितना सरल हो कि मामूली आदमी अुसके जरिये गीताका सबक सीख सके। अिससे मैं यह नहीं कहना चाहता कि वह अैसा हो जो मूलकी जगह ले ले, क्योंकि मेरी यह राय है कि हर हिन्दू लड़के और लड़कीको संस्कृत जानना ही चाहिये। किन्तु भविष्यमें लंबे समय तक लाखों हिन्दू संस्कृत बिलकुल न जाननेवाले होंगे। अिसीलिअे अुन्हें श्रीमद् भगवद्-गीताके अुपदेशामृतसे वंचित रखना तो आत्मघातके बराबर हो जायगा।

यंग अिंडिया, २५-८-'२७

## ३३
## राष्ट्रीय छात्रालयोंमें पंक्तिभेद ?

काका साहब कालेलकरकी मदनी हुअी डाकमें कअी तरहके प्रश्न आते हैं। अुनमें अेक पत्र पंक्तिभेदके बारेमें था। अुसका जो अुत्तर अुन्होंने दिया है, अुसकी नकल अुन्होंने मेरे पास भेज दी है। अुनके विचार राष्ट्रीय छात्रालयोंको रास्ता दिखानेवाले हैं। अिसलिअे शब्दशः नीचे देता हूँ :

"यह पूछकर आपने ठीक किया कि विद्यापीठके छात्रालयमें पंक्ति-भेद रखा जाता है या नहीं। आप जानते हैं कि विद्यापीठके ध्येयमें नीचेकी क़लम है :

'विद्यापीठके मातहत संस्थाओंमें सभी चालू धर्मोंके लिअे पूरा आदर होगा और विद्यार्थियोंकी आत्माके विकासके लिअे धर्मका ज्ञान अहिंसा और सत्यको ध्यानमें रखकर दिया जायगा।'

"आप यह भी जानते हैं कि विद्यापीठ अछूतपनको कलंक और पाप मानता है। विद्यापीठमें स्वराज्यकी असहयोगी शिक्षा पानेकी अिच्छावाले, खादीमें विश्वास रखनेवाले किसी भी धर्मके विद्यार्थी आ सकते हैं। आम लोगोंमें जो आचार धर्म आज खुले तौर पर पाला जाता है, अुसका विरोध करना विद्यापीठका ध्येय नहीं। अिसलिअे छात्रालयमें ब्राह्मण रसोअियेके हाथसे ही रसोअी होती है। शौचाचारमें रसोअी अेक खास तरीकेसे ही तैयार करनेका जो आग्रह रखा जाता है, वह अिस तरह पूरा किया जाता है। किन्तु पंक्तिभेद कोअी शौचाचारका प्रश्न नहीं, बल्कि सामाजिक प्रतिष्ठाका प्रश्न है, अूँच-नीचके शास्त्रका प्रश्न है। मैं अिस बातका ज़रूर विचार करूँगा कि खाते समय मुझे किस तरहका भोजन मिलता है और अुसके बनाने में किस तरहकी सफ़ाअी रखी जाती है। किन्तु मैं अिस बातका ज्यादा विचार नहीं करूँगा कि अिसी तरहका भोजन मेरे पास बैठकर खानेवालेके धार्मिक विचार कैसे हैं। या अुसके आचार कैसे हैं। क्योंकि मैं प्रतिष्ठाके घमंडको नहीं मानता। प्रतिष्ठाके घमंडमें धर्मका तत्त्व नहीं है। अमेरिकामें गोरेके साथ कोअी हब्शी बैठे, तो गोरेको अैसा लगेगा कि अुसका दरजा घट गया है। गिरे हुअे राष्ट्रके हम लोग आपसमें अूँच-नीचका घमंड रखकर अैसा ही भेद पैदा करते हैं। यह यदि करुणा जनक दृश्य न होता, तो हास्यरसका अजीब नमूना ही माना जाता।

"पंक्तिभेदके बारेमें छात्रालयमें कोअी खास नियम नहीं। विद्यार्थी अपने आप सब अेक साथ बैठते हैं। अध्यापक तो कोअी पंक्तिभेदमें विश्वास रखते ही नहीं। अिसलिअे विद्यार्थी भी अपने स्वभावसे अुसी तरह करते हैं। दो-तीन विद्यार्थी अपने माता-पिताकी हठके कारण रसोड़ेमें जहाँ रसोअिये खाते हैं वहीं बैठकर खाते हैं। किन्तु अिस रिवाजको विद्यापीठकी तरफसे अुत्तेजन नहीं मिल सकता। भोजनकी सफाअी पर आज जितना ध्यान दिया जाता है, अुससे भी ज्यादा दिया

छात्रोंमें कुटुम्बकी भावना फैलानी चाहिये । गृहपति पिताकी जगह होना चाहिये । अिसलिअे अुसे छात्रोंके जीवनमें ओत-प्रोत हो जाना चाहिये और अपना खाना-पीना छात्रोंके साथ ही रखना चाहिये ।

आदर्श छात्रालय स्कूलसे बढ़कर होना चाहिये । सच्चा स्कूल तो वही होता है । स्कूल या कॉलेजमें तो विद्यार्थियोंको अक्षरज्ञान ही मिलता है । छात्रालयोंमें विद्यार्थियोंको सब तरहका ज्ञान मिलता है । आदर्श छात्रालयका सम्बन्ध अलग स्कूलसे नहीं होता; शिक्षण अेक ही तंत्र या प्रबन्धके मातहत होता है और जहाँ तक हो सके सब विद्यार्थी और शिक्षक साथ ही रहते हैं । अिस तरह जो हालत आज स्वाभाविक कुटुम्बोंमें नहीं होती, वह हालत छात्रालयोंके जरिये नये और बड़े कुटुम्ब बना कर पैदा करनी पड़ेगी । अिस दृष्टिसे छात्रालय गुरुकुलका रूप लेंगे ।

आजकल छात्रालयोंमें बहुत-सी बुराअियाँ पाअी जाती हैं । अुनका कारण मैं यह मानता हूँ कि अुनमें कुटुम्बकी भावना पैदा नहीं की जाती और छात्रालय चलानेवाले लोग विद्यार्थियोंके जीवनमें पूरी तरह नहीं घुसते ।

छात्रालय शहरके बाहर होने चाहियें और जिन सुधारोंके करनेकी जरूरत शहरों या गाँवोंमें मानी जाती है, वे सब सुधार अुनमें होने चाहियें । यानी शौचादिके नियम वहाँ पाले जाने चाहियें । किसी भी तरहका मकान भाड़े लेकर अुसमें आदर्श छात्रालय नहीं चलाया जा सकता । आदर्श छात्रालयमें नहाने और पाखानेकी सहूलियतें अच्छी होनी चाहियें और हवा व रोशनीकी पूरी सुविधा रहनी चाहिये । अुसके साथ बाड़ी होनी चाहिये ।

आदर्श छात्रालय सब तरहसे स्वदेशी होगा । छात्रालयकी अिमारतमें और सजावटमें देहाती जीवनकी छाया जरूर होनी चाहिये । अुसकी रचना भारतकी गरीबीके लिहाजसे होगी । अिस तरह पश्चिमके ठण्डे और धनी प्रदेशोंके छात्रालय हमारे लिअे नमूना नहीं बन सकते ।

आदर्श छात्रालयोंमें अैसा कुछ न होना चाहिये, जिससे छात्र आलसी, नाजुक और आवारा बन जायें । अिसलिअे वहाँ सादु

जीवनको शोभा देनेवाली सादी खुराक होगी, वहाँ प्रार्थना होगी, वहाँ सोने-बैठनेके नियम होंगे ।

आदर्श छात्रालय ब्रह्मचर्याश्रम होगा । विद्यार्थी नये ज़मानेका शब्द है । विद्यार्थियोंके लिअे सच्चा शब्द ब्रह्मचारी है । विद्याभ्यास के समयमें ब्रह्मचर्य ज़रूरी है । आजकी छिन्न-भिन्न स्थितिमें मैं यह चाहूँगा कि यदि ब्याहे हुअे विद्यार्थी छात्रालयमें भरती किये जायँ, तो अुन्हें भी विद्याभ्यास पूरा होने तक ब्रह्मचर्य पालना चाहिये, यानी विद्याभ्यासके समयमें अुन्हें अपनी स्त्रीसे बिलकुल अलग ही रहना चाहिये ।

पाठक याद रखें कि मैंने आदर्श छात्रालयका वर्णन किया है । यह समझमें आने लायक बात है कि सब छात्रालय अुस हद तक न पहुँच सकें । किन्तु अूपरका आदर्श ठीक हो, तो सब छात्रालयोंको अुस मापके अनुसार चलना चाहिये ।

नवजीवन, ३-३-'२९

## २

[छात्रालयोंके सम्मेलनमें आदर्श छात्रालय कैसा हो, अिस विषय पर गृहपतियोंकी प्रार्थना पर गांधीजीका दिया हुआ भाषण ।]

छात्रालयकी मेरी कल्पना यह है कि छात्रालय अेक कुटुम्बकी तरह हो, अुसमें रहनेवाले गृहपति और छात्र कुटुम्बियोंकी तरह रहते हों, गृहपति छात्रोंके माता-पिताकी जगह ले । गृहपतिके साथ अुसकी पत्नी हो, तो दोनों पति-पत्नी मिलकर माता-पिताकी तरह काम करें । आज तो हमारे यहाँ दयाजनक स्थिति हो रही है । गृहपति ब्रह्मचर्य न पालता हो, तो अुसकी पत्नी छात्रालयमें माँका स्थान हरगिज नहीं ले सकती । अुसे शायद यही पसन्द न आये कि अुसका पति छात्रालयमें काम करे । और पसन्द करे तो अिसीलिअे कि तनखाहके रुपये मिलते हैं । वह छात्रालयमें से थोड़ा घी चुरा लाये, तो भी पत्नी खुश होगी कि चलो, मेरे बच्चोंको ज्यादा घी खानेको मिलेगा । मेरे कहनेका मतलब यह

नहीं कि सब गृहपति अैसे ही होते हैं, किन्तु आज हमारा सारा कामकाज अिसी तरहकी तितर-बितर हालतमें है ।

मैंने बताये अुस तरहके छात्रालय आज गुजरातमें या भारतमें बहुत नहीं हैं। हों तो मुझे अनुभव नहीं। गुजरातके बाहर तो हिन्दुस्तानमें ये संस्थाअें ही बहुत कम हैं। छात्रालयकी संस्था गुजरातकी खास देन है। अिसके कअी कारण हैं। गुजरात व्यापारियोंका देश है। जो व्यापारसे धन कमाते हैं, अुन्हें शौक होता है कि अपनी जातिके बच्चोंके लिअे छात्रालय खोलें। 'छात्रालय' जैसा बड़ा नाम तो बादमें पड़ा। अुन बेचारोंने तो 'बोर्डिंग' ही कहा था; और लड़कोंके खाने-पीनेका प्रबन्ध कर देनेके सिवाय अुनका और कोअी खयाल न था। बादमें जब अिन बोर्डिंगोंमें संस्कारवान गृहपति आये, तब अुन्होंने अिनमें भावना डालनी शुरू की।

मैं स्वयं विद्यालयसे छात्रालयको ज्यादा महत्त्व देता हूँ। बहुतसी विद्या जो स्कूलमें नहीं मिल सकती, छात्रालयमें मिल सकती है। स्कूलमें भले ही बुद्धिकी विद्या थोड़ी मिलती हो, किन्तु स्कूलोंमें जो कुछ मिलता है, अुसे भी विद्यार्थी पचा नहीं सकते। अितना ही होता है कि अिच्छा न रहते भी थोड़ी बहुत बात दिमागमें रह जाती है। यहाँ मैं विद्यालयका खराब पहलू ही रख रहा हूँ। छात्रालयोंमें लड़कों और लड़कियोंको मनका जितना बल दिया जा सकता है, अुतना अकेला विद्यालय नहीं दे सकता। मेरी आखिरी कल्पना तो यह है कि छात्रालय ही विद्यालय हो।

सेठोंने जो छात्रालय खोले, वे दूसरी ही तरहके थे। वे स्वयं छात्रालय खोलकर दूर रहे। गृहपति भी अितनेसे अपना काम पूरा हुआ समझ लेता कि लड़के खा-पी कर स्कूल-कॉलेज चले जायँ। सेठों और गृहपतियों दोनोंने दिलचस्पी ली होती, तो छात्रालय आज जैसे न रहते। अब हमें परिस्थितिको देखकर यह सोच लेना है कि अिन्हें किस तरह सुधारा जा सकता है। यदि हम अिरादा कर लें तो अिन संस्थाओंकी शक्ल

बहुत कुछ बदल सकते हैं। जो बात स्कूलोंमें नहीं हो सकती, वह छात्रालयोंमें की जा सकती है। गृहपति सिर्फ हिसाब रखनेवाला ही न रहे, बल्कि अिसकी भी जाँच करे कि विद्यार्थी स्कूलमें जाकर क्या सीखता है और विद्यार्थीके लिअे पुत्र या शिष्यका भाव रखकर अुसके बारेमें चिन्ता करता रहे। आज तो बहुत जगह अैसा व्यवहार है कि गृहपतिको यह भी पता नहीं रहता कि विद्यार्थी क्या खाते-पीते हैं।

छात्रालयोंमें जो अेक गंभीर अराजकता फैली हुअी है, अुसकी तरफ मैं खास तौर पर ध्यान खींचना चाहता हूँ। अिस चीज़की हमेशा अुपेक्षा की जाती है। यह समझकर कि हमारे छात्रालयकी बदनामी होगी, गृहपति लोग अुसे जाहिर करते शरमाते हैं और छिपाते हैं। वे सोचते हैं कि हमारे विद्यार्थी जो बुरा काम करते हैं, वह खुल जायगा और माता-पिताको भी अिसकी खबर नहीं करते। किन्तु अिस तरह छिपाकर रखनेमें सफलता तो मिलती नहीं। गृहपति अपने मनमें यह समझते होंगे कि कोअी नहीं जानता, किन्तु बदबू तो देखते-देखते फैल जाती है। अनुभवी गृहपति समझ गये होंगे कि मैं क्या कहना चाहता हूँ। गृहपतियोंको मैं अिस बारेमें चेतावनी देता हूँ। वे सावधान रहें, अपना धर्म अच्छी तरह समझें। जो छात्रालयको शुद्ध न रख सकें, वे अिस्तीफा देकर अिस कामसे अलग हो जायँ। यदि छात्रालयमें रहकर लड़के निकम्मे बनें, अुनमें दृढ़ता न रहे, अुनके विचार तितर-बितर हो जायँ, बुद्धिका स्रोत सूख जाय, तो यह सब गृहपतिकी अयोग्यता सूचित करता है।

मैं जो कहता हूँ अुसकी बहुतसी मिसालें दे सकता हूँ। मेरे पास विद्यार्थियोंके ढेरों पत्र आते हैं। बहुतसे गुमनाम होते हैं। अुन्हें मैं रद्दीकी टोकरीमें डाल देता हूँ, किन्तु अुनमें से सार निकाल लेता हूँ। बहुतसे भोले-भाले विद्यार्थी अपना नाम-पता देकर मुझसे अुपाय पूछते हैं। अुन्हें जब नअी-नअी आदत पड़ती है, तब गृहपतिकी तरफसे आश्वासन नहीं मिलता, अुलटे कभी-कभी अुत्तेजन मिलता है। फिर

जब अुनकी आँखें खुलती हैं, तब अुनमें दृढ़ता नहीं होती, मन अुनके काबूमें नहीं होता, मेरे जैसा सलाह दे तो अुस पर चलनेकी शक्ति नहीं रहती ।

जो गृहपतिका काम कर सकते हैं, वे बड़ी कीमत माँगते हैं। अुन्हें विधवा बहनोंकी परवरिश करनी होती है और लड़के-लड़कियोंके शादी-ब्याहमें खर्च करना होता है । अिस तरहके गृहपति योग्य हों, तो भी हमें अुन्हें छोड़ना पड़ेगा । दूसरे गृहपति अैसे हैं, जो यह मानते हैं कि मेरा यही काम है । अुन्हें दूसरा काम पसन्द ही नहीं आता । अैसे कुछ लोग निकले हैं, जो गुजारे जितना लेकर काम करनेको तैयार हैं ।

मैं जो कहता हूँ अुससे मालूम होगा कि गृहपति लगभग संपूर्ण पुरुष होना चाहिये । जो अैसा आदमी हो कि विद्यार्थियों पर असर डाल सके, अुनके दिलमें घुस सके, वही गृहपति बन सकता है । अैसा गृहपति न हो, तो लड़कोंको अिकट्ठा करना भयंकर है ।

यह तो गृहपतियोंकी बात हुअी । अब छात्रोंसे दो शब्द । छात्र अपना होश भूलकर गृहपतिको नौकर मान लें, यह समझने लगें कि अुनका सब काम नौकर ही करेंगे और वे स्वयं हाथसे कुछ भी नहीं करेंगे, तो यह अुनकी भूल होगी । छात्रोंको जानना चाहिये कि छात्रालय अुनके अैश-आरामके लिअे नहीं है । वे यह न मान बैठें कि छात्रालयको वे रुपया देते हैं । वे जो कुछ देते हैं, अुससे खर्च पूरा नहीं पड़ता। छात्रालय खोलनेवाले सेठ लोग अज्ञानसे मान लेते हैं कि विद्यार्थी लाड़-प्यारसे रखनेके कारण अच्छे बनते हैं और अुन्हें आराम देनेसे धर्म होता है । अिस समझके कारण वे विद्यार्थियोंको सहूलियतें देते हैं, किन्तु अिससे अकसर धर्मके बजाय पाप होता है । अिससे विद्यार्थी अुलटे बिगड़ते हैं, परावलम्बी बनते हैं । जो विद्यार्थी बुद्धिसे काम लेता है, वह यह हिसाब लगा लेगा कि छात्रालयके जिस मकानमें वह रहता है, अुसका किराया कितना है, नौकर-चाकरों और गृहपतिकी

तनखाह कितनी है? यह सब छात्रोंसे नहीं लिया जाता। वे तो सिर्फ खानेका खर्च देते हैं। बहुतसे छात्रालयोंमें तो खाना, कपड़ा, पुस्तकें वगैरा भी मुफ्त दिये जाते हैं। दान करनेवाले सेठ लोग यह लिखा लेते हों कि पढ़-लिखकर ये लड़के देश-सेवा करेंगे तो भी ठीक है, परन्तु वे अितने अुदार होते हैं कि अैसा कुछ नहीं करते। परन्तु छात्रोंको समझ रखना चाहिये कि वे जो खाते हैं अुसका बदला नहीं देंगे, तो कहा जायगा कि चोरीका धन खाते हैं। बचपनमें मैंने अखा भगतकी कविता पढ़ी थी :

'काचो पारो खावो अन्न, तेवुं छे चोरीनुं धन।'*

चोरीका माल खानेसे छात्र शूरवीर नहीं बनते, दीन बनते हैं। तब छात्र यह निश्चय करें कि हम भीखका अन्न नहीं खायेंगे। वे छात्रालयकी सुविधाओंका फायदा भले ही अुठायें, किन्तु यहाँसे जाकर फौरन गृहपतिको नोटिस दे दें कि सब नौकरोंको विदा कर दीजिये। या नौकरों पर दया आये तो अुनकी नौकरी रहने दें, किन्तु सारा काम तो स्वयं ही करें। पाखाने साफ करने तक सारे काम हाथों ही कर लेनेका निश्चय करें। तभी वे गृहस्थ बन सकेंगे, तभी देशकी सेवा कर सकेंगे। आज तो हमारे लोग अीमानदारीके धन्धेसे अपना, स्त्रीका या माँका गुजारा करनेकी भी ताकत नहीं रखते।

किसीको कहीं नौकरी मिलने पर यह घमण्ड हो जाय कि मैं अीमानदारीका धन्धा करता हूँ, तो अुसे यह विचार करना पड़ेगा कि मिलमें गुमास्तेका काम करने पर मुझे ७५) रुपये मिलते हैं और अुस मजदूरको बड़े कुनबेवाला होने पर भी १२) रुपये ही मिलते हैं, अैसा क्यों? वह हिसाब लगायेगा तो फौरन समझ जायगा कि वह बड़ी तनखाहके लायक नहीं है, यह रोजी अीमानदारीकी नहीं है और शहरोंमें हम सब चोरीका ही अन्न खाते हैं। हम तो डाकुओंके अेक बड़े जत्थेके कमीशन

* चोरीका धन कच्चे पारेको खानेके समान है; जैसे कच्चा पारा शरीरमें से फूट निकलता है, वैसे ही चोरीका धन समझिये।

अेजण्ट हैं । लोगोंसे हम जो कुछ लेते हैं, अुसका ९५ फीसदी भाग विलायत भेज देते हैं । अैसे धन्धेसे कमाना भी न कमानेके बराबर है।

मैने आज जो कुछ कहा है, अुस पर विश्वास हो तो आज ही से अमल करने लग जाना ।

छात्रालय ऋषिकुल होना चाहिये । वहाँ सब ब्रह्मचारी ही रहने चाहियें । जो ब्याहे हुअे हों, वे भी वानप्रस्थ धर्मका पालन करें । यदि आप अैसी आदर्श स्थितिमें दस-पाँच साल रहें, तो आप अितने समर्थ बन सकते हैं कि भारतके लिअे जो कुछ करना चाहें, वही कर सकते हैं। आज स्वराज्यका यज्ञ छिड़ गया है । किन्तु भिक्षा पर निर्भर करनेवाले अिसमें क्या भाग लें ? मेरे जैसा शायद कोअी निकल पड़े, किन्तु मेरे पास तो जुवार बाजरेकी रोटियाँ हैं और तुम्हें साँझ पड़ते ही पकौड़ियाँ चाहियें। कोअी यह घमंड रखता हो कि समय आने पर यह सब कर लेंगे, आजसे ही चिन्ता करनेकी क्या ज़रूरत है ? तो अैसा कहनेवाले मैंने बहुत देखे हैं। परन्तु समय आने पर वे कुछ नहीं कर पाते । जेलमें जानेवाले वहाँ कैसा बरताव करते हैं, अिसका हमें अनुभव हो चुका है । सन् २०-२१ में, जो जेल गये, अुन्होंने खाने-पीनेके मामलेमें कितना झगड़ा किया और कैसे-कैसे काम किये, यह सबको मालूम है । अुससे हमें शर्माना पड़ा। यह न मानना कि त्याग अेकदम आ जाता है। वह बहुत प्रयत्न करनेसे ही आता है । जिस आदमीमें त्यागकी अिच्छा है, परन्तु जिसने छोटे छोटे रसोंको जीतनेका प्रयत्न नहीं किया, अुसे वे अैन मौके पर दगा देते हैं । यह बात अनुभवसे सिद्ध हो चुकी है । यदि तुम सब छात्र समझनेका प्रयत्न करो, तो तुम्हें मालूम होगा कि मैंने जो बातें कही हैं, वे सादी और आसानीसे अमलमें लाने लायक हैं ।

*नवजीवन, २३-२-'३०*

# आदर्श बालमंदिर

बालकोंकी शिक्षाका विषय होना तो चाहिये आसान से आसान, परन्तु वह कठिनसे कठिन बन गया मालूम होता है, या बना दिया गया है। अनुभव यह सिखाता है कि बच्चे, हम चाहें या न चाहें, कुछ न कुछ अच्छी या बुरी शिक्षा पा रहे हैं। यह वाक्य बहुतसे पाठकोंको विचित्र लगेगा। परन्तु हम यह विचार लें कि बालक किसे कहें, शिक्षाका अर्थ क्या है और बालकोंकी शिक्षा कौन दे सकता है, तो शायद अूपरके वाक्यमें कोअी ताज्जुबकी बात न लगे। बालकसे मतलब है दस बरसके भीतरके लड़के-लड़कियाँ या अिसी अुम्रके दीखनेवाले बच्चे।

शिक्षाका अर्थ अक्षरज्ञान ही नहीं है। अक्षरज्ञान शिक्षाका साधन मात्र है। शिक्षाका अर्थ यह है कि बच्चा मनसे लगा कर सारी अिन्द्रियोंसे अच्छा काम लेना जाने। यानी बच्चा अपने हाथ, पैर आदि कर्मेन्द्रियोंका और नाक, कान आदि ज्ञानेन्द्रियोंका सच्चा अुपयोग करना जाने। जिस बच्चेको यह ज्ञान मिलता है कि हाथसे चोरी नहीं करनी चाहिये, मक्खियाँ नहीं मारनी चाहियें, अपने साथी या छोटे भाअी-बहनको नहीं पीटना चाहिये, अुस बच्चेकी शिक्षा शुरू हो चुकी समझिये। जो बालक अपना शरीर, अपने दाँत, जीभ, नाक, कान, आँख, सिर, नाखून, आदि साफ रखनेकी ज़रूरत समझता है और रखता है, अुसकी शिक्षा आरंभ हो गअी कही जा सकती है। जो बच्चा खाते-पीते शरारत नहीं करता, अकेले या दूसरोंके साथ बैठकर खाने-पीनेकी क्रिया कायदेसे करता है, ढंगसे बैठ सकता है और शुद्ध-अशुद्ध भोजनका भेद समझकर शुद्धको पसन्द करता है, ठूँस-ठूँसकर नहीं खाता, जो देखता है वही नहीं माँगता और न मिलने पर भी शान्त रहता है,

अुस बच्चेने शिक्षामें अच्छी अुन्नति की है । जिस बच्चेका अुच्चारण शुद्ध है, जो अपने आसपासके प्रदेशका अितिहास-भूगोल — अिन शब्दोंका नाम जाने बिना — भी बता सकता है, जिसे अिस बातका पता लग गया है कि देश क्या है, अुसने भी शिक्षाके रास्तेमें खासी मंजिल तय कर ली है । जो बच्चा सच-झूठका, सार-असारका भेद जान सकता है और जो अच्छे व सच्चेको पसन्द करता है और शरारत व झूठके पास नहीं फटकता, अुस बच्चेने शिक्षामें बहुत अच्छी प्रगति की है । अिस बातको अब लंबानेकी ज़रूरत नहीं रहती । चित्रमें दूसरे रंग पाठक अपने आप भर सकते हैं । सिर्फ अेक बात साफ कर देनी चाहिये । अिसमें कहीं अक्षरज्ञानकी या लिपिके ज्ञानकी ज़रूरत नहीं मालूम होती । बच्चोंको लिपिकी जानकारीमें लगाना अुनके मन पर और दूसरी अिन्द्रियों पर दबाव डालनेके बराबर है, अुनकी आँखों और अुनके हाथोंका दुरुपयोग करने जैसा है । सच्ची शिक्षा पाया हुआ बच्चा ठीक समय पर अपने आप लिखना-पढ़ना सीख जाता है और आनन्दके साथ सीख लेता है । आज तो बच्चोंके लिअे यह ज्ञान बोझरूप बन जाता है । अुनका आगे बढ़नेका अच्छेसे अच्छा समय व्यर्थ जाता है और अन्तमें वे सुन्दर अक्षर लिखने और अच्छे ढंगसे पढ़नेके बजाय मक्खीकी टाँगों जैसे अक्षर लिखते हैं । वे बहुत कुछ न पढ़ने लायक पढ़ते हैं और जो पढ़ते हैं, वह भी अक्सर गलत ढंगसे पढ़ते हैं । अिसे शिक्षा कहना शिक्षा पर अत्याचार करनेके बराबर है । बच्चा लिखना-पढ़ना सीखे, अुससे पहले अुसे प्राथमिक शिक्षा मिल जानी चाहिये । अैसा करनेसे यह गरीब देश बहुतसी पाठमालाओं और बालपोथियोंके खर्चसे और बहुतसी बुराअियोंसे बच जायगा । बालपोथी ज़रूरी ही हो, तो वह शिक्षकोंके लिअे ही हो, मेरी व्याख्याके बच्चोंके लिअे कभी नहीं । यदि हम चालू प्रवाहमें न बह रहे हों, तो यह बात हमें दीये जैसी स्पष्ट लगनी चाहिये ।

अूपर बतायी हुअी शिक्षा बच्चे घरमें ही पा सकते हैं और वह भी माँके ही जरिये । यों तो बच्चे माँसे जैसी-तैसी शिक्षा पाते ही

हैं। यदि आज हमारे घर अस्त-व्यस्त हो गये हैं और माता-पिता बालकोंके प्रति अपना धर्म भूल गये हैं, तो यथासंभव बच्चोंको अैसी परिस्थितिमें शिक्षा दिलानी चाहिये, जहाँ अुन्हें कुटुम्ब जैसा वातावरण मिले। यह धर्म माता ही पूरा कर सकती है, अिसलिअे बच्चोंकी शिक्षाका काम स्त्रीके ही हाथमें होना चाहिये। जो प्रेम और धीरज स्त्री दिखा सकती है, वह आम तौर पर पुरुष आज तक नहीं दिखा सका। यह सब सच हो तो बच्चोंकी शिक्षाका प्रश्न हल करते समय स्त्री-शिक्षाका प्रश्न अपने आप हमारे सामने खड़ा होता है। और जब तक सच्ची बाल-शिक्षा देने लायक माताअें तैयार नहीं होतीं, तब तक मुझे यह कहनेमें संकोच नहीं कि बच्चे सैकड़ों स्कूलोंमें जाते हुअे भी अशिक्षित ही रहते हैं।

अब मैं बच्चोंकी शिक्षाकी कुछ रूपरेखा बता दूँ। मान लीजिये किसी माता रूपी स्त्रीके हाथमें पाँच बच्चे आ गये। अिन बच्चोंको न बोलनेका शअूर है न चलनेका। नाकसे जो मल बहता है, अुसे वे हाथसे पोंछकर पैर या कपड़े पर लगा लेते हैं; आँखोंमें गीड़ भरा है; कानों और नाखूनोंमें मैल भरा है; बैठनेको कहने पर पैर फैलाकर बैठते हैं; बोलते हैं तो फूलझड़ी बरसती है; 'शुं' के बदले 'हुं' कहते हैं* और 'मैं' के बजाय 'हम' बोलते हैं। पूर्व पश्चिम और अुत्तर दक्षिणका अुन्हें भान नहीं। शरीर पर मैले कपड़े पहने हैं। गुप्त अिन्द्रिय खुली है और अुसे वे नोचा करते हैं, और जितना मना किया जाय अुतना ज्यादा नोचते हैं। जेब हो तो अुसमें कुछ न कुछ मैली मिठाअी भरी हुअी है और अुसे बीच-बीचमें निकालकर खाते रहते हैं। अुसमेंसे कुछ ज़मीन पर बिखेरते जाते हैं और चिकने हाथोंको ज्यादा चिकना करते ही जाते हैं। टोपी पहने हैं तो अुसके किनारे मैलसे काले हो गये हैं और अुसमें से खूब दुर्गन्ध आती है। अिन पाँच

* गुजरातीमें 'क्या' का अर्थ बतानेवाला 'शुं' शब्द है, किन्तु अुसका शुद्ध अुच्चारण न कर सकनेवाले अुसकी जगह 'हुं' बोलते हैं।

बच्चोंको सँभालने वाली स्त्रीके मनमें माताकी भावना पैदा हो, तो ही वह अुन्हें शिक्षा दे सकती है। पहला पाठ अुन्हें ढंग पर लानेका ही होगा। माँ अुन्हें प्रेमसे नहलायेगी, कुछ दिन तक तो अुनके साथ विनोद ही करेगी; और कभी तरहसे जैसे आज तक माताओंने किया है, जैसे कौशल्याने बालक रामचन्द्रके साथ किया, वैसे ही माँ बच्चोंको प्रेमपाशमें बाँधेगी और जिस तरह नचाना चाहेगी, अुसी तरह अुन्हें नाचना सिखा देगी। जब तक माँको यह चीज नहीं मिल जायगी, तब तक बिछुड़े हुअे बछड़ेके पीछे गाय व्याकुल होकर जैसे अिधर-अुधर दौड़ा करती है, वैसे ही यह माँ अुन पाँच बच्चोंके लिअे बेचैन रहेगी। जब तक ये बच्चे अपने आप साफ नहीं रहने लगेंगे, अुनके दाँत, कान, हाथ, पैर जैसे चाहिये वैसे नहीं होंगे, जब तक अुनके बदबूदार कपड़े बदले नहीं जाते और जब तक अुनके अुच्चारण शुद्ध नहीं होते — वे 'हुं' के बदले 'शुं' नहीं बोलने लगते — तब तक वह चैनसे नहीं बैठेगी। अितना काबू पानेके बाद माँ बालकोंको पहला पाठ रामनामका सिखायेगी। अिस रामको कोअी राम कहे या रहीम कहे, बात तो अेक ही है। धर्मके बाद अर्थका स्थान तो है ही। अिसलिअे अब माँ अंकगणित शुरू करेगी। बच्चोंको पहाड़े याद करायेगी और जोड़-बाकी जबानी सिखायेगी। बच्चे जहाँ रहते होंगे, अुस जगहका तो अुन्हें पता होना ही चाहिये। अिसलिअे वह अुन्हें आसपासके नदी-नाले, पहाड़, मकान, वगैरा बतायेगी और अैसा करते-करते दिशाका ज्ञान तो अुन्हें करा ही देगी। बच्चोंके लिअे वह अपने विषयका ज्ञान बढ़ायेगी। अिस कल्पनामें अितिहास और भूगोल कभी अलग विषय नहीं होते। दोनोंका ज्ञान कहानीके तौर पर ही कराया जायगा। अितनेसे ही माँको संतोष नहीं होगा। हिन्दू माता बच्चोंको संस्कृतकी ध्वनि बचपनसे ही सुनायेगी। अिसलिअे अुन्हें अीश्वरकी स्तुतिके श्लोक जबानी याद करायेगी। और बच्चोंको शुद्ध अुचारण करना सिखायेगी। देश-प्रेमी माँ अुन्हें हिन्दीका ज्ञान तो करायेगी ही। अिसलिअे बालकोंके साथ हिन्दीमें बात करेगी। हिन्दीकी

किताबोंमें से कुछ पढ़कर सुनायेगी और बालकोंको द्विभाषी बनायेगी। वह बालकोंको अक्षरज्ञान अभी नहीं देगी। परन्तु अुनके हाथमें ब्रश तो ज़रूर देगी। वह रेखागणितकी आकृतियाँ बनवायेगी; सीधी लकीरें, वृत्त, आदि खिंचवायेगी। जो बालक फूल नहीं बना सके, या लोटेका चित्र नहीं बना सके या त्रिकोण नहीं खींच सके, अुसे माँ शिक्षा पाया हुआ मानेगी ही नहीं। और संगीतके बिना तो बालकोंको रहने ही नहीं देगी। बच्चे मीठे स्वरसे अेक साथ राष्ट्रीय गीत, भजन आदि नहीं गा सकें, अिसे वह सहन ही नहीं करेगी। वह अुन्हें तालसहित गाना सिखावेगी। हो सके तो अुनके हाथमें अेकतारा देगी, अुन्हें झाँझ देगी, डंडा-रास सिखावेगी। अुनका शरीर मज़बूत बनानेके लिअे अुन्हें कसरत करावेगी, दौड़ायेगी, कुदायेगी। बालकोंको सेवा-भाव और हुनर भी सिखाना है, अिसलिअे अुन्हें कपासकी बोंडियाँ चुनने, छीलने, लोढ़ने, पींजने और कातनेकी क्रियाअें सिखावेगी और बालक रोज खेल-खेलमें कमसे कम आधा घंटा कात डालेंगे।

अभी हमें जो पाठ्यपुस्तकें मिलती हैं, अुनमें से बहुतसी अिस क्रमके लिअे निकम्मी हैं। हर माँ को अुसका प्रेम नअी पुस्तकें दे देगा, क्योंकि गाँव गाँवमें नया अितिहास-भूगोल होगा। गणितके सवाल भी नये ही बनाये जायेंगे। भावनावाली माँ रोज तैयारी करके पढ़ायेगी और अपनी नोटबुकमें नअी बातें, नये सवाल वगैरा गढ़कर बच्चोंको सिखायेगी।

अिस पाठ्यक्रमको ज्यादा लम्बानेकी ज़रूरत न होनी चाहिये। अिसमें से हर तीन महीनेका क्रम तैयार किया जा सकता है। क्योंकि बच्चे अलग-अलग वातावरणमें पले हुअे होते हैं, अिसलिअे अुन सबके लिअे हमारे पास अेक ही क्रम नहीं हो सकता। कभी-कभी तो बच्चे जो अुलटा सीखकर आते हैं, वह अुन्हें भुलाना पड़ता है। छः सात वर्षका बच्चा जैसे-तैसे अक्षर लिखना जानता हो, या अुसे बिना समझे कुछ पढ़नेकी आदत पड़ गअी हो, तो माँ अुससे छुड़वायेगी। जब तक अुसके मनसे यह भ्रम नहीं निकलेगा कि पढ़नेसे ही बालकको ज्ञान

मिलता है, तब तक वह आगे नहीं बढ़ेगी। यह आसानीसे खयालमें आ सकता है कि जिसने जिन्दगी-भर अक्षरज्ञान न पाया हो, वह भी विद्वान बन सकता है।

अिस लेखमें 'शिक्षिका' शब्दका मैंने कहीं अुपयोग नहीं किया। शिक्षिका तो माँ है। जो माँ की जगह नहीं ले सकती, वह शिक्षिका हो ही नहीं सकती। बच्चेको अैसा लगना ही न चाहिये कि वह शिक्षा पा रहा है। जिस बच्चे पर माँकी आँख लगी रहती है, वह चौबीसों घण्टे शिक्षा ही लेता रहता है; और संभव है, छः घंटे स्कूलमें बैठकर आनेवाला बच्चा कुछ भी शिक्षा न पाता हो। अिस अस्त-व्यस्त जीवनमें शायद स्त्री-शिक्षिकायें न मिल सकें। भले ही अभी पुरुषोंके जरिये ही बच्चोंकी शिक्षाका काम हो। अैसी हालतमें, पुरुष-शिक्षकको माताका बड़ा पद लेना पड़ेगा और आखिरमें तो माताको ही अिसके लिअे तैयार होना पड़ेगा। किन्तु मेरी कल्पना ठीक हो तो कोअी भी माता, जिसे प्रेम है, थोड़ी-सी मददसे तैयार हो सकती है। वह अपनेको तैयार करती हुअी बच्चोंको भी तैयार कर सकती है।

नवजीवन, २-६-'२९

२

[ 'नडियादका स्मरणीय भाषण' नामक लेख से ]

फूलचंदके स्मारकके रूपमें खोले गये बालमन्दिरको मैं आज सुबह देख आया हूँ। अुसके संचालकोंसे मैंने जाना कि बच्चोंको रोज बाल-मन्दिरमें लानेका पचास रुपया महीना सवारी खर्च होता है। बालशिक्षा और मॉण्टेसोरी-पद्धतिको मैं समझता हूँ। विदुषी मॉण्टेसोरीसे मैं मिला हूँ। मैंने अुनसे अेक भी पाठ नहीं पढ़ा है, फिर भी अुन्होंने खुले तौर पर मुझे यह प्रमाणपत्र दिया है कि तुम मेरा तरीका पूरी तरह जानते हो और तुम अुस पर अमल करते रहे हो। अिस प्रमाणपत्रमें झूठी खुशामद नहीं थी, क्योंकि यह प्रमाणपत्र मैंने स्वयं अपने आपको

बहुत पहले ही दे दिया था । अिस तरह बच्चोंकी तालीम क्या चीज़ है, अिस बातका खयाल रखकर मैं कहता हूँ कि यह पचास रुपयेका खर्च मुझे खतरनाक मालूम हुआ । बच्चोंको पंगु बनानेके लिअे पचास रुपये देना मॉण्टेसोरी-पद्धति नहीं । मॉण्टेसोरीका तरीका युरोपमें किसी भी तरह बरता जाता हो, परन्तु अिस देशमें अंधे होकर अुसकी नकल करनेवाले मूर्ख हैं । और नकल कहाँ कहाँ करेंगे ? अिस पद्धतिमें तो पाठशालाके साथ बगीचा ज़रूरी है । पर अिस बालमन्दिरमें मैंने बगीचा नहीं देखा । मैंने पूछा कि बालमन्दिर बच्चोंके घरोंसे कितनी दूर है ? मुझे कहा गया कि वह अेक मीलसे ज्यादा दूर न होगा । मैं माता-पिता और शिक्षकोंसे कहता हूँ कि अुन्हें पचास रुपये बचाने चाहियें । शिक्षकोंको सुबहके समय बाहर निकल जाना चाहिये और बच्चोंको अँगुली पकड़कर ले आना चाहिये । बच्चोंको गाड़ीमें बैठाकर लानेसे आप फूलचन्दका स्मारक तैयार नहीं कर सकते । फूलचन्द कोअी फूलोंकी सेज पर सोनेवाला आदमी नहीं था । वह तो वज्र जैसा मनुष्य था । अिसलिअे मैं तो शिक्षकोंसे कहूँगा कि आप माता-पिताको नोटिस दे दीजिये कि यदि बच्चोंको आप पैदल नहीं भेज सकते, तो हमारा अिस्तीफा ले लीजिये, परन्तु हमारे द्वारा बच्चोंको अपंग न बनवाअिये । गाड़ीमें तो नाना साहब जैसे बूढ़े और अपंग बैठ सकते हैं, मैं नहीं बैठूँगा । और यदि ६६ बरसका बूढ़ा गाड़ीमें न बैठे, तो ढाअी सालके बच्चोंको गाड़ीमें क्यों भेजा जाय ?

हरिजनबन्धु, ९-६-'३५

## ३६

# मैडम मॉण्टेसोरीसे मुलाकात*

गांधीजीके साथ श्रीमती मॉण्टेसोरीकी मुलाकातका जिक्र मैंने 'नवजीवन' में किया था । यह आत्माके साथ आत्माका मिलन था । मैडम पर अितना गहरा असर पड़ा कि अुन्होंने लिखा : 'गांधीजी, मुझे तो मनुष्यके बजाय आत्माके रूपमें ही ज्यादा दीखते हैं । मैंने अुन्हें अपनी आत्मासे समझनेका प्रयत्न किया है । अुनका विनय, अुनकी मिठास अैसे थे, मानो सारी दुनियामें कठोरता जैसी कोअी चीज ही नहीं मिल सकती; अुन्होंने सूर्यकी सीधी और तीखी किरणोंकी तरह अपने आपको अुदारताके साथ जिस तरह प्रगट किया, जैसे कोअी मर्यादा या बाधा ही न हो । मुझे अैसा लगा कि यह माननीय व्यक्ति अुन शिक्षकोंको, जिन्हें मैं तैयार कर रही हूँ, बहुत मदद दे सकेगा । शिक्षक अुदार और खुले दिलके होने चाहियें । अुन्हें अपनी आत्माका परिवर्तन करना चाहिये, ताकि वे पक्के हुअे लोगोंकी कठोर और मनुष्य-जीवनको कुचल डालनेवाली रुकावटोंसे भरी हुअी दुनियामें से बाहर आ सकें । गांधीजीकी शिक्षकोंके साथ की यह मुलाकात मानवी बालकोंकी आध्यात्मिक रक्षा करनेमें हमारी मदद करे ।'

हमें वहाँ गादी-तकिये दिये गये और आअिलिंग्टनके गरीब, परन्तु देवताओंके बच्चोंकी तरह साफ और प्यारे बालकोंने गांधीजीको भारतीय ढंगसे नमस्कार किया । अुन्होंने सादे कपड़े पहन रखे थे और सबके हाथ-पैर खुले थे । बादमें अिन बच्चोंने वह काम बताकर, जो अुन्हें

* अिस मजेदार मौके पर गांधीजीने जो कुछ कहा, अुसे समझनेके लिअे अुसकी भूमिकाके तौर पर श्री महादेवभाअीका किया हुआ वर्णन भी साथमें दे दिया है ।

सिखाया गया था, हमारा मनोरंजन किया। ताल मिलाकर चलना-फिरना, ध्यान और अिच्छा-शक्तिके छोटे-छोटे प्रयोग, बाजे बजाना, और अन्तमें महत्त्वमें किसीसे भी कम न माने जा सकनेवाले मौन साधनाके प्रयोग अुन्होंने कर दिखाये। जो लोग वहाँ मौजूद थे, अुन सब पर अिसका बहुत अच्छा असर पड़ा। अपने बच्चोंमें घिरी हुअी मैडम मॉण्टेसोरीमें मुझे बच्चोंके लिअे मुक्त हुअी दुनियाके दर्शन हुअे। अीश्वरकी सृष्टिमें बच्चे ही ज्यादातर अुससे मिलते-जुलते हैं। मैडम मॉण्टेसोरीकी शिक्षाके बारेमें सारी महत्त्वाकांक्षाअें पूरी तरह सफल न हों, तो भी अुन्होंने बच्चोंमें जो कुछ पूजने लायक चीज़ है, अुसकी तरफ़ माता-पिताका ध्यान खींचकर मनुष्य-जातिकी असाधारण सेवा की है। अुन्होंने संगीतमय मीठी अिटालियन भाषामें गांधीजीका स्वागत किया और अुनके मंत्रीने अुसका अंग्रेजीमें अनुवाद किया। यह अनुवाद भी पूरी तरह खुशी पैदा करनेवाला है:

"मैं अपने विद्यार्थियों और मित्रोंको सम्बोधित करके कहती हूँ कि मुझे आपसे अेक बड़ी ज़रूरी बात कहनी है। जिस महान आत्माका हम अितना अनुभव करते हैं, वह आज गांधीजीके शरीरमें मूर्तरूपसे हमारे सामने मौजूद है। जिस वाणीको सुननेका अभी हमें सौभाग्य मिलनेवाला है, वह वाणी आज दुनियामें सब जगह गूँज रही है। वे प्रेमसे बोलते हैं और सिर्फ मुँहसे ही नहीं बोलते, बल्कि अुसमें अपना सारा जीवन अुँड़ेल देते हैं। यह अैसी चीज है, जो कभी-कभी ही होती है; और अिसलिअे जब होती है, तो हर आदमी अुसे सुनता है। गुरुवर! आज जो भाषा आपका स्वागत कर रही है, वह लैटिन जातियोंमें से अेक जाति की है। वह पश्चिमके धार्मिक विचारोंकी जन्मभूमि रोमकी भाषा है और अुस पर मुझे गर्व है। मुझे अैसा लगता है कि यदि आज पूर्वके सम्मानमें मैं पश्चिमके तमाम विचारों और जीवनको मूर्तरूपमें रख सकी होती, तो कितना अच्छा होता। मैं अपने विद्यार्थियोंको आपके सामने रखती हूँ। ये मेरे विद्यार्थी ही नहीं हैं।

आपकी शिक्षा-पद्धतिके ढाँचेका ही अनुसरण करती थी; अुसकी आत्मा नहीं। यद्यपि वहाँ थोड़ा बहुत अीमानदारीसे प्रयत्न किया जाता था, तो भी मैंने देखा कि अुसमें बहुत कुछ झूठा दिखावा ही था।

"बादमें तो मैं अैसी कअी शालाओंके संसर्गमें आया। और जैसे जैसे मैं अुनके ज्यादा संसर्गमें आता गया, वैसे वैसे मैं यह ज्यादा समझने लगा कि यदि बच्चोंको शिशु-जगतमें साम्राज्य भोगनेवाले नहीं, बल्कि मनुष्यत्वको शोभा देनेवाले कुदरतके नियमों द्वारा शिक्षा दी जाय, तो अुसकी नींव सुन्दर और अच्छी होगी। बच्चोंको वहाँ जिस ढंगसे शिक्षा दी जाती थी, अुससे मुझे सहज ही अैसा लगा कि भले ही अुन्हें अच्छी तरह शिक्षा नहीं दी जाती, फिर भी अुसकी मूल पद्धति तो अिन मूल नियमोंके मुताबिक ही सोची गअी थी। अुसके बाद तो मुझे आपके बहुतसे शिष्योंसे मिलनेका मौका मिला। अुनमें से अेकने अिटलीका सफर करके आपका आशीर्वाद भी लिया था। मैं यहाँ अिन बच्चोंसे और आप सबसे मिलनेकी आशा रखता था और अिन बच्चोंको देखकर मुझे बड़ी खुशी हुअी है। अिन बालकोंके बारेमें मैंने कुछ जाननेका प्रयत्न किया है। यहाँ मैंने जो कुछ देखा, अुसकी कुछ झलक मुझे बरमिंघममें मिल गअी थी। वहाँ अेक शाला है। अिस शाला और अुस शालामें फ़र्क है। किन्तु वहाँ भी मानवता प्रकाशमें आनेका प्रयत्न करती दिखाअी देती है। यहाँ भी मैं वही देखता हूँ। बच्चोंको छुटपनसे ही मौनके गुण समझाये जाते हैं। और बच्चे अपने शिक्षकके अेक अिशारेसे ही अैसी शान्तिसे कि सुअीके गिरनेकी आवाज भी सुनाअी दे जाय, अेकके पीछे अेक किस तरह आये, यह देखकर मुझे अैसा आनंद हुआ जिसका मैं वर्णन नहीं कर सकता। कदम मिलाकर चलने-फिरनेके प्रयोग देखकर मुझे बड़ी खुशी हुअी है। जब मैं अिन बच्चोंके ये प्रयोग देख रहा था, तब मेरा दिल भारतके गाँवोंके अध-भूखे बच्चोंकी तरफ दौड़ गया। और मैंने अपने मनसे पूछा, 'क्या सचमुच अैसा हो सकता है कि मैं ये पाठ अुन्हें सिखाअूँ और आपके तरीकेसे जो

शिक्षा दी जाती है वह शिक्षा अुन बालकोंको दूँ!' भारतके गरीबसे गरीब बच्चोंमें हम अेक प्रयोग कर रहे हैं। यह प्रयोग कितना सफल होगा, यह मैं नहीं जानता। भारतके झोंपड़ोंमें रहनेवाले बच्चोंको सच्ची शक्तिशाली शिक्षा देनेका प्रश्न हमारे सामने है और रुपये-पैसेका कोअी साधन हमारे पास नहीं है।

"हमें तो शिक्षकोंकी स्वेच्छासे दी हुअी मदद पर आधार रखना पड़ता है; और जब शिक्षकोंको ढूँढ़ता हूँ तो बहुत थोड़े ही मिलते हैं। खास तौर पर अैसे शिक्षक तो बहुत ही कम मिलते हैं, जो बच्चोंको समझकर, अुनके भीतरकी विशेषताओंका अध्ययन करके, अुन्हें अपने आत्म-सम्मान पर छोड़कर और अुनकी अपनी शक्तिसे काम लेनेके रास्ते लगाकर अुनके भीतरकी अुत्तमसे अुत्तम शक्तियोंको प्रगट कर सकें। सैकड़ों, मैं तो हजारों कहता था, बच्चोंके अनुभवसे मैं कहता हूँ और आप अुस पर विश्वास कीजिये कि आपसे और मुझसे बच्चोंमें सम्मानकी ज्यादा अच्छी भावना होती है। यदि हम नम्र बन जायँ, तो जीवनके बड़ेसे बड़े पाठ बड़ी अुम्रके विद्वान मनुष्योंसे नहीं बल्कि अज्ञान कहे जानेवाले बच्चोंसे सीखेंगे। अीसाने जब यह कहा था कि बच्चोंके मुँहमें सयानापन होता है, तब अुन्होंने अूँचेसे अूँचा और सुन्दरसे सुन्दर सत्य प्रकट किया था। मेरा अिसमें विश्वास है और मैंने अपने अनुभवसे देखा है कि यदि हम नम्रताके साथ और निर्दोष बनकर बच्चोंके पास जायँ, तो हम अुनसे जरूर सयानापन सीखेंगे।

"मुझे आपका समय नहीं लेना चाहिये। अिस समय मेरे मनमें जिस प्रश्नने अुथल-पुथल मचा रखी है, वही प्रश्न मैंने आपके सामने रखा है। और वह यह है कि करोड़ों बच्चोंके भीतरके अच्छेसे अच्छे गुणोंको किस तरह प्रगट किया जाय। किन्तु मैंने यह अेक पाठ सीखा है: मनुष्यके लिअे जो असंभव है, वह अीश्वरके लिअे बच्चोंका खेल है; और अुसकी सृष्टिके अेक-अेक अणुके भाग्यविधाता परमेश्वरमें हमारी श्रद्धा हो, तो बेशक हर चीज संभव हो सकती है। और अिसी

अपने पास नहीं रखा। जो जमा किया वह भी देशके लिअे ही छोड़ गये। जब कमाते थे, तब ४०,०००) रु० दिये, जिसका ब्याज अभी तक चढ़ रहा है। अैसे आदमीका स्मारक बनाना कोअी खेल है? लड़कियोंकी शिक्षाका आदर्श तो यह है कि हमारे यहाँ शिक्षा पाअी हुअी लड़की न गुड़िया बने, न सुन्दर नाच करनेवाली, बल्कि अच्छी स्वयंसेविका बने। आप लोगोंने पटेलोंके नाते अुनका स्मारक बनानेका सोचा है। वे पटेल थे या क्या थे, यह तो भगवान जाने। मैं तो जब पहले-पहल अुनसे मिला था, तब अुनकी फ़ैज टोपी और लम्बी दाढ़ी देखकर मैंने अुन्हें मुसलमान समझा था। मुझे पूछनेकी आदत न थी, असलिअे पूछा भी नहीं। सबको भाअी माननेवाला जात-पाँत क्यों पूछे? विट्ठलभाअीको पटेल कह कर अुनकी हँसी करनी हो तो भले ही कीजिये। अुन्होंने पटेलोंके किस रीत-रिवाजका पालन किया? अुन्हें पटेलोंका कौनसा जूथ अपनेमें समा सकता है? यदि आपने विट्ठलभाअी और वल्लभभाअीका ठेका लिया हो, तो निश्चित मानना कि आपका दिवाला निकल कर रहेगा। यदि आप विट्ठलभाअीको अपना मानेंगे, तो आपको ढेढ़, भंगी, धाराला सबको अपना मानना पड़ेगा। अुन्होंने भंगी और पटेलके बीचमें कभी भेद नहीं माना था। अुनका स्मारक बनाना चाहते हों, तो आपको यह संस्था अैसी बनानी होगी, जिससे खेड़ाकी शोभा नहीं, बल्कि भारतकी शोभा बढ़े। और अैसी सेविकाअें पैदा करनी होंगी, जो भारतकी सेवा करें। यह आदर्श रखकर आप अिस संस्थाको चलायेंगे, तभी विट्ठलभाअीका सच्चा स्मारक बना माना जायगा।

अिसे चलाना आसान नहीं। किन्तु आपके आग्रह और मोहके वस में यहाँ आ गया। खेड़ा वह ज़िला है, जहाँके पुण्य-स्मरण मेरे दिलमें भरे हैं, जहाँ मैं गाँवोंमें घूमा, घोड़े पर घूमा, पैदल घूम कर खूब खाक छानी। जहाँ मैं अेक बार मौतके मुँहमें जा पड़ा था और फूलचन्द जैसे स्वयंसेवकने मेरा पाखाना साफ़ किया था।

यहाँ जानेसे मैं कैसे अिनकार कर सकता था? मुझसे कैसे कहा जा सकता था कि मैं विद्यालय नहीं खोलूँगा? यह सच है कि अिसे खोलनेकी लगन मुझमें नहीं थी; क्योंकि मैं धोखा खाया हुआ आदमी हूँ। फिर भी यह माननेके कारण कि विश्वाससे दुनिया चलती है, मैंने मंजूर कर लिया।

हरिजनबन्धु, ९-६-'३५

## ३८

# स्त्रियोंकी शिक्षा

## १

[बम्बअीके भगिनी समाजके दूसरे वार्षिक सम्मेलनके मौके पर (सन् १९१८) अध्यक्षपदसे दिये हुअे भाषणमेंसे।]

यों तो अक्षर-ज्ञानके बिना बहुतसे काम हो सकते हैं, फिर भी मेरी यह दृढ़ मान्यता है कि अक्षर-ज्ञानके बिना काम नहीं चल सकता। किताबी शिक्षासे बुद्धि बढ़ती है, तेज़ होती है और अुससे हमारी परमार्थ करनेकी शक्ति बहुत बढ़ती है। अिस ज्ञानकी कीमत मैंने कभी अूँची नहीं लगाअी। मैंने अुसे सिर्फ अुचित जगह देनेका प्रयत्न किया है। मैंने समय-समय पर बताया है कि स्त्रीमें विद्याका अभाव अिस बातका कारण नहीं होना चाहिये कि पुरुष स्त्रीसे मनुष्य समाजके स्वाभाविक अधिकार छीन ले या अुसे वे अधिकार न दे। किन्तु अिन स्वाभाविक अधिकारोंको काममें लानेके लिअे, अुनकी शोभा बढ़ानेके लिअे और अुनका प्रचार करनेके लिअे विद्याकी ज़रूरत अवश्य है। साथ ही, विद्याके बिना लाखोंको शुद्ध आत्मज्ञान भी नहीं मिल सकता। बहुतसी पुस्तकोंमें निर्दोष आनंद लेनेका जो अटूट भंडार भरा है, वह भी विद्याके बिना हमें नहीं मिल सकता। विद्याके बिना मनुष्य जानवरके

बराबर है, यह अतिशयोक्ति नहीं बल्कि शुद्ध चित्र है। अिसलिअे पुरुषकी तरह ही स्त्रीको भी विद्या जरूर चाहिये। मैं यह नहीं मानता कि जिस तरहकी शिक्षा पुरुषको दी जाती है, अुसी तरहकी शिक्षा स्त्रीको भी मिलनी चाहिये। पहले तो, जैसा मैंने दूसरी जगह बताया है, हमारी सरकारी शिक्षा बहुत हद तक भूल भरी और हानिकारक मानी गअी है। यह दोनों वर्गोंके लिअे बिलकुल त्याज्य है। अिसके दोष दूर हो जायँ, तब भी मैं यह नहीं मानूँगा कि वह स्त्रियोंके लिअे बिलकुल ठीक ही है। स्त्री और पुरुष अेक दरजेके हैं, परन्तु अेक नहीं; अुनकी अनोखी जोड़ी है। वे अेक दूसरेकी कमी पूरी करनेवाले हैं और दोनों अेक दूसरेका सहारा हैं। यहाँ तक कि अेकके बिना दूसरा रह नहीं सकता। किन्तु यह सिद्धान्त अूपरकी स्थितिमें से ही निकल आता है कि पुरुष या स्त्री कोअी अेक अपनी जगहसे गिर जाय तो दोनोंका नाश हो जाता है। अिसलिअे स्त्री-शिक्षाकी योजना बनानेवालेको यह बात हमेशा याद रखनी चाहिये। दम्पतीके बाहरी कामोंमें पुरुष सर्वोपरि है। बाहरी कामोंका विशेष ज्ञान अुसके लिअे जरूरी है। भीतरी कामोंमें स्त्रीकी प्रधानता है, अिसलिअे गृहव्यवस्था, बच्चोंकी देखभाल, अुनकी शिक्षा वगैराके बारेमें स्त्रीको विशेष ज्ञान होना चाहिये। यहाँ किसीको कोअी भी ज्ञान प्राप्त करनेसे रोकनेकी कल्पना नहीं है। किन्तु शिक्षाका क्रम अिन विचारोंको ध्यानमें रखकर न बनाया गया हो, तो दोनों वर्गोंको अपने-अपने क्षेत्रमें पूर्णता प्राप्त करनेका मौका नहीं मिलता।

स्त्रियोंको अंग्रेजी शिक्षाकी जरूरत है या नहीं, अिस बारेमें भी दो बातें कहनेकी जरूरत है। मुझे अैसा लगा है कि हमारी मामूली पढ़ाअीमें स्त्री या पुरुष किसीके लिअे भी अंग्रेजी जरूरी नहीं। कमाअीकी खातिर या राजनैतिक कामोंके लिअे ही पुरुषोंको अंग्रेजी भाषा जाननेकी जरूरत हो सकती है। मैं नहीं मानता कि स्त्रियोंको नौकरी ढूँढ़ने या व्यापार करनेकी झंझटमें पड़ना चाहिये। अिसलिअे अंग्रेजी भाषा थोड़ी

ही स्त्रियाँ सीखेंगी। और जिन्हें सीखना होगा, वे पुरुषोंके लिअे खोली हुअी शालाओंमें ही सीख सकेंगी। स्त्रियोंके लिअे खोली हुअी शालामें अंग्रेजी जारी करना हमारी गुलामीकी अुम्र बढ़ानेका कारण बन जायगा। यह वाक्य मैंने बहुतोंके मुँहसे सुना है और बहुत जगह सुना है कि अंग्रेजी भाषामें भरा हुआ खजाना पुरुषोंकी तरह स्त्रियोंको भी मिलना चाहिये। मैं नम्रताके साथ कहूँगा कि अिसमें कहीं न कहीं भूल है। यह तो कोअी नहीं कहता कि पुरुषोंको अंग्रेजीका खजाना दिया जाय और स्त्रियोंको न दिया जाय। जिसे साहित्यका शौक है, वह सारी दुनियाका साहित्य समझना चाहेगा, तो अुसे रोककर रखनेवाला अिस दुनियामें कोअी पैदा नहीं हुआ। परन्तु जहाँ आम लोगोंकी जरूरतें समझकर शिक्षाका क्रम तैयार किया गया हो, वहाँ अूपर बताये हुअे साहित्य-प्रेमियोंके लिअे योजना तैयार नहीं की जा सकती। अैसे लोगोंके लिअे हमारी अुन्नतिके समयमें युरोपकी तरह अलग-अलग स्वतंत्र संस्थाअें होंगी। सुव्यवस्थित क्रममें जब बहुतसे स्त्री-पुरुष शिक्षा पाने लगेंगे और शिक्षा न पाये हुअे अिक्के-दुक्के ही रह जायँगे, तब दूसरी भाषाके साहित्यका आनंद देनेवाले हमारी भाषाके ढेरों लेखक निकल आयेंगे। यदि हम साहित्यका रस हमेशा अंग्रेजी भाषासे ही लेते रहेंगे, तो हमारी भाषा सदा निकम्मी रहेगी, यानी हम हमेशा निकम्मी प्रजा बने रहेंगे। यदि अिस अुपमाके लिअे मुझे माफ किया जा सके, तो मुझे कहना चाहिये कि पराअी भाषाके साहित्यसे ही आनन्द लेनेकी आदत चोरीके मालसे आनन्द लूटनेकी चोरकी आदत जैसी है। पोपने जो आनंद अीलियडमें से लिया, वह अुसने अपनी जातिके सामने अलौकिक अंग्रेजीमें पेश कर दिया; फ़िट्ज़रल्डने जो आनंद अुमर खय्यामकी रुबाअियातमें से लूटा, वह अुसने अितनी प्रभावशाली अंग्रेज़ीमें व्यक्त किया कि अुसीके कारण अुसके काव्यकी रक्षा लाखों अंग्रेज बाअिबलकी तरह करते हैं। अेडविन अरनॉल्डने भगवद्गीतामें से रसके घूँट पीये थे। अुसे पीनेके लिअे अुसने जनतासे संस्कृत भाषा सीखनेका आग्रह नहीं किया,

बल्कि अंग्रेजी भाषामें अपनी आत्माको अुँडेलकर और संस्कृत और पाली भाषाके साथ शोभा देनेवाली अंग्रेजी भाषामें घोलकर जनताको अपना रस पिलाया। हम बहुत पिछड़े हुअे हैं, अिसलिअे यह प्रवृत्ति हममें बहुत ज्यादा होनी चाहिये। जब मेरे बताये अनुसार हमारा शिक्षाक्रम तैयार होगा और अुस पर हम दृढ़तासे चलेंगे, तभी वह प्रवृत्ति संभव होगी। यदि हम अंग्रेजीका गलत मोह छोड़ सकें और अपनी या अपनी भाषाकी शक्तिके बारेमें अविश्वास करना छोड़ दें, तो यह काम कठिन नहीं है। स्त्री या पुरुषको अंग्रेजी भाषा सीखनेमें अपना समय नहीं लगाना चाहिये। यह बात मैं अुनका आनंद कम करनेके लिअे नहीं कहता, बल्कि अिसलिअे कहता हूँ कि जो आनंद अंग्रेजी शिक्षा पानेवाले बड़े कष्टसे लेते हैं वह हमें आसानीसे मिले। पृथ्वी अमूल्य रत्नोंसे भरी है। सारे साहित्य-रत्न अंग्रेजी भाषामें ही नहीं हैं। दूसरी भाषाओं भी रत्नोंसे भरी हैं। मुझे ये सारे रत्न आम जनताके लिअे चाहियें। अैसा करनेके लिअे अेक ही अुपाय है, और वह यह है कि हममें कुछ अैसी शक्तिवाले लोग वह भाषा सीखें और अुसमेंके रत्न हमें अपनी भाषामें दें।

## २

[अहमदाबादकी गुजरात साहित्य सभाने गुजरातके खास-खास नेताओं और संस्थाओंको स्त्री-शिक्षाके बारेमें कुछ प्रश्न भेजकर अुनके अुत्तर माँगे थे। गांधीजीने जिन प्रश्नोंके जो अुत्तर दिये थे, अुनमें से कुछ यहाँ दिये जाते हैं।]

प्राथमिक शिक्षा पूरी होनेके बाद लड़कीको शिक्षा पानेके लिअे आजकल चार-पाँच साल और मिलते हैं। अिस अरसेमें अंग्रेजी भाषा द्वारा शिक्षा दी जाय या मातृभाषामें अूँची शिक्षा दी जाय, अिस बारेमें अपनी राय देते हुअे गांधीजी कहते हैं: मुझे तो अैसा लगता है कि अंग्रेजी शिक्षा देना अुनकी हत्या करनेके बराबर है। यह कभी संभव

नहीं होगा कि लाखों स्त्रियाँ अच्छीसे अच्छी बातें अंग्रेजीमें सोचें या व्यक्त करें। यदि हो भी सके तो वह अच्छी बात नहीं है।

जिन स्त्रियोंके लिअे शिक्षाकी योजना तैयार करनी है, अुन्हें यदि मातृभाषा द्वारा अूँची शिक्षा मिलेगी, तो वे गृह-संसारको सोनेका बना देंगी। अितना ही नहीं, वे अपनी बेपढ़ी-लिखी बहनों पर अपने चरित्रका असर डालकर अुनकी हर तरह सेवा कर सकेंगी।

संस्कृतके बारेमें गांधीजी लिखते हैं: मेरी राय है कि संस्कृत सिखाअी जा सके तो ज़रूर सिखानी चाहिये। किन्तु अिन चार-पाँच बरसका अितना ज्यादा अुपयोग कर लेना है कि संस्कृतकी पढ़ाअीको प्रधानता नहीं दी जा सकती।

नैतिक और धार्मिक शिक्षाके बारेमें नीचे लिखा जवाब दिया है:

नीति और धर्म, अिन दोनोंमें मुझे कोअी भेद नहीं दीखता। यह ज़रूर लगता है कि धर्मकी शिक्षाकी बड़ी ज़रूरत है। किन्तु हिन्दू धर्म अितना सूक्ष्म है कि यह अेकाअेक नहीं कहा जा सकता कि अुसकी शिक्षा किस तरह दी जाय। मामूली तौर पर यह कहा जा सकता है कि गीता, रामायण, महाभारत और भागवत-ये चार ग्रन्थ सर्वमान्य समझे जाते हैं। अिनका ज्ञान सिर्फ आध्यात्मिक विचारसे ही दिया जाय, तो अैसा मालूम देता है कि सब कुछ आ गया। अिस बारेमें शिक्षाकी योजना बनाते समय शिक्षकका चुनाव करने पर ही ज्यादा आधार रखना चाहिये।

'मुतर आवे त्यम तुं रहे
ज्यम त्यम करीने हरिने लहे'

अर्थात् दुनियामें तू जैसा भी चाहे रह, किन्तु किसी भी कीमत पर अीश्वरको प्राप्त करनेका ध्येय अपने सामने रख।

अखा भगतके अिस सिद्धान्तको ध्यानमें रखकर धार्मिक शिक्षा दी जाय तो वह सफल होगी।

लड़के-लड़कियोंको अेक साथ पढ़ानेके बारेमें गांधीजी कहते हैं :

लड़के-लड़कियोंको साथ-साथ पढ़ानेका प्रयोग मैंने करके देख लिया है। वह बड़ा जोखम भरा है। साधारण नियम यही हो सकेगा कि अलग-अलग शिक्षा दी जाय।

अध्यापिकाअें जितनी चाहियें अुतनी नहीं मिलतीं, अिसका क्या किया जाय? अिसके जवाबमें गांधीजी कहते हैं : जब तक हमारा यह आदर्श है कि हर पढ़ी-लिखी स्त्रीको शादी करनी ही चाहिये, तब तक अैसा लगता है कि अध्यापिकाओं की कमी रहेगी ही।

विधवा स्त्रियोंमें से बढ़िया अध्यापिकाअें निकलनी चाहियें। किन्तु भारत जब तक विधवापनको अुसका योग्य दर्जा नहीं देता और जब तक पश्चिमी हवामें बहनेवाले हिन्दू ही स्त्री-शिक्षाकी योजना तैयार करते रहेंगे, तब तक विधवाओंमें से भी अुत्तम अध्यापिकाअें मिलनी मुश्किल होंगी। हमारी कितनी ही योजनाअें कुछ खास मर्यादाओंके सामने रुक जाती हैं — आगे चल नहीं सकतीं। अिसका कारण यह है कि सुधरे हुअे और दूसरे लोगोंके बीच जितना चाहिये अुतना सम्बन्ध नहीं है।*

* आत्मोद्धार (मराठी मासिक), भा० २, पृ० १२५

## ३९

# लोक-शिक्षण

[ सत्याग्रह आश्रमकी राष्ट्रीय पाठशालाके शिक्षकोंके हस्तलिखित पत्र 'विनिमय' के भाग २, अंक ३ में से। ]

लोक-शिक्षणका प्रश्न बच्चोंकी शिक्षासे भी ज्यादा अटपटा है। बच्चोंकी शिक्षाके लिअे हमारे पास कअी नमूने हैं। किन्तु अैसा कह सकते हैं कि लोक-शिक्षणके लिअे कुछ भी नहीं। विदेशोंसे भी हमें थोड़ा ही मार्गदर्शन मिल सकता है। भारतकी स्थिति ही न्यारी है।

अिस समय हमारे धर्म और कर्म दोनों ढीले पड़ गये हैं। अिसके सिवाय कअी धर्म होनेसे जो झगड़े होते हैं, सो अलग। हिन्दू, मुसलमान, पारसी, अीसाअी, वगैरा सबके लिअे अेक ही तरहकी शिक्षा नहीं हो सकती।

जैसे, हिन्दू लोगोंको गोरक्षाके बारेमें हम जो बात समझायेंगे और अुनके सामने जो दलीलें देंगे, वे मुसलमानोंके सामने नहीं रखी जा सकतीं। और हिन्दू-मुसलमानके झगड़ेके बारेमें शिक्षा तो दोनोंको देनी ही होगी।

समाज सुधारका काम भी अेक टेढ़ी खीर है। अलग-अलग धर्मोंमें अलग-अलग कुटेव हैं। और सबकी अुपजातियोंमें भिन्नता है। कोअी यह न समझे कि मुसलमानों या अीसाअियोंमें अुपजातियाँ नहीं हैं। हिन्दुओंकी छूत सभीको लगी है।

राजनीति और स्वास्थ्य ये दो ही विषय अैसे हैं, जिनकी शिक्षा सबको अेक तरहकी दी जा सकती है। आर्थिक ज्ञानको मैं राजनीतिमें ही शामिल कर लेता हूँ।

किन्तु राजनीतिका और यहाँ तो स्वास्थ्यका भी धर्मके साथ गहरा सम्बन्ध है। सभी धर्मोंवाले राजनीतिको अेक नजरसे नहीं देखते। बीमारियोंके अिलाज सोचनेमें धर्मकी भावनाओंका विचार अनिवार्य हो जाता है। लोक-शिक्षक सबको शक्तिके लिअे 'बीफ़-टी' पीनेकी शिक्षा नहीं दे सकता। पानी पीने वगैराके नियम वह मुसलमानोंके गले अेकदम नहीं अुतार सकता।

अैसी हालतमें लोक-शिक्षण कहाँसे शुरू किया जाय और कहाँ तक अुसकी हद बाँधी जाय! लोक-शिक्षणका अर्थ रात्रि पाठशाला खोलकर थके हुअे मजदूरोंको ककहरा सिखाना ही तो नहीं हो सकता।

तब लोक-शिक्षक क्या करे?

अभी तो मुझे दो ही रास्ते सूझते हैं: अेक तो यह कि लोक-शिक्षक किसी गाँवमें जाकर बस जाय और लोगोंमें घुल-मिल कर अुनकी सेवा करे। अिससे लोगोंकी सेवा होगी यानी अुन्हें शिक्षा मिलेगी।

दूसरा यह कि लोक-शिक्षणके लायक सरल और सस्ता साहित्य तैयार करके अुसका प्रचार किया जाय। अैसा साहित्य अपढ़ लोगोंको पढ़कर सुनानेका रिवाज शुरू करना चाहिये।

यदि लोक-शिक्षणकी यह कल्पना ठीक हो, तो पहला काम योग्य लोक-शिक्षक तैयार करना है। लोगोंमें अभी लोक-शिक्षण जैसी चीज़ ही नहीं है। यह कहा जा सकता है कि कांग्रेसने यह काम थोड़ा-बहुत अप्रत्यक्ष रूपमें किया है। किन्तु वह शिक्षककी दृष्टिसे नहीं किया। शिक्षककी दृष्टि चरित्र पर रहेगी। राजनीतिज्ञकी दृष्टि सिर्फ राजनीति पर, स्वराज्य पर रहेगी। राजनीतिज्ञ मनुष्य कहेगा कि लोक-शिक्षण स्वराज्यके पीछे-पीछे चला आयेगा। लोक-शिक्षक छाती ठोककर कहेगा कि चरित्र हो तो स्वराज्य लो। हमारे सामने तो अभी शिक्षाकी ही दृष्टि है। राजनीतिज्ञ चरित्रहीन हो तो भी शायद काम चल सकता है; लोक-शिक्षक चरित्रहीन हो तो वह बिना खारेपनके नमक जैसा फीका होगा।

किं बहुना!

# ग्रामशिक्षा

## १

'नवजीवन' की अिस पूर्तिसे काका साहब कअी काम निकालना चाहते हैं। अुनमें से अेक यह है कि पढ़ाअीकी जो अुम्र आम तौर पर मानी जाती है, अुसे पार किये हुअे, गृहस्थका जीवन बितानेवाले, काम-धन्धेमें लगे हुअे महागुजरातके दसेक हज़ार देहाती स्त्री-पुरुषोंको भी हो सके तो कुछ शिक्षा मिल जाय। अैसी शिक्षाका अुदार अर्थ करना चाहिये। यह अक्षरज्ञानसे परे है। देहातियोंको आजकी दृष्टिसे बहुतसी बातोंमें व्यावहारिक ज्ञान नहीं होता और अुसके बजाय अक्सर अुनमें अज्ञान भरे वहमोंका बोलबाला होता है। अुनके ये वहम दूर हों और अुन्हें अुपयोगी ज्ञान मिले, यह मतलब अिस अतिरिक्त अंकके ज़रिये किसी हद तक काका साहब पूरा करना चाहते हैं।

स्वास्थ्यकी दृष्टिसे गाँवोंकी हालत बहुत दयाजनक है। स्वास्थ्यके ज़रूरी और आसानीसे मिलनेवाले ज्ञानका अभाव हमारी गरीबीका अेक ज़बरदस्त कारण है। यदि गाँवोंका स्वास्थ्य सुधारा जा सके, तो सहजमें लाखों रुपये बच सकते हैं और अुस हद तक लोगोंकी हालत सुधर सकती है। नीरोगी किसान जितना काम कर सकेगा, अुतना रोगी कभी नहीं कर सकता। हमारे यहाँ मृत्यु संख्या मामूलीसे ज़्यादा है। अिससे कम नुकसान नहीं होता।

कहा जाता है कि स्वास्थ्यके बारेमें हमारी जो दयाजनक हालत है, अुसका कारण हमारी आर्थिक दीनता है; और यदि वह दूर हो जाय तो स्वास्थ्य अपने आप ठीक हो जाय। सरकारको गालियाँ देने

या सारा दोष अुसीके सिर थोपनेके लिअे भले ही अैसा कहा जाय, किन्तु अूपरके कथनमें आधेसे भी कम सचाअी है । मेरी अनुभवसे बनी हुअी राय है कि हमारे स्वास्थ्यके खराब होनेमें हमारी कंगाल हालतका थोड़ा ही हाथ है । कहाँ और कितना है, यह मैं जानता हूँ । किन्तु अिसमें मैं यहाँ नहीं जाना चाहता ।

अिस लेखमालाका अुद्देश्य यह है कि हमारे दोषोंसे होनेवाली और मामूली-से खर्चसे या बिना खर्चके सहज ही दूर हो सकनेवाली बीमारियाँ दूर करनेके साधन और रास्ते बताये जायँ ।

अिस दृष्टिसे हम अपने गाँवोंकी हालत देखें । हमारे बहुतसे गाँव घूरे जैसे दिखाअी देते हैं । अुनमें जहाँ-तहाँ लोग टट्टी-पेशाब करते हैं । घरके आँगनको भी नहीं छोड़ते । जहाँ टट्टी-पेशाब करते हैं, वहाँ अुसे मिट्टीसे ढँकनेकी कोअी चिंता नहीं करता । गाँवोंमें रास्ते कहीं भी अच्छे नहीं रखे जाते और जहाँ-तहाँ मिट्टीके ढेर पाये जाते हैं । अुनमें हमें और हमारे बैलोंको चलना भी मुश्किल हो जाता है । जहाँ पानीके तालाब होते हैं, वहाँ अुनमें बर्तन साफ किये जाते हैं, अुनमें मवेशी पानी पीते हैं, नहाते हैं और पड़े रहते हैं; अुनमें बच्चे और बड़े भी आबदस्त लेते हैं । अुनके पासकी जमीन पर वे शौच तो जाते ही हैं । वही पानी पीने व भोजन बनानेके काममें लिया जाता है ।

मकान बनानेमें किसी भी तरहका नियम नहीं पाला जाता । मकान बनाते समय न पड़ोसीके आरामका विचार किया जाता है, न यह विचार किया जाता है कि रहनेवालोंको हवा-रोशनी मिलेगी या नहीं ।

गाँववालोंके बीच सहयोगका अभाव होनेके कारण अपने स्वास्थ्यके लिअे जरूरी चीजें भी वे नहीं पैदा करते । गाँवोंके लोग अपने फालतू समयका अच्छा अुपयोग नहीं करते या अुन्हें करना नहीं आता । अिस-लिअे अुनकी शारीरिक और मानसिक शक्ति कम होती है ।

स्वास्थ्यके बारेमें सामान्य ज्ञान न होनेसे जब बीमारियाँ आती हैं, तब देहाती हमेशा घरेलू अुपाय करनेके बजाय अक्सर जादू-टोने करवाते

हैं, या मंतर-जंतरके जालमें फँसकर हैरान होते हैं। रुपया खर्च करते हैं और बदलेमें रोग बढ़ाते हैं।

अिन सब कारणोंकी और अिनके बारेमें क्या हो सकता है, अुसकी जाँच अिस लेखमालामें हम करेंगे।*

१८-८-'२९

## २

## सर्वांगीण शिक्षा

सच्ची बात यह है कि गाँवोंके लोग बिलकुल ही निराश हो गये हैं। अुन्हें शक होता है कि हरअेक अनजान आदमी अुनका गला काटना चाहता है और अुन्हें चूसनेके लिअे ही अुनके पास जाता है। बुद्धि और शरीरकी मेहनतका सम्बंध टूट जानेके कारण अुनकी सोचनेकी शक्ति बिलकुल खतम हो गअी है। वे अपने कामके घंटोंका अच्छेसे अच्छा अुपयोग नहीं करते। अैसे गाँवोंमें ग्रामसेवकको प्रेम और आशाके साथ प्रवेश करना चाहिये और मनमें पक्का भरोसा रखना चाहिये कि जहाँ स्त्री-पुरुष अकल लगाये बिना कड़ी मेहनत करते हैं और आधे साल बेकार बैठे रहते हैं, वहाँ मैं स्वयं बारहों महीने काम करके और बुद्धिके साथ श्रमका मेल बिठाकर ग्रामवासियोंका विश्वास प्राप्त किये बिना और अुनके बीचमें रहकर मज़दूरी करके अीमानदारीके साथ और अच्छी तरह रोजी कमाये बिना नहीं रहूँगा।

किन्तु ग्रामसेवाका अुम्मीदवार कहता है: "मेरे बच्चो और अुनकी शिक्षाका क्या होगा?" यदि अिन बच्चोंको आजकलके ढंगकी शिक्षा देनी हो, तो मैं कोअी रास्ता नहीं बता सकता। अुन्हें नीरोगी, क़द्दावर, अीमानदार, बुद्धिशाली और माता-पिता द्वारा पसन्द किये हुअे स्थानमें जब चाहें तब गुजारा करनेकी शक्तिवाले देहाती

* यह लेखमाला 'गामडांनी वहारे' नामसे गुजरातीमें पुस्तकके रूपमें प्रकाशित हो गअी है।

बनाना हो, तो अुन्हें माता-पिताके घर पर ही सर्वांगीण शिक्षा मिलेगी। अिसके सिवाय जब वे समझने लगेंगे और बाकायदा हाथ-पैरोंको काममें लेने लगेंगे, तबसे कुटुम्बकी कमाअीमें कुछ न कुछ वृद्धि करने लगेंगे। सुघड़ घरके बराबर दूसरी कोअी शाला नहीं होती और अीमानदार तथा अच्छे गुणोंवाले माता-पिता जैसा कोअी शिक्षक नहीं होता। आजकी हाअीस्कूलकी शिक्षा देहातियों पर अेक बड़ा बोझ है। अुनके बच्चोंको वह कभी नहीं मिल सकेगी; और भगवानकी कृपासे यदि अुन्हें सुघड़ घरकी शिक्षा मिली होगी, तो अुस शिक्षाकी कमी अुन्हें कभी खटकेगी नहीं। ग्रामसेवक या सेविकामें सुघड़ता न हो और सुघड़ घर चलानेकी शक्ति न हो, तो यही अच्छा है कि वह ग्रामसेवाका सौभाग्य और सम्मान लेनेका लोभ न रखे।

हरिजनबन्धु, २४-११-'३५

# ४१

## पाठ्यपुस्तकें

आजकल शालाओंमें, खासकर बच्चोंके लिअे, जो पाठ्यपुस्तकें काममें ली जाती हैं, वे ज्यादातर हानिकारक नहीं तो निकम्मी ज़रूर होती हैं। अिससे अिनकार नहीं किया जा सकता कि अिनमें से बहुतेरी लच्छेदार भाषामें लिखी होती हैं। जो अंग्रेजी पाठ्यपुस्तकें स्कूलोंमें चलती हैं, अुनकी बात की जाय तो जिन लोगों और जिन परिस्थितियोंके लिअे वे लिखी जाती हैं, अुनके लिअे वे बहुत अच्छी भी हो सकती हैं। किन्तु ये पुस्तकें भारतके लड़के-लड़कियोंके लिअे या भारतके वातावरणके लिअे नहीं लिखी जातीं। जो पुस्तकें भारतके बच्चोंके लिअे लिखी जाती हैं, वे भी ज्यादातर अंग्रेजीकी अधकचरी नकल होती हैं; और अुनसे विद्यार्थियोंको जो चीज मिलनी चाहिये वह नहीं मिलती। अिस देशमें जैसा प्रान्त

हो और जैसी बच्चों की सामाजिक हालत हो, वैसी अुनकी शिक्षा होनी चाहिये। जैसे, हरिजन बालकोंको शुरूमें तो दूसरे बच्चोंसे कुछ अलग ही तरहकी शिक्षा मिलनी चाहिये।

अिसलिअे मैं अिस फैसले पर पहुँचा हूँ कि पाठ्यपुस्तकोंकी जरूरत विद्यार्थियोंसे शिक्षकोंको ज्यादा है; और हर शिक्षक अपने विद्यार्थियोंको सच्चे दिलसे पढ़ाना चाहता हो, तो अुसे अपने पास पड़ी हुअी सामग्रीमें से रोज पाठ तैयार करने होंगे। ये पाठ भी अैसे तैयार करने पड़ेंगे, जिनके द्वारा अुसके वर्गके बच्चोंकी विशेषताओंके साथ अुनकी खास जरूरतोंका मेल बैठे।

सच्ची शिक्षा लड़कों और लड़कियोंके भीतरी जौहरको प्रगट करनेमें है। यह चीज विद्यार्थियोंके दिमागमें निकम्मी बातोंकी खिचड़ी भर देनेसे कभी पार नहीं पड़ेगी। अैसी बातें विद्यार्थियोंके लिअे बोझ बन जाती हैं, अुनकी स्वतंत्र विचार-शक्तिको मार देती हैं और विद्यार्थियोंको मशीन बना देती हैं। यदि हम स्वयं अिस पद्धतिके शिकार न बने होते, तो आज लोक-शिक्षण देनेका जो ढंग खास तौर पर भारतमें जारी है, अुससे होनेवाले नुकसानका खयाल हमें कभी का हो गया होता।

अिसमें शक नहीं कि बहुतसी संस्थाओंने अपनी-अपनी पाठ्य-पुस्तकें तैयार करनेका प्रयत्न किया है। अिसमें अुन्हें थोड़ी-बहुत सफलता भी मिली है। किन्तु मैं मानता हूँ कि ये पाठ्यपुस्तकें अैसी नहीं, जो देशकी सच्ची जरूरतोंको पूरा कर सकें।

मैं यह दावा नहीं करता कि मैंने जो विचार यहाँ प्रगट किये हैं, वे पहले पहल मुझीको सूझे हैं। मैंने ये विचार हरिजन पाठ-शालाओंके संचालकोंके लाभके लिअे यहाँ जाहिर किये हैं, जिनके सामने भगीरथ काम पड़ा है। हरिजन पाठशालाओंके संचालक और शिक्षक अितनेसे सन्तोष नहीं मान सकते कि वे अपने विद्यार्थियोंसे मशीनकी तरह काम करा लें और विद्यार्थी नियत की हुअी पुस्तकोंसे जैसे-तैसे

अूपरी और तोतेका-सा ज्ञान पा लें। अुन्होंने बड़ी ज़िम्मेदारी सिरपर ली है और अुसे हिम्मत, होशियारी और अीमानदारीसे निभाना चाहिये।

यह काम कठिन तो है ही; किन्तु यदि शिक्षक या संचालक अपना सारा दिल अिसमें अुँडेल दें, तो यह काम जितना हम सोचते हैं, अुतना कठिन नहीं है। ये लोग अपने विद्यार्थियोंके पिता बन जायँ, तो अिन्हें अपने आप मालूम हो जाय कि विद्यार्थियोंको किस चीजकी ज़रूरत है, और वे फौरन वह चीज़ अुन्हें देने लग जायँ। अिसे देने लायक ज्ञानका धन अुनके पास न होगा, तो वे अुसे जुटानेमें लगेंगे और प्रयत्न करके अुतनी योग्यता प्राप्त करेंगे। और क्योंकि हमने अिस विचारसे शुरुआत की है कि लड़के-लड़कियोंको अुनकी ज़रूरतके मुताबिक शिक्षा देनी है, अिसलिअे हरिजनोंके या दूसरोंके बच्चोंके शिक्षकोंको भी असाधारण चतुराअी या बाहरी ज्ञानकी ज़रूरत नहीं पड़ेगी।

और शिक्षा मात्रका अुद्देश्य चरित्र निर्माण करना है या होना चाहिये। यह बात याद रखकर चरित्रवान शिक्षकको निराश होनेकी ज़रूरत नहीं।

(हरिजनबन्धु, १२-११-'३३

## ४२

# पुस्तकालयके आदर्श

[सत्याग्रह आश्रमकी पुस्तकोंके अहमदाबाद संग्रहालयका शिलारोपण करते समय दिये गये भाषणमें से ।]

पुस्तकालयोंके बारेमें मेरे कुछ आदर्श हैं । वे आपके सामने रख देता हूँ । पुस्तकालयका मकान आप लोग अिस तरह बनायें कि जैसे-जैसे वह बढ़ता जाय, वैसे-वैसे अुसकी शाखायें बढ़ें और मकान बढ़ाया जा सके । फिर भी यह पता न चले कि मकान बढ़ाया गया है, और मकान बेडौल भी न लगे । मकान अिस तरहकी सुविधाओंका विचार करके बनायें कि अिस पुस्तकालयमें भाषण दिये जा सकें, विद्यार्थी आकर शान्तिसे पढ़ सकें और अध्ययन कर सकें, और कुछ सिर्फ खोज-बीन करनेवाले विद्वान आकर अध्ययन कर सकें । हमारा आदर्श यही हो सकता है कि हम अिस पुस्तकालयको दुनियामें बड़ेसे बड़ा और अच्छेसे अच्छा बनायें । अीश्वर अैसी शक्ति दे ही देगा । काका साहबने सुझाया है कि विद्यापीठमें जैसा कुछ भी संग्रह है, वह भी यहीं रख दिया जाय । गुजरातमें कलाकी कमी नहीं । भद्रकी जालीकी जोड़ सारे संसारमें नहीं मिलती । अहमदाबादके कसीदेकी होड़ शायद ही हो सके । अहमदाबादके कारीगरोंकी खुदाओका काम देखकर तो मैं अचंभेमें पड़ गया । मैंने अुन्हें बिलकुल अन्धेरे छोटे-छोटे झोंपड़ोंमें रहते देखा है । कला-कोविद अुत्तेजनकी राह देखते हुअे बैठे नहीं रहते । अिस मकानमें ही संग्रहालय बनानेके लिअे दूसरा कोअी ५० हजार रुपये दे, तो यही संग्रहालय हो सकता है ।

अैसा काम करें कि पुस्तकालयका दिन-दिन विकास होता रहे । अेक दो आदमी बहुत समय देनेवाले होंगे तो अच्छा होगा । ग्रंथपाल

किसी व्यापारीको मत बनाअिये, जो सिर्फ किताबोंको सँभाल कर रख सके। बल्कि अैसेको बनाअिये, जो पुस्तकोंको समझे, अुनका चुनाव कर सके। अैसा कोअी स्वयंसेवक न मिले तो ज्यादा रुपये दें। हरिजनोंको मुफ्त आने दें, पुस्तकें भी ले जाने दें; और अुनके हाथसे किताब बिगड़े या चोरी जाय तो सहन करें। ये लोग गरीबोंमें भी, सबसे ज्यादा गरीब हैं। यह रिआयत सभी गरीबोंके लिअे रखी जा सके तो रखें। अिससे संस्थाका यश बढ़ेगा।

भाअी रसिकलालने जो विनती की है, वही मेरी भी विनती है कि पुस्तकालयकी समिति अच्छी बनायें। अुसमें विद्वानोंको रखेंगे, तो पुस्तकालयको जीवित रखनेमें मदद मिलेगी। यह विचार न रखें कि समितिमें व्यवहार-बुद्धि वाले आदमी ही होने चाहियें। विद्वान ही अिस बातको समझते हैं कि पुस्तकालय कैसा चाहिये और अुसे कैसे चमकाया जा सकता है। कार्नेजीने बहुतसे पुस्तकालयोंको दान दिया। अुनके साथ जो शर्तें उसने कीं, अुनको बहुतसे विद्वानोंने मान लिया। परन्तु स्कॉटलैण्डके विद्वानोंने नहीं माना। अुन्होंने कार्नेजीसे कह दिया कि आपको शर्त करना हो, तो हमें आपका दान नहीं चाहिये; आपको क्या मालूम हो सकता है कि कैसी पुस्तकें चाहियें? कलाकार अपनी कला बेचने नहीं जाते। गुजरातमें अमूल्य पुस्तकोंका भण्डार है। वह बनियोंके हाथमें पड़ा है। जैनोंका सुन्दर पुस्तक भंडार रेशममें बँधा पड़ा है। अिन पुस्तकोंको देखकर मेरा दिल रोया है। अज्ञानी और सिर्फ रुपया जमा कर सकनेवाले बनियोंके हाथमें पड़ी-पड़ी ये पुस्तकें क्या काम आती हैं? अिनके हाथोंमें जैन धर्म भी सूखता जाता है, क्योंकि धर्मको पैसेके साँचेमें ढाल दिया गया है। धर्म भी कहीं पैसेके साँचेमें ढाला जा सकता है? पैसेको धर्मके साँचेमें ढालना चाहिये। अिसलिअे मैं आपसे कहता हूँ कि कोअी भी रास्ता निकालकर विद्वानोंको समितिमें शामिल करें। अिस पुस्तकालयकी जय हो!

हरिजनबन्धु, १-१०-'३३

## ४३

# अखबार*

'हिन्दुस्तान' के दीवाली अंकके लिअे कोअी लेख भेजनेका मैंने सम्पादकजीको वचन दिया है। वह वादा पूरा करनेके लिअे मेरे पास समय नहीं है। फिर भी यह सोचकर कि किसी भी तरह थोड़ा बहुत लिखकर भेजना ही चाहिये, मैं अखबारोंके बारेमें अपने विचार पाठकोंके सामने रखना ठीक समझता हूँ। संयोगवश मुझे दक्षिण अफ्रीकामें यह काम करना पड़ा था। अिसलिअे अिस बारेमें सोचनेका भी मौका मिल गया। जो विचार मैं यहाँ पेश करता हूँ, अुन सब पर मैंने अमल किया है।

मेरी छोटी बुद्धिके अनुसार अखबारोंका धंधा जीविकाके लिअे करना अच्छा नहीं। कुछ काम अैसे जोखम भरे और सार्वजनिक होते हैं कि अुनके जरिये जीविका चलानेका अिरादा रखनेसे असली अुद्देश्यको धक्का पहुँचता है। अिससे भी आगे बढ़कर यदि अखबारोंको विशेष कमाअीका साधन बनाया जाय, तब तो बहुतसी बुराअियाँ पैदा हो सकती हैं। जिन लोगोंको अखबारोंका अनुभव है, अुनके सामने यह साबित करनेकी ज़रूरत नहीं कि अैसी बुराअियाँ आज बहुत चल रही हैं।

अखबारका काम लोगोंको शिक्षा देना है। अखबारसे लोगोंको वर्तमान अितिहास मिल जाता है। यह काम कम जिम्मेदारीका नहीं। अितने पर भी हम महसूस करते हैं कि अखबारों पर पाठक भरोसा नहीं रख सकते। अकसर अखबारमें दी हुअी खबरसे अुलटी ही घटना हुअी देखी जाती है। यदि अखबार यह समझें कि अुनका काम लोक-शिक्षणका है, तो खबरें देनेसे पहले वे रुके बिना न रहें। अिसमें शक

* संवत् १९७३ के दीवाली अंकमें यह लेख छपा है।

नहीं कि अखबारोंकी स्थिति अकसर विषम होती है। थोड़ेसे समयमें अुन्हें सारासारका निर्णय करना पड़ता है और सच्ची हकीकतका अन्दाज़ ही लगाना होता है। तो भी मैं मानता हूँ कि यदि किसी खबरके सच होनेका निश्चय न हो सका हो, तो अुसे बिलकुल ही न देना ज्यादा अच्छा है।

वक्ताओंके भाषण छापनेमें भारतके समाचारपत्रोंमें बहुत दोष पाये जाते हैं। भाषण सुनकर लिखनेकी शक्ति रखनेवाले बहुत थोड़े लोग हैं। अिससे वक्ताओंके भाषणोंकी खिचड़ी हो जाती है। सबसे बढ़िया नियम यह है कि हर वक्ताके भाषणका 'प्रूफ' अुसके पास सुधारनेके लिअे भेज देना चाहिये और वह अपने भाषणका 'प्रूफ' ठीक न करे, तो ही अखबारको अपना लिया हुआ सार देना चाहिये।

बहुत बार अैसा देखा जाता है कि समाचारपत्र सिर्फ जगह भरनेके लिअे ही जैसी-तैसी चीज़ छाप देते हैं। यह आदत सब जगह पाअी जाती है। पश्चिममें भी अैसा ही होता है। अिसका कारण यह है कि ज्यादातर अखबारोंकी नजर कमाअी पर रहती है। अिसमें शक नहीं कि अखबारोंने बड़ी सेवा की है, जिससे अुनके दोष छिप जाते हैं। किन्तु मेरी राय है कि जैसे सेवा की है, वैसे ही नुकसान भी कम नहीं किया है। पश्चिममें कुछ अखबार अितने अनीतिसे भरे होते हैं कि अुन्हें छूना भी पाप है। बहुतसे अखबार पक्षपातसे भरे होनेके कारण लोगोंमें वैर फैलाते या बढ़ाते हैं। अकसर कुटुम्बों और जातियोंमें झगड़े भी खड़े करा देते हैं। अिस तरह लोकसेवा करनेके कारण अखबार टीकासे बच नहीं सकते। सब बातोंको देखते हुअे अुनसे नफा-नुकसान बराबर ही होनेकी संभावना है।

अखबारोंमें अैसा रिवाज पड़ गया मालूम होता है कि मुख्य कमाअी ग्राहकोंके चन्देसे न करके विज्ञापनोंसे की जाय। अिसका फल दुःखदायी ही हुआ है। जिस अखबारमें शराबकी बुराअी की होती है, अुसीमें शराबकी तारीफके विज्ञापन होते हैं। अेक ही अखबारमें हम

तम्बाकूके दोष भी पढ़ेंगे और यह भी पढ़ेंगे कि बढ़िया तम्बाकू कहाँ बिकती है। जिस पत्रमें नाटकका लम्बा विज्ञापन होगा, अुसीमें नाटककी टीका भी मिलेगी। सबसे ज्यादा आमदनी दवाओंके विज्ञापनोंसे होती है। किन्तु दवाओंके विज्ञापनोंसे जनताकी जितनी हानि हुअी है और हो रही है, अुसका कोअी पार नहीं। दवाओंके विज्ञापनोंसे अखबारों द्वारा की हुअी सेवा पर लगभग पानी फिर जाता है। दवाके विज्ञापनसे होनेवाले नुकसान मैंने आँखों देखे हैं। बहुतसे लोग सिर्फ विज्ञापनके भुलावेमें आकर हानिकारक दवायें लेते हैं। अकसर दवायें अनीतिको बल पहुँचानेवाली होती हैं। अैसे विज्ञापन धार्मिक पत्रोंमें भी पाये जाते हैं। यह प्रथा सिर्फ पश्चिमसे आअी है। किसी भी प्रयत्नसे विज्ञापनोंका रिवाज या तो मिटना चाहिये या अुसमें बहुत सुधार होना चाहिये। हरअेक अखबारका फर्ज है कि वह विज्ञापनों पर काबू रखे।

अंतिम प्रश्न यह है कि जहाँ 'सिडीश्यस राअिटिंग अेक्ट' और 'डिफेन्स ऑफ अिण्डिया अेक्ट' जैसे कानून मौजूद हों, वहाँ अखबारोंको क्या करना अुचित है? हमारे अखबारोंमें अकसर दो अर्थ पाये जाते हैं। कुछ अखबारोंमें तो अिस पद्धतिको शास्त्रका रूप दे दिया गया दीखता है। मेरी नम्र रायमें अिससे देशको नुकसान पहुँचता है। लोगोंमें नामर्दी आती है और द्वि-अर्थक बात कहनेकी आदत पड़ती है। अिससे भाषाका रूप बदल जाता है और भाषा विचारोंको प्रकट करनेका साधन न रहकर विचारोंको छिपानेका साधन बन जाती है। मैं खास तौर पर यह मानता हूँ कि अिस तरह जनता तैयार नहीं होती। जो मनमें हो, वही बोलनेकी आदत जनतामें और व्यक्तियोंमें पड़नी चाहिये। वह तालीम अखबारसे अच्छी मिल सकती है। अिसलिअे अिसीमें भलाअी जान पड़ती है कि जिसे अूपरके कानूनोंसे बचकर काम करना है, वह अखबार ही न निकाले, या जो विचार मनमें आयें वही निडर होकर नम्रताके साथ पेश किये जायें और जो फल मिले अुसे सहन किया जाय। जस्टिस स्टीवनने अेक विचार दिया है कि जिस आदमीने मनमें

भी द्रोह नहीं किया, अुसकी भाषामें द्रोह हरगिज नहीं आ सकता; और यदि मनमें द्रोह हो तो अुसे बेधड़क जाहिर करना चाहिये। यदि अैसा करनेकी हिम्मत न हो, तो अखबार बन्द कर देना चाहिये। अिसमें सबका भला है।

('गांधीजीकी विचारसृष्टि'से)

## ४४

# शिक्षा और साहित्य

### १

[बारहवें गुजरात साहित्य-परिषद सम्मेलनके सभापतिपदसे दिये हुअे भाषणमें से।]

साहित्य-परिषद क्या करे? परिषदसे मैं क्या आशा रखूँ? काका कालेलकरने अिस बारेमें नौ पन्ने लिख कर मुझे दिये थे। अुन्हें मैं पढ़ तो गया था परन्तु भूल गया हूँ। डॉक्टर हरिप्रसादने भी पत्र भेजा था, किन्तु वह न मालूम कहाँ पड़ा है। होगा तो सुरक्षित, परन्तु यहाँ आते समय मुझे नहीं मिला। अुन्हें फिर लिख कर देनेको कहा, तो अुन्होंने रातको मेरे सो जानेके बाद भेजा। वह भी यहाँ नहीं लाया। अिस तरह जो कुछ अुन्होंने चाहा, वह मैं नहीं दे सकता। यह मेरा दुर्भाग्य है। मुझे समय मिले तब पकाअूँ और सामान तैयार करूँ न? किन्तु अिस समय जो कुछ कहता हूँ, वह कुछ नहीं तो मेरे पास तो शोभा देता ही है। क्योंकि जो हृदयसे निकलता है वही मैं कहता हूँ, मुलम्मा चढ़ाये बिना कहता हूँ।

स्वागताध्यक्षने मेरा बोझ हलका कर दिया है। मैंने पहली साहित्य-परिषदमें जो कुछ कहा था, अुसे अुन्होंने फिर कह सुनाया है,

ताकि कहीं मुझे चाबुक न लगाने पड़ें। परन्तु अहिंसाका पुजारी भी कभी चाबुक लगाता है? मेरे पास चाबुक नहीं हो सकता। अुस समय मैंने तो नम्रता ही बताअी थी। आज नरसिंहरावभाअी यहाँ नहीं हैं, अिसका मुझे बड़ा दुःख है। अुनके साथ मेरा संबन्ध लगातार बढ़ता गया है। वे यहाँ होते तो मैं बहुत खुश होता। और रमणभाअीका तो आज शरीर भी नहीं रहा। अुनसे मैंने कहा था कि मेरे पासके कुअें पर चड़स चलानेवाला चड़सिया कौनसी भाषा बोलता है, अिसका अुसे पता नहीं होता। वह गाली देता है, अिसका अुसे पता नहीं होता। अुसे मैं क्या कहूँ? कवि हो वह अुसके पास जाये। मुन्शी ठहरे अुपन्यासकार, वे तो नहीं जा सकते। कोअी अद्‌भुत कलाकार अुसके पास जाकर अुसे समझा सकता है। दो बात यहाँ कहे, दो बात वहाँ कहे और अैसी कहे कि वह हज़म कर सके।

हम साहित्य किसके लिअे तैयार करें? कस्तूरभाअी अेण्ड कंपनीके लिअे या अम्बालालभाअीके लिअे या सर चीनुभाअीके लिअे? अुनके पास तो रुपया है, अिसलिअे वे जितने चाहें अुतने साहित्यकार रख सकते हैं और जितने चाहें अुतने पुस्तकालय कायम कर सकते हैं। परन्तु अुस चड़सियेका क्या हो? अुस समय मेरे सामने वह अकेला था। और वह भी किसी वास्तविक गाँवका नहीं, बल्कि कोचरबका था। कोचरब भी कोअी गाँव है? वह तो अहमदाबादकी जूठन है। वहाँ जीवनलालभाअीका बंगला था। मेरे जैसा भूत ही वहाँ जाकर बस सकता था न? वहाँ अुन्हें ज्यादा किराया देनेवाला भी अुस समय कौन मिलता? किन्तु मुझे वहाँ रखना था, अिसलिअे जीवनलालभाअीने बंगला दिया और सेठ मंगलदासने रुपया देनेको कहा। किन्तु आज तो अुस चड़सिये जैसे बहुत लोग मेरे सामने मौजूद हैं। अिस समय मैं सेगाँवमें जाकर पड़ा हूँ। वहाँ ६०० मनुष्य हैं, अुनमें १० आदमी भी मुश्किलसे अैसे होंगे जो पढ़ सकें। दस कम हों तो पचास कहूँ, परन्तु पचास कहना ज़रूर अधिक होगा। वहाँ मैं क्या करता हूँ?

विद्यापीठके कुलपतिका पद मुझे शोभायमान करना है। अिसलिओ मुफ्त पुस्तकालय खोला। वहाँ किताबें जमा करना शुरू किया। परन्तु पढ़ सकनेवाले दसमें से समझकर पढ़नेवाले ता दो-तीन ही होंगे। और बहनोंमें तो अेक भी अैसी नहीं जो पढ़ सके। वहाँ ७५ फीसदी हरिजन हैं। वर्धाने अुन्हें छुआ तक नहीं। छुआ होता तो मैं दूर जाता। वहाँ तो मलेरिया है। किन्तु जहाँ मैं जाअूँ वहाँ मलेरियाका गुजर नहीं हो सकता। अैसा मलेरियाके साथ मेरा करार है। वहाँ कभी खड्डे-पोखरे हैं। किन्तु अेक धनी व्यक्ति मिल गया, जिसने सड़क बनवा दी है। छः महीने पहले जैसी हालत थी, वैसी हालतमें आनन्दशंकरभाअी जैसे वहाँ आ भी नहीं सकते थे।

वहाँ मैंने अेक पुस्तकालय खोला है। अुसमें साहित्य तो क्या हो सकता है? अेक दो लड़कियोंकी काममें ली हुअी किताबें अुनसे छीन लीं। ये निकम्मी पाठ्यपुस्तकें तैयार करनेवालोंके बारेमें बोलूँ, तो आपको खूब हँसा सकता हूँ और घण्टों बात कर सकता हूँ। किन्तु समय नहीं है।

वहाँका प्रदेश महाराष्ट्री ठहरा। वहाँ गुजरातके बराबर निरक्षरता नहीं है, परन्तु सेगाँवमें निरक्षरता है। वहाँ मेरे पास अेक अेल-अेल० बी० है। वह कानून भूल गया है। भूलसे अेल-अेल० बी० हो गया। वह गुजरातका है, परन्तु थोड़ी मराठी जानता है। अुसे मैंने कह दिया कि लोग समझ सकें, अैसी किताबें पढ़ाओ और खुद अपने ज्ञानसे अुन्हें बढ़ाओ। आजकलके अखबार तो हैं, पर वहाँके लोग अुनमें क्या समझें? अुन्हें भूगोल पढ़ाना है। वे रूसको क्या जानें? अुन्हें क्या पता कि स्पेन कहाँ है? अिन साढ़े तीन रुपयेकी किताबोंके लिअे घर अैसा है कि बरसातमें वहाँ बैठ भी नहीं सकते। कोअी दियासलाअी डाल दे, तो सुलग अुठे। यह मीराबहनकी झोंपड़ी थी। मीराबहन त्यागी है, पर मूर्ख है। मैंने अुससे कहा था कि जहाँ लोग पाखाने जाते हों वहाँ तू नहीं रह सकती। मैं तो गाँवकी सीमा पर ही रह

सकता हूँ। मेरे देहातमें बसनेकी यह शर्त है कि मुझे साफ़ हवा, साफ पानी और साफ भोजन मिलना चाहिये। सौभाग्यसे मैं जहाँ पड़ा हूँ, अुस तरफ़की पड़त जमीनको लोग पाखानेके लिअे अिस्तेमाल नहीं करते। अुस मीरावहन वाली झोंपड़ीमें हमने पुस्तकालय जमाया। अैसे गाँवमें लोगोंको क्या पढ़ कर सुनाअूँ? मुंशीका अुपन्यास पढ़ूँ? श्री कृष्णलालभाअीका कृष्ण-चरित्र पढ़ूँ? यद्यपि कृष्ण-चरित्र मौलिक नहीं अनुवाद है, फिर भी अिस अनुवादको मैंने पढ़ा, तब मुझे मीठा लगा था। मैं अिसे पढ़कर खुश हुआ था। किन्तु यह हमारा दुर्भाग्य है कि मैं अुनकी अिस पुस्तकको भी सेगाँवमें नहीं चला सकता। पढ़े-लिखे लोग यह बात मेरे मुँहसे न सुनें, तो किसके मुँहसे सुनें? सेगाँवसे मैं अेक भी लड़केको यहाँ नहीं लाया। किराया दूँ तो चला आवे। परन्तु यहाँ आकर क्या करे? तो भी मैं अुनका बिनमाँगा और बिनचुना प्रतिनिधि हूँ और गाँवोंके लोगोंके दिलका दर्द आपको सुनाता हूँ। यह सच्ची 'डेमोक्रेसी' है। अिन लोगोंसे सीख सीखकर मैं आपसे कहता हूँ कि सच्चा स्वराज्य चाहिये तो यहाँ आअिये। आपके लिअे मैं रास्ता साफ़ कर रहा हूँ। वहाँ काँटे तो बिछे ही हैं, परन्तु थोड़ेसे गुलाब भी मैं लगा दूँगा।

जब यह बात कहता हूँ तो डीन फेरर याद आता है। वह जबरदस्त विद्वान था। मैं मानता हूँ कि अंग्रेजीमें बड़े-बड़े विद्वान मौजूद हैं। मैं अंग्रेज़ोंके साथ लड़ूँ भले ही, परन्तु मैं गुणग्राही हूँ। मुझे किसी अंग्रेज या अंग्रेजी भाषासे दुश्मनी थोड़े ही है। डीन फेररको लगा कि जनताके सामने मुझे अीसाका जीवन लिखकर रखना है, किन्तु वह कैसे लिखा जाय? अंग्रेजी भाषामें अीसाके जितने जीवन-चरित्र हैं वे सब वह पढ़ गया, किन्तु अुसे संतोष न हुआ। फिर वह फिलस्तीन गया। वहाँ बाअिबल ली और अुसमें दिये हुअे जीवन वृत्तान्तके अनुसार सब कुछ शुद्ध आँखसे देख लिया। फिर अुसने श्रद्धा भावसे पुस्तक लिखी। अिसके लिअे अुसने कितनी सामग्री अिकट्ठी की, कितनी मेहनत और

अस्पष्ट खिंची हुअी लकीरोंको मैं पूरा कर दूँ, किन्तु मजबूरीसे खतम कर देता हूँ । मुझे जो कुछ कहना है, अुसमें से थोड़ा ही कहा है ।

अिस समय मेरा दिल रो रहा है । किन्तु मैं आँखमें से आँसू कैसे निकालूँ ? खूब वेदना होते हुअे भी मुझे तो हँसना है । रोनेके प्रसंग आते हैं, तब भी मैं नहीं रोता । जी कड़ा कर लेता हूँ । परन्तु वह सेगाँव — वहाँके अस्थिपंजर देखता हूँ ( यहाँ गला भर आया । थोड़ी देर रुक कर बोले ), तो मुझे आपका साहित्य निकम्मा लगता है । आनंदशंकरभाअीसे मैंने सौ पुस्तकें माँगीं । अिन्होंने मेहनत करके मुझे भेजीं, परन्तु मैं अिन पुस्तकोंका क्या करूँ ? वहाँ किस तरह ले जाअूँ ?

वहाँ की स्त्रियोंको देखता हूँ, तो अैसा लगता है कि अिन स्त्रियोंका अहमदाबादकी स्त्रियोंके साथ क्या सम्बन्ध है । वे स्त्रियाँ साहित्यको नहीं जानतीं, रामधुन गवाअूँ तो गा नहीं सकतीं । वे साँप-बिच्छूकी परवाह किये बिना, बरसात, ठंड या धूपका खयाल किये बिना, मेरे लिअे पानी ले आती हैं, घास काट लाती हैं, अींधन ला देती हैं और मैं अुन्हें पाँच पैसे दे देता हूँ, तो वे मुझे अन्नदाता समझती हैं । वहाँ अुन्हें पाँच पैसे देनेवाले अंबालालभाअी नहीं हैं । यह भारत अहमदाबादमें नहीं, सात लाख गाँवोंमें है । अुन्हें आप क्या देंगे ? अुनमें से पाँच फ़ीसदी ही लिख-पढ़ सकते हैं । मुश्किलसे सौ दो सौ शब्दोंकी अुनके पास पूँजी है । मैं जानता हूँ, अुनके पास क्या ले जाना चाहिये । किन्तु मैं आपसे कहकर क्या करूँ ? कहकर बतानेका मेरा विषय नहीं, जो कह कर बताअूँ । कलम तो मैंने मजबूरन पकड़ी है । पराधीन दशामें अुसे चलाता हूँ । आज बोलता हूँ, किन्तु खास परिस्थितिमें । मैं बरसों तक नहीं बोला । मित्रोंने मुझे dunce ( मूर्ख ) समझा । छोटीसी मंडलीमें भी नहीं बोल सका था । अदालतमें गया तो मुझे यह भी पता नहीं था कि 'माअी लॉर्ड' कहूँ या क्या कहूँ ।

मुझे बोलना नहीं आता था। बैरिस्टर बन गया, किन्तु देहाती। अिसलिअे बोलना छोड़ दिया। मैंने यह सूत्र पकड़ लिया कि जितना हो सके अुतना करूँ। मैं जानता हूँ कि स्वराज्यकी कुंजी मजदूरोंके पास भी नहीं। स्वराज्यकी कुंजी तो देहातमें है। गाँव भी मैं ढूँढ़ने नहीं गया। सत्याग्रह भी मैं ढूँढ़ने नहीं गया था। अिन गाँवोंकी कअी स्त्रियाँ आकर मुझे जबरन वरती हैं। किन्तु मैं अुन्हें वरूँ तो मेरा अेक-पत्नीव्रत जाता है। अिसलिअे मैंने अुन्हें माताअें बनाया है। मैं अुन्हें माताके रूपमें ही देखता हूँ और पूजता हूँ। अिस माताके मन्दिरमें आपको भी न्यौता देता हूँ।

हरिजनबन्धु, २२-११-'३६

## २

[ गुजराती साहित्य परिषदका अुपसंहार भाषण ]

पहले तो मुझे आप सबका आभार मानना चाहिये। आम तौर पर सभापति आभार मानता ही है, परन्तु मैं रूढ़िके वशमें होकर आभार नहीं मानता, नहीं देता। मैं आपके प्रेमके वशमें होकर आया था। मुझे आपके लिअे जितना समय देना चाहिये था, वह भी न दे सका। मैंने तो निकम्मा, बिना सोचे-विचारे बोल कर भाषण दिया। अिसके लिअे मुझे आपसे माफी माँगनी चाहिये। आपने मुझे निभा लिया, अिसके लिअे मैं दिलसे आपका आभार मानता हूँ।

अैसी बात नहीं है कि सुन्दर-सुन्दर लेख पढ़ना मुझे अच्छा नहीं लगता। मुझमें कितने ही अैसे रस भरे हैं, जिन्हें मैं तृप्त नहीं कर सकता। अिनमें से कुछ सूख गये हैं और जो बाकी हैं, वे जब तक 'पर' या भगवानके दर्शन न हों, तब तक मौके-मौके पर खिलते रहेंगे। आनंदशंकर भाअीने मुझे कहा कि यहाँ मुशायरा हुआ, अुसमें नौजवानोंने भी अच्छा भाग लिया। अिन्दौरके पुरातत्त्व विषयके भाषणमें जानेकी भी मेरी अिच्छा थी। परन्तु न मैंने वह भाषण सुना और न यह मुशायरा

देखा। आपने मेरी अिन सब गलतियोंको सह लिया, यह आपकी अुदारता नहीं तो और क्या है?

अिनामोंके लिअे दिये गये दानोंके बारेमें सुनकर मुझे स्कॉटलैण्डके बड़े पुस्तकालयको दान करनेवाले कार्नेगी याद आ गये। स्कॉटलैण्डके प्रोफेसरोंने अुनसे कहा: "दान देना है तो पुस्तकालयको किस लिअे पकड़ते हो? आप अपने व्यापारको समझ सकते हैं, जिसमें आप क्या समझें?' मैं भी दानवीरोंको कहता हूँ कि आपको लगता हो कि आपके रुपयेका ठीक अुपयोग होगा, तो आप हमें बिना किसी शर्तके दान दीजिये।

अुपन्यासोंकी तो आजकल बाढ़-सी आ गअी है। अुन्हें पढ़ना अेक व्यसन बन गया है। कुकुरमुत्तेकी तरह ये निकलते ही जा रहे हैं। अुपन्यास किस तरह लिखे जाते हैं, यह जानना हो तो आपको बहुत सुना सकता हूँ। किन्तु अिसका चित्र सभ्य स्त्री-पुरुषोंके सामने नहीं रखा जा सकता। कल्पनाके घोड़े तो कहीं भी जा सकते हैं। अुन पर कोअी अंकुश नहीं होता। किन्तु अिन अुपन्यासोंके बिना हमारा काम चल सकता है। गुजराती भाषा अुपन्यासोंके बिना विधवा नहीं हो जायगी। आज गुजराती विधवा है। मैं दक्षिण अफ्रीका गया, तब अपने साथ कुछ गुजराती पुस्तकें ले गया था। अुनमें टेलरका गुजराती व्याकरण भी था। वह मुझे बहुत अच्छा लगा था। अिस बार भी परिषदके पहले दिनकी कलकी रातमें मैंने अुसे पढ़नेको निकाला था। परन्तु पढ़ा कैसे जाय? अिस व्याकरणका आखिरी हिस्सा मुझे याद रह गया है। अुसमें टेलर पूछते हैं: "गुजरातीको कौन अधूरी कहता है? 'संस्कृतकी सुन्दर पुत्री गुजराती और अधूरी?'" अन्तमें अुन्होंने कहा है: 'यथा भाषकः तथा भाषा।' गुजरातीमें गुजराती भाषाकी दरिद्रता नहीं दीखती, अुसे बोलनेवालेकी दरिद्रता दीखती है। यह दरिद्रता अुपन्यासोंसे नहीं मिटेगी। कुछ अुपन्यास बढ़ जानेसे हमारी भाषाका अुद्धार थोड़े ही होना है।

मैं तो गाँवमें पड़ा हूँ। अिसलिअे देहातियोंके खयालसे अपनी भूल बताता हूँ। ज्योतिषकी किताब मैंने मैट्रिकमें पढ़ी थी, किन्तु आकाशकी तरफ देखनेको मुझे किसीने नहीं कहा। काका साहब रसिक ठहरे वे यरवदा जेलमें रोज आसमानमें तारे देखते। मुझे लगा कि ये रोज-रोज क्या देखते होंगे? अुनके छूटनेके बाद मैंने भी पुस्तकें मँगवाअीं। मुझे गुजराती पुस्तककी ज़रूरत थी और अेक निकम्मी-सी पुस्तक मेरे पास आअी भी। किन्तु अुससे मेरी भूल क्या मिटती? क्या हम ज्योतिषकी अैसी किताब देहातियोंको नहीं दे सकते, जिसे वे समझ सकें?

परन्तु ज्योतिषकी बात जाने दीजिये, भूगोल भी अिन लोगोंके लायक कहाँ है? सच बात यह है कि हमने गाँवोंकी परवाह ही नहीं की। हमारे रोटी-कपड़ेका आधार गाँवों पर है, फिर भी हमारा बरताव अैसा है मानो हम अुनके सेठ हों। हमने अुनकी ज़रूरतोंका विचार ही नहीं किया। क्या कोअी अैसा कंगाल देश है, जो अपनी भाषा छोड़कर पराअी भाषासे अपना सब कारबार चलाता हो? यही कारण है कि हमारा देश गरीब रहा और हमारी भाषा-विधवा हो गअी। कोअी भी पुस्तक फ्रेंच या जर्मन भाषामें अैसी नहीं होती, जिसके प्रकाशित होते ही अुसका अंग्रेजी भाषामें अनुवाद न हो गया हो। बच्चोंके लिअे बढ़िया-बढ़िया पुस्तकोंके बेशुमार संक्षिप्त संस्करण तैयार होते हैं। अैसा गुजरातीमें क्या है? यदि हो तो मैं अुसे हृदयसे आशीर्वाद दूँ।

मुझे अिन विषयोंके लिअे प्रस्ताव रखना था, परन्तु अभी तो सूचनासे ही सन्तोष कर लूँगा। मैं अपने यहाँके लेखकोंसे कहूँगा कि शहरियोंके लिअे लिखनेके बजाय हमारी मूक जनताके लिअे लिखना शुरू कीजिये। मैं अिस मूक जनताका अपने आप बना हुआ प्रतिनिधि हूँ। अुसकी तरफसे मैं कहता हूँ कि अिस क्षेत्रमें कूद पड़िये। आप मनोरंजक कहानियाँ लिखते होंगे, परन्तु अिससे अुनकी बुद्धि पर प्रभाव नहीं पड़ेगा। हमारे यहाँ ग्रामसेवक विद्यालय है। अुसके आचार्यको मैंने कहा है कि

अुद्योग सिखानेसे पहले अुद्योगके औज़ारोंका अध्ययन कीजिये, वसूलेकी रचना समझिये; अपनी बुद्धिका विकास करना हो, तो गाँवोंके साधनोंका अध्ययन कीजिये, अुनकी खूबियाँ और खामियाँ समझिये और फिर अिस बारेमें लिखिये। जिसका दिमाग ताज़ा है, अुसे गाँवोंमें नअी-नअी बातें देखने-जाननेको मिलेंगी। गाँवोंमें जाते ही बुद्धिका विकास रुक नहीं जाता। जो अैसा कहें, अुन्हें मैं कहूँगा कि वे रुँधी हुअी बुद्धि लेकर ही *वहाँ जाते हैं। बुद्धिके विकासके लिअे सच्चा क्षेत्र गाँव ही है, शहर नहीं।*

कल मैंने विषय-निर्वाचिनी सभामें अेक बात कही थी। वही यहाँ कह देता हूँ। मुझे ज्योति संघकी तरफ़से श्रीमती लीलावती देसाअीका पत्र मिला था। अिस पत्रका भावार्थ तो ठीक था, परन्तु अुसकी भाषा मुझे पसन्द नहीं आअी। अुसका भावार्थ यह था कि स्त्रियोंके बारेमें जो कुछ लिखा जाता है, अुससे अुन्हें दुःख होता है। आजकलके साहित्यमें स्त्रियोंके जो वर्णन आते हैं, वे विकृत होते हैं। ये बहन घबराकर पूछती हैं कि अीश्वरने हमें बनाया है तो क्या अिसलिअे कि आप हमारे शरीरोंका वर्णन करें? हम मरेंगी तब क्या आप हमारे शरीरमें मसाला भर कर रखेंगे? यह मान बैठनेकी ज़रूरत नहीं कि हम खाना बनाने और बरतन मलनेके लिअे पैदा हुअी हैं। मुझे अेक आदमीने मनुस्मृतिमें से चुन-चुन कर कुछ चुभनेवाली बातें भेजी हैं। स्त्रीके बारेमें जो कुछ खराब कहा जा सकता है, वह सब अुसने मनुस्मृतिमें से निकाला है। कुछ स्त्रियाँ बेचारी स्वयं भी कहती हैं कि हम अबला, हम अनपढ़, हम ढोर हैं। परन्तु अिससे क्या यह वर्णन स्त्रीमात्रके लिअे लागू किया जा सकता है? मनुस्मृतिमें किसीने अैसे भद्दे श्लोक घुसेड़ नहीं दिये होंगे?

अब ये बहनें पूछती हैं कि हम जैसी हैं वैसी हमें क्यों नहीं *चित्रित किया जाता? हम न तो रंभाअें और अप्सराअें हैं, और न निरी* गुलाम दासियाँ हैं। हम भी आपके जैसी स्वतंत्र मनुष्य हैं। किस लिअे आप गुड़ियोंकी तरह हमारा वर्णन करते हैं? स्त्रियोंके बारेमें

बोलते समय आपको अपनी माँ का खयाल क्यों नहीं आता ? अेक समय अैसा था कि मेरे पास ढेरों बहनें रहती थीं । दक्षिण अफ्रीकामें मैं साठेक घरोंकी स्त्रियोंका भाअी और बाप बन बैठा था । अिनमें बहुत सुन्दर और कुरूप स्त्रियाँ भी थीं । ये स्त्रियाँ अपढ़ थीं, फिर भी अुनकी वीरताको मैंने प्रकट किया और वे भी पुरुषोंकी तरह वीरताके साथ जेलमें गअीं ।

मैं आपसे कहता हूँ कि आप अपनी दृष्टि बदलिये । मुझे कहा गया है कि आजकलके साहित्यमें स्त्रीकी प्रशंसा भरी रहती है । मुझे अिस तरहकी अुनकी झूठी बड़ाअी, अुनके आँख, कान, नाक और दूसरे अंगोंका वर्णन नहीं चाहिये। क्या आप कभी अपनी माताके अंगोंका वर्णन करते हैं ? मैं तो आपसे कहता हूँ कि जब आप स्त्रीके बारेमें कलम अुठायें, तब अपनी माँको अपनी आँखके सामने रख लिया करें । यह सोचकर आप लिखेंगे, तो आपकी कलमसे जो साहित्य निकलेगा, वह अिस तरह बरसेगा, जैसे सुन्दर आकाशसे मेह बरसता है और स्त्री रूपी ज़मीनका धरतीमाताकी तरह पोषण करेगा । किन्तु आज तो आप बेचारी स्त्रीको शान्ति देनेके बजाय, अुसे प्रोत्साहन देनेके बजाय, तपा देते हैं । अिस बेचारीको अैसा लगता है कि जैसा मेरा वर्णन किया जाता है, वैसी मैं हूँ तो नहीं, परन्तु वैसी बनूँ क्यों कर? अैसे वर्णन साहित्यके अनिवार्य अंग हैं क्या? अुपनिषद, कुरान और बाअिबलमें क्या कुछ गंदा पढ़नेमें आता है? तुलसीदासमें कुछ मैला देखनेमें आता है? क्या ये बड़े ग्रंथ साहित्य नहीं हैं? बाअिबल साहित्य नहीं है? कहते हैं कि अंग्रेजी भाषाका पौन हिस्सा बाअिबलसे और पाव हिस्सा शेक्सपीयरसे बना है। अिसके बिना अंग्रेजी भाषा कहाँ, कुरानके बिना अरबी कहाँ और तुलसीके बिना हिन्दी कहाँ? आप लोग अैसा साहित्य क्यों नहीं देते? मैंने जो यह कहा है, अुस पर विचार करना, बार-बार विचार करना और बेकार मालूम हो तो अुसे फेंक देना ।

हरिजनबन्धु, २०-१२-'३६

# सच्ची शिक्षा

## दूसरा भाग

## विद्यार्थी-जीवनके प्रश्न

# १

# विद्यार्थियोंसे

## १

[१९१५ में मद्रासके विद्यार्थियोंके अभिनन्दन-पत्रके जवाबमें दिये गये भाषणमें से।]

तुमने जो सुन्दर राष्ट्रीय गीत गाया, अुसमें कविने भारतमाताका वर्णन करते हुअे जितने हो सके अुतने विशेषण काममें लिये हैं। अुसने भारतमाताको सुहासिनी, सुमधुर भाषिणी, सुवासिनी, सर्वशक्तिमती, सर्वसद्गुणवती, सत्यवती, ऋद्धिमती और महान सतयुगमें संभव हो अैसी मानव जातिसे बसी हुअी वर्णन किया है। कवि भारतमाताकी अेक अैसी भूमिके रूपमें कल्पना करता है, जो सारी दुनियाको, सारी मनुष्यजातिको शरीर-बलसे नहीं, बल्कि आध्यात्मिक शक्तिसे वशमें कर लेगी। क्या हम यह गीत गा सकते हैं? मै स्वयं अपनेसे पूछता हूँ: 'यह गीत सुनते समय खड़े हो जानेका मुझे क्या हक़ है?' कविने तो हमारे लिअे अेक आदर्श चित्रित किया है। वह अब तक अेक भविष्यकी सूचनाके रूपमें ही रहा है। कवि द्वारा भारतमाताके वर्णनमें प्रयोग किया हुआ अेक-अेक शब्द तुम लोगोंको, जिन पर भारतकी आशाअें लगी हुअी हैं, सच्चा साबित करना है। आज तो मुझे अैसा लगता है कि मातृभूमिके वर्णनमें ये विशेषण अयोग्य स्थान पर अुपयुक्त हुअे हैं। अिसलिअे कविने मातृभूमिके बारेमें जो कुछ कहा है, अुसे तुम्हें और मुझे सिद्ध करके दिखाना है।

मै तुमसे, मद्रासके विद्यार्थियोंसे और सारे भारतके विद्यार्थियोंसे पूछता हूँ कि क्या तुम्हें अैसी शिक्षा मिलती है, जो अिस आदर्शको पूरा करनेके लायक तुम्हें बनाये और जिससे तुममें भरे अुत्तम तत्त्व प्रगट

हो सकें ? या यह शिक्षा सरकारके लिअे नौकर और व्यापारी कोठियोंके लिअे गुमाश्ते तैयार करनेकी मशीन है ? जो शिक्षा तुम ले रहे हो, अुसका अुद्देश्य क्या सरकारी विभागोंमें या दूसरे किसी विभागमें नौकरी पानेका है ? यदि तुम्हारी शिक्षाका अुद्देश्य यही हो, यदि तुमने शिक्षाका यही अुद्देश्य बनाया हो, तो जो चित्र कविने खींचा है, वह कभी सिद्ध नहीं होगा। तुमने मुझे यह कहते सुना होगा या पढ़ा होगा कि मैं वर्तमान संस्कृतिका पक्का विरोधी हूँ। युरोपमें अिस समय क्या हो रहा है, अुसकी तरफ जरा नजर डालो। यदि तुम अिस निश्चय पर आये हो कि युरोप आजकी सभ्यताके पैरों तले कुचला जा रहा है, तो फिर तुम्हें और तुम्हारे बड़ोंको अपने देशमें अुस सभ्यताका फैलाव करनेसे पहले गहरा विचार करना चाहिये। किन्तु मुझे यह कहा गया है कि 'हमारे देशमें हमारे शासक यह सभ्यता फैलाते हैं, तो फिर हम क्या कर सकते हैं?' अिस बारेमें तुम भुलावेमें न आ जाना। मैं पल भरके लिअे भी यह नहीं मान सकता कि जब तक हम अुस संस्कृतिको स्वीकार करनेके लिअे तैयार न हों, तब तक कोअी भी शासक हममें अुसे जबरदस्ती फैला सकता है। और कभी अैसा हो भी कि हमारे शासक हममें अुस सभ्यताका प्रचार करते हैं, तो भी मैं मानता हूँ कि शासकोंको अस्वीकार किये बिना अुस संस्कृतिको अस्वीकार करनेके लिअे हममें काफी बल मौजूद है। मैंने बहुत बार खुले तौर पर कहा है कि ब्रिटिश जनता हमारे साथ है। मैं यहाँ यह नहीं बताना चाहता कि यह जनता हमारे साथ क्यों है। यदि भारत सन्तोंके रास्ते पर चलेगा, जिनके बारेमें हमारे सभापतिजी बोले हैं, तो मैं मानता हूँ कि वह अिस महान जनताके जरिये अेक संदेश — जड़ शक्तिका नहीं, बल्कि प्रेमकी शक्तिका सन्देश — दुनियाको पहुँचा सकेगा और अुस समय हमें खून बहाकर नहीं, बल्कि सिर्फ आत्म-बलसे अपने विजेताओंको जीतनेका सौभाग्य मिलेगा।

भारतमें होनेवाली घटनाओंका विचार करने पर मुझे लगता है कि हमारे लिअे यह निर्णय कर लेना जरूरी है कि राजनैतिक कारणोंसे

होनेवाले खूनों और लूटपाटके बारेमें हमारी क्या राय है। ये सब विदेशी तत्त्व हैं। वे हमारी जमीनमें घर नहीं कर सकेंगे। फिर भी अिस तरहके आतंकका विचार करते हुअे तुम्हें, विद्यार्थियोंको, यह सावधानी रखनी है कि तुम मनसे या हृदयसे अुसकी जरा भी हिमायत न करो। मैं सत्याग्रहीके नाते तुम्हें अिसके बजाय अेक बहुत ठोस और शक्तिशाली चीज दूँगा। तुम खुद अपनेमें ही आतंक पैदा करो। अपने भीतर ही खोज करो। जहाँ-जहाँ जुल्म दिखायी दे, वहीं तुम जरूर अुसका सामना करो; किन्तु जालिमका खून बहाकर नहीं। हमारा धर्म हमें यह नहीं सिखाता। हमारा धर्म अहिंसाके सिद्धान्त पर रचा गया है। अुसका क्रियात्मक रूप प्रेमके सिवाय और कुछ नहीं; वह प्रेम जो हमें अपने पड़ोसी या मित्र पर ही नहीं, बल्कि जो हमारे शत्रु हों अुन पर भी रखना है।

मैं अिसी बारेमें कुछ कहूँगा। यदि हमें सत्यका पालन करना हो, अहिंसाका पालन करना हो, तो अुसके साथ ही हमें निडर भी बनना होगा। हमारे शासक जो कुछ करते हैं, वह हमारी रायमें बुरा हो और हमें अैसा लगे कि अपना विचार अुन्हें बताना हमारा धर्म है, तो भले ही वह विचार राजद्रोही माना जाता हो, तो भी मैं तुमसे आग्रह करूँगा कि तुम वह विचार अुन्हें जरूर बता दो। किन्तु यह तुम्हें अपनी जोखिम पर करना है। तुम्हें अुसके फल भोगनेको तैयार रहना पड़ेगा। तुम अुसके फल भोगनेको तैयार रहोगे, फिर भी कुटिल बननेको तैयार न होगे, तो मेरी रायमें यह कहा जा सकता है कि तुमने सरकार तकको अपना विचार बतानेके अपने हकका सदुपयोग किया।

मैं ब्रिटिश राज्यका मित्र हूँ, क्योंकि मैं मानता हूँ कि ब्रिटिश साम्राज्यकी दूसरी सब प्रजाओंकी तरह मैं अपने लिअे भी साम्राज्यमें बराबरका हिस्सा माँग सकता हूँ। मैं आज वह बराबरका हिस्सा माँग भी रहा हूँ। मै पराजित प्रजाका नहीं हूँ। मैं अपनेको हारी हुअी प्रजा कहलवाता भी नहीं। किन्तु यह अेक बात ध्यानमें रखनेकी है: हमें हमारा हिस्सा

देनेका काम ब्रिटिश शासकोंको नहीं करना है । यह तो हमें स्वयं ही लेना पड़ेगा । अपनी ज़रूरतकी चीज़ मैं ले सकता हूँ; किन्तु मैं अपना फर्ज़ अदा करके ही अुसे ले सकता हूँ । अलबत्ता, हमें अपना धर्म समझनेके लिये मेक्समूलरके पास जानेकी ज़रूरत न होनी चाहिये । फिर भी वे ठीक कहते हैं कि हमारे धर्मका आधार 'अधिकार' पर नहीं, बल्कि कर्तव्य पर है । यदि तुम यह मानते हो, कि हमें जो कुछ चाहिये, वह हम अपना फ़र्ज़ अच्छी तरह अदा करके ले सकेंगे, तो फिर तुमको अपने फर्जका विचार करना चाहिये; और जिस ढंगसे तुम्हें अपना मार्ग बनानेमें किसी भी आदमीका डर नहीं रहेगा । तुम्हें सिर्फ अीश्वरका ही डर रहेगा । यह आदेश मेरे गुरु, और मै कहूँ तो तुम्हारे भी गुरु, श्री गोखलेने हमें दिया है । वह आदेश क्या है? वह आदेश भारत सेवक समितिके विधानसे मालूम हो जाता है। । मैं अुसीके अनुसार अपना जीवन बिताना चाहता हूँ । वह आदेश देशकी राजनैतिक संस्थाओं और राजनैतिक जीवनको धार्मिक रूप देनेका है । हमें अुसे तुरन्त अमलमें लाना शुरू कर देना चाहिये । अैसा हो तो विद्यार्थियोंको राजनीतिके सवालोंसे दूर रहनेकी ज़रूरत नहीं रहेगी । अुनके लिये धर्म जितना ज़रूरी है, अुतनी ही ज़रूरी राजनीति भी रहेगी । राजनीति और धर्मको अलग नहीं किया जा सकता ।

मैं जानता हूँ कि मेरे विचार तुम्हें शायद मंज़ूर न भी हों, तो भी जो कुछ मेरे अन्तरमें अुछल रहा है, वही मैं तुम्हें दे सकता हूँ । दक्षिण अफ्रीकाके अपने अनुभवके आधार पर मै यह कह सकता हूँ कि हमारे जिन देशभाअियोंको आजकलकी शिक्षा नहीं मिली है, परन्तु जिन्होंने ऋषियों द्वारा की हुअी तपस्याकी विरासत पायी है, जो अंग्रेजी साहित्यका 'ककहरा' भी नहीं जानते, जिन्हें आजकलकी शिक्षाका पता भी नहीं, वे भी अुत्तम गुण प्रकट करनेमें सफल हुअे थे । दक्षिण अफ्रीकामें हमारे अज्ञान और अशिक्षित भाअियोंके लिये जो कुछ कर दिखाना सम्भव था, वह हमारी पवित्र भूमि पर तुम्हारे और मेरे

लिअे कर दिखाना दस गुना ज्यादा संभव है। मेरी यही प्रार्थना है कि तुम्हारा और मेरा अैसा सौभाग्य हो।

## २

[यह भाषण गुरुकुलके विद्यार्थियोंके सामने १९१५ में दिया गया था।]

मैं आर्यसमाजका बहुत आभारी हूँ। मुझे अुसके आन्दोलनसे कअी बार प्रोत्साहन मिला है। मैंने अुसके अनुयायियोंमें बहुत त्यागवृत्तिकी भावना देखी है। भारतके अपने दौरेमें मैं बहुतसे आर्यसमाजियोंके सम्पर्कमें आया हूँ। वे देशके लिअे अच्छा काम कर रहे हैं। मैं तुम्हारे सम्पर्कमें आ सका हूँ, अिसके लिअे मैं महात्माजीका आभार मानता हूँ। अिसके साथ ही मैं खुले दिलसे यह बता देना चाहता हूँ कि मैं सनातनी हूँ। मुझे हिन्दू धर्मसे पूरा सन्तोष है। वह धर्म अितना विशाल है कि अुसमें हर तरहके विश्वासोंको आश्रय मिलता है। आर्यसमाजी, सिक्ख और ब्रह्मसमाजी भले ही अपनेको हिन्दुओंसे अलग समझना चाहें; किन्तु मुझे तो अिसमें शक नहीं कि आगे चलकर वे सब हिन्दूधर्ममें मिल जायँगे और अुसीसे शांति पायेंगे। दूसरी सब मनुष्यकी बनायी हुअी संस्थाओंकी तरह हिन्दू-धर्ममें भी कमियाँ और दोष हैं। सुधारके लिअे कोअी सेवक प्रयत्न करना चाहे, तो अुसके लिअे यह बड़ा क्षेत्र है। किन्तु हिन्दूधर्मसे अलग होनेके लिअे कोअी कारण नहीं।

मुझे अपने दौरेमें जगह-जगह पूछा गया है कि भारतको अिस समय किस चीज़की ज़रूरत है। जो जवाब मैंने और जगह दिया है, वही जवाब यहाँ देना मुझे ठीक मालूम होता है। मामूली तौर पर कहें तो हमें ज्यादासे ज्यादा ज़रूरत आज सच्ची **धार्मिक भावना** की है। किन्तु मैं जानता हूँ कि यह अुत्तर बहुत व्यापक होनेके कारण किसीको अिससे संतोष नहीं होगा। यह अुत्तर सब समयके लिअे सत्य है। मैं यह कहना चाहता हूँ कि हमारी धार्मिक भावना लगभग

मृतप्राय बन चुकी है, अिसलिअे हम सदा भयभीत दशामें रहते हैं। हम राजनैतिक और धार्मिक दोनों सत्ताओंसे डरते हैं। ब्राह्मणों और पण्डितोंके सामने हम अपने विचार बता नहीं सकते; और राजनैतिक सत्तासे बहुत ज्यादा डर जाते हैं। मैं मानता हूँ कि अिस तरहका बरताव करनेसे हम अुनका और अपना अहित करते हैं। धर्मगुरुओं और शासकोंकी यह अिच्छा तो नहीं होगी कि हम अुनके सामने सचाअीको छिपायें। कुछ समय पहले बम्बअीकी अेक सभामें बोलते हुअे लार्ड विलिंग्डनने अपना अनुभव बताया था कि सचमुच 'ना' कहनेकी अिच्छा होते हुअे भी हम वैसा करनेमें हिचकिचाते हैं। अिसलिअे अुन्होंने श्रोताओंको निडर बननेकी सलाह दी थी। किन्तु निडर होनेका यह मतलब कभी नहीं कि हम दूसरेके भावोंका खयाल ही न रखें या अुनका आदर न करें। चिरस्थायी और सच्चे फल पाना हो, तो हमें पहले निडर जरूर बनना होगा। यह गुण धार्मिक जाग्रतिके बिना नहीं आ सकता। हम अीश्वरसे डरेंगे तो फिर आदमीसे नहीं डरेंगे। यदि हम यह समझें कि हममें अीश्वर बसता है, जो हमारे हरअेक विचार और कामका साक्षी है, जो हमारी रक्षा करता है और हमें अच्छे रास्ते चलाता है, तो हमें तमाम दुनियामें अीश्वरके सिवाय और किसीका डर न रहे। अधिकारियोंके भी अधिकारी परमात्माकी वफादारी दूसरी सब वफादारियोंसे बढ़कर है और अुसीसे दूसरी सब वफादारियाँ सकारण बनती हैं।

जब हममें जितनी चाहिये अुतनी निडरता बढ़ जायगी, तो हमें मालूम होगा कि रुचिके अनुसार कभी भी छोड़े जा सकनेवाले स्वदेशीके जरिये नहीं, बल्कि सच्चे स्वदेशीसे ही हमारा अुद्धार हो सकेगा। स्वदेशीमें मुझे गहरा रहस्य दिखाअी देता है। मैं तो यह चाहता हूँ कि हम अपने धार्मिक, राजनैतिक और आर्थिक जीवनमें अुसे स्वीकार कर लें। यानी अुसकी सफलता मौका पड़ने पर स्वदेशी कपड़े पहन लेनेमें ही नहीं है। स्वदेशीका व्रत तो सदा ही पालना है और द्वेष या वैर भावसे

नहीं, बल्कि अपने प्यारे देशके प्रति कर्तव्य बुद्धिसे प्रेरित होकर पालना है। अिसमें शक नहीं कि विलायती कपड़ा पहन कर हम स्वदेशी भावनाकी हत्या करते हैं, किन्तु विलायती ढंगसे सिले हुअे कपड़ोंसे भी अुसकी हत्या होती है। बेशक, हमारे पहनावेका हमारी परिस्थितियोंके साथ कुछ हद तक सम्बन्ध है। खूबसूरती और अच्छाअीमें हमारी पोशाक कोट-पतलूनसे कहीं बढ़कर है। पाजामा और कमीज़ पहने हुअे हों और अुसमें से कमीज़के पल्ले अुड़ते हों, अुस पर कमर तकका कोट पहने हों और साथ ही 'नेकटाअी' बाँध रखी हो, तो यह दृश्य किसी भारतीयके लिअे खूबसूरत नहीं कहा जा सकता। स्वदेशीकी भावनाके कारण हम धर्मके बारेमें भव्य भूतकालकी कीमत लगाना और वर्तमानको बनाना सीखते हैं। युरोपमें फैले हुअे अैश-आरामसे मालूम होता है कि आजकी संस्कृतिमें राजसी और तामसी सत्ताका जोर है, जब कि पुरानी आर्य संस्कृतिमें सात्विक सत्ताका जोर है। अर्वाचीन संस्कृति मुख्यतः भोग प्रधान है, हमारी संस्कृति मुख्यतः धर्मप्रधान है। आजकी संस्कृतिमें जड़ प्रकृतिके नियमोंकी खोज होती है और मनुष्यकी बुद्धि-शक्ति चीजें पैदा करनेके साधनों और नाश करनेके हथियारोंकी खोज और बनावटमें काम आती है, जब कि हमारी संस्कृतिकी प्रवृत्ति मुख्यतः आध्यात्मिक नियम ढूँढ़नेकी है। हमारे शास्त्र साफ तौर पर बताते हैं कि सच्चे जीवनके लिअे सत्यका अुचित पालन, ब्रह्मचर्य, अहिंसा, दूसरेका धन लेनेमें संयम और दैनिक ज़रूरतोंकी चीज़ोंके सिवा दूसरी चीज़ोंका अपरिग्रह अनिवार्य है। अिसके बिना दिव्य तत्त्वका ज्ञान संभव नहीं। हमारी संस्कृति स्पष्ट कहती है कि जिसमें अहिंसा-धर्मका, जिसका क्रियात्मक रूप शुद्ध प्रेम और दया है, पूर्ण विकास हुआ है, अुसे सारी दुनिया प्रणाम करती है। अूपर बताये हुअे विचारोंकी सत्यता सिद्ध करनेवाले दृष्टान्त ज्यादा मिल सकते हैं कि जिनसे मनमें कोअी शक बाकी नहीं रहता।

हम यह देखें कि अहिंसा धर्मके राजनैतिक परिणाम क्या होंगे? हमारे शास्त्र अभयदानको अमूल्य दान बताते हैं। हम अपने शासकोंको पूर्ण

अभयदान दे दें, तो हमारा अुनके साथ कैसा सम्बन्ध होगा, अिसका भी जरा विचार करें। यदि अुन्हें विश्वास हो जाय कि हम अुनके कामके बारेमें कुछ भी खयाल रखते हों, किन्तु अुनके शरीर पर कभी हमला नहीं करेंगे, तो तुरन्त अेक दूसरेके लिअे विश्वासका वातावरण पैदा हो जाय और दोनों पक्षोंमें अितनी शुद्धता आ जाय कि अिस समय चिन्ता खड़ी करनेवाले बहुतसे सवालोंका सही और अुचित हल होनेका रास्ता निकल आये। अहिंसाका पालन करते समय यह याद रखना जरूरी है कि जिसके लिअे अहिंसावृत्ति रखी जाय, अुससे यह आशा नहीं करनी चाहिये कि वह भी वैसी ही वृत्ति रखेगा; यद्यपि यह नियम जरूर है कि जैसे-जैसे अेक तरफसे अहिंसा-पालनमें पूर्णता आती जायगी, वैसे-वैसे सामनेवाला भी अुसी तरहकी वृत्ति अपनाने लगेगा। हममें से बहुतेरे लोग अैसा मानते हैं, और अुन्हींमें से मैं भी अेक हूँ, कि हमें अपनी संस्कृतिके जरिये दुनियाको अेक सन्देश पहुँचाना है। ब्रिटिश राजके लिअे मेरी वफादारी निरी स्वार्थभरी है। अहिंसाका यह महान सन्देश तमाम दुनिया तक पहुँचानेमें मैं ब्रिटिश जातिका अुपयोग करना चाहता हूँ। किन्तु यह तभी हो सकेगा, जब हम अपने तथाकथित विजेताओंको जीत लेंगे।

* * *

मैं दो बार गुरुकुलमें आ चुका हूँ। अपने आर्यसमाजी भाअियोंके साथ कुछ महत्त्वपूर्ण मतभेद होने पर भी अुनके लिअे मेरे दिलमें पक्षपात है। आर्यसमाजके कामका सबसे अच्छा फल गुरुकुलकी स्थापना और अुसे चलानेमें दीखता है। अुसका प्रभाव महात्मा मुन्शीरामजीकी अुत्साह बढ़ानेवाली मौजूदगीके कारण है। फिर भी यह सच्ची राष्ट्रीय, स्वतंत्र और स्वाधीन संस्था है। अुसे सरकारकी सहायता या सहानुभूति जरा भी नहीं मिलती। अुसका खर्च कुछ भाग्यवान आदमियोंसे मिलने वाले रुपयेसे नहीं चलता, बल्कि बहुतसे अैसे गरीबोंके दिये हुअे दानसे चलता है, जो हर साल कॉंगड़ीकी यात्रा करनेका निश्चय किये हुअे हैं और जो खुशीसे अिस राष्ट्रीय कॉलेजके गुजारेके लिअे अपना हिस्सा देते हैं।

. . . अैसी बड़ी संस्थाके जीवनमें चौदह वर्ष तो कुछ भी नहीं हैं। यह अभी देखना है कि पिछले दो-तीन सालमें निकले हुअे विद्यार्थी क्या कर सकते हैं। जनता किसी मनुष्यकी या संस्थाकी कीमत अुसके बताये हुअे नतीजे परसे लगाती है। दूसरी किसी तरह कीमत लगाना संभव भी नहीं। जो भूलें हो जाती हैं, अुनका वह खयाल नहीं करती। वह कड़ीसे कड़ी परीक्षा लेनेवाली है। गुरुकुल और दूसरी सार्वजनिक संस्थाओंकी कीमत अन्तमें तो जनता ही करती है। अिसलिअे जो विद्यार्थी कॉलेज छोड़कर गये हैं और संसार-समुद्रमें कूद पड़े हैं, अुन पर बड़ी जिम्मेदारी है। अुन्हें सावधान रहना चाहिये। अभी तो अिस बड़े भारी प्रयोगका भला चाहनेवालोंको सृष्टिके अिस अटल नियमसे संतोष करना चाहिये कि जैसा पेड़ होता है, वैसा ही फल होता है। यह पेड़ तो सुन्दर दिखाअी देता है। अुसे पालने-पोसनेवाली अुदात्त आत्मा है। तो फिर अिसकी क्या चिन्ता कि फल कैसा आयेगा?

क्योंकि मैं गुरुकुलको चाहता हूँ, अिसलिअे संस्थाकी प्रबन्ध-कारिणी समितिको अेक-दो बातें सुझानेकी अिजाजत लेता हूँ। गुरुकुलके विद्यार्थी अपने पर भरोसा रखनेवाले और अपना गुजर चला सकनेवाले बनें, अिसके लिअे अुन्हें पक्की औद्योगिक शिक्षा मिलनेकी ज़रूरत है। मुझे मालूम है कि हमारे देशमें ८५ फी सदी जनता किसान है और १० फी सदी लोग किसानोंकी जरूरतें पूरी करनेके काममें लगे हुअे हैं। अिसलिअे हर विद्यार्थीकी पढ़ाअीमें खेती और बुनाअीका मामूली व्यावहारिक ज्ञान शामिल होना चाहिये। औजारोंका ठीक अुपयोग जाननेसे, लकड़ी सीधी फाड़ना सीखनेसे और साहुलको कायदेसे लगाकर न गिरनेवाली दीवार चुनना जाननेसे वे कुछ खोयेंगे नहीं। अिस तरह सुसज्जित हुआ नौजवान दुनियामें अपना रास्ता बनानेमें अपनेको कभी लाचार नहीं समझेगा और कभी बेरोज़गार नहीं रहेगा। अिसके सिवाय स्वास्थ्य और सफाअीके नियमों और बच्चोंके पालन-पोषणका ज्ञान भी

गुरुकुलके विद्यार्थियोंको ज़रूर देना चाहिये । मेलेके मौक़े पर सफ़ाअीके लिअे जो व्यवस्था की जानी चाहिये थी, अुसमें बहुत दोष थे । हजारोंकी संख्यामें मक्खियाँ भिनभिना रही थीं । सफ़ाअी महकमेके किसीकी भी परवाह न रखनेवाले ये अफ़सर हमें लगातार चेतावनी दे रहे थे कि सफाअी रखनेकी तरफ हमने ठीक-ठीक ध्यान नहीं/दिया । वे साफ तौर पर सुझा रहे थे कि जूठन और मैलेको अच्छी तरह गाड़ देना चाहिये । हर साल आनेवाले यात्रियोंको सफाअीके बारेमें व्यावहारिक ज्ञान देनेका यह अेक सुनहला मौका होता है । अिसे हाथसे जाने देते हैं, यह देखकर मुझे बड़ा दुःख होता है । असलमें अिस कामकी शुरुआत विद्यार्थियोंसे ही होनी चाहिये । फिर तो हर साल अुत्सव या जलमेके मौके पर व्यवस्थापकोंके पास सफ़ाअीके बारेमें व्यावहारिक ज्ञान दे सकनेवाले तीन सौ शिक्षक तैयार रहेंगे । अन्तमें, माता-पिता और प्रबंधकारिणी समितिको चाहिये कि वे विद्यार्थियोंको अंग्रेजी पोशाककी या आजकलके मौज-शौककी बन्दरोंकी-सी नकल करना सिखाकर न बिगाड़ें । यह चीज़ आगे चलकर अुनके जीवनमें रुकावट डालनेवाली सिद्ध होगी; साथ ही ये सब बातें ब्रह्मचर्यकी दुश्मन हैं । हमारे सामने जो दुष्ट लालसाअें खड़ी हैं, वे विद्यार्थियोंमें भी बसी हुअी हैं और अुन्हें भी अिनके विरुद्ध लड़ना है । अिसलिअे हमें अुनके प्रलोभनोंको बढ़ाकर अुनकी लड़ाअीको ज्यादा मुश्किल नहीं बनाना चाहिये ।

३

[यह भाषण १९१७ में भागलपुरमें बिहारी छात्र-सम्मेलनकी सातवीं बैठकके सभापति-पदसे दिया गया था ।]

. . . अिस सम्मेलनका काम अिस प्रान्तकी भाषामें ही — और वही राष्ट्रभाषा भी है — करनेका निश्चय करके तुमने दूरन्देशीसे काम लिया है । अिसके लिअे मैं तुम्हें बधाअी देता हूँ । मुझे आशा है कि तुम यह प्रथा जारी रखोगे ।

हमने मातृभाषाका अनादर किया है। अिस पापका कड़वा फल हमें ज़रूर भोगना पड़ेगा। हमारे और हमारे घरके लोगोंके बीच कितना ज्यादा फर्क पड़ गया है, अिसके साक्षी अिस सम्मेलनमें आनेवाले हम सभी हैं। हम जो कुछ सीखते हैं वह अपनी माताओंको नहीं समझाते और न समझा सकते हैं। जो शिक्षा हमें मिलती है, अुसका प्रचार हम अपने घरमें नहीं करते और न कर सकते हैं। अैसा दुःसह परिणाम अंग्रेज़ कुटुम्बोंमें कभी नहीं देखा जाता। अिंग्लैण्डमें और दूसरे देशोंमें जहाँ शिक्षा मातृभाषामें दी जाती है, वहाँ विद्यार्थी स्कूलोंमें जो कुछ पढ़ते हैं, वह घर आकर अपने-अपने माता-पिताको कह सुनाते हैं और घरके नौकर-चाकरों और दूसरे लोगोंको भी वह मालूम हो जाता है। अिस तरह जो शिक्षा बच्चोंको स्कूलमें मिलती है, अुसका लाभ घरके लोगोंको भी मिल जाता है। हम तो स्कूल-कॉलेजमें जो कुछ पढ़ते हैं, वह वहीं छोड़ आते हैं। विद्या हवाकी तरह बहुत आसानीसे फैल सकती है। किन्तु जैसे कंजूस अपना धन गाड़कर रखता है, वैसे ही हम अपनी विद्याको अपने मनमें ही भर रखते हैं और अिसलिअे अुसका फायदा औरोंको नहीं मिलता। मातृभाषाका अनादर माँके अनादरके बराबर है। जो मातृभाषाका अपमान करता है, वह स्वदेशभक्त कहलाने लायक नहीं। बहुतसे लोग अैसा कहते सुने जाते हैं कि 'हमारी भाषामें अैसे शब्द नहीं, जिनमें हमारे अूँचे विचार प्रगट किये जा सकें।' किन्तु यह कोअी भाषाका दोष नहीं। भाषाको बनाना और बढ़ाना हमारा अपना ही कर्तव्य है। अेक समय अैसा था, जब अंग्रेजी भाषाकी भी यही हालत थी। अंग्रेजीका विकास अिसलिअे हुआ कि अंग्रेज़ आगे बढ़े और उन्होंने भाषाकी अुन्नति कर ली। यदि हम मातृभाषाकी अुन्नति नहीं कर सके और हमारा यह सिद्धान्त हो कि अंग्रेजीके जरिये ही हम अपने अूँचे विचार प्रकट कर सकते हैं और अुनका विकास कर सकते हैं, तो अिसमें जरा भी शक नहीं कि हम सदाके लिअे गुलाम बने रहेंगे। जब तक हमारी मातृभाषामें हमारे

सारे विचार प्रगट करनेकी शक्ति नहीं आ जाती, और जब तक वैज्ञानिक शास्त्र मातृभाषामें नहीं समझाये जा सकते, तब तक राष्ट्रको नया ज्ञान नहीं मिल सकेगा। यह तो स्वयंसिद्ध है कि :

१. सारी जनताको नये ज्ञानकी ज़रूरत है;

२. सारी जनता कभी अंग्रेजी नहीं समझ सकती;

३. यदि अंग्रेजी पढ़नेवाला ही नया ज्ञान प्राप्त कर सकता हो, तो सारी जनताको नया ज्ञान मिलना असंभव है।

अिसका मतलब यह हुआ कि पहली दो बातें सही हों, तो जनताका नाश ही हो जायेगा। किन्तु अिसमें भाषाका दोष नहीं! तुलसीदासजी अपने दिव्य विचार हिन्दीमें प्रगट कर सके थे। रामायण जैसे ग्रन्थ बहुत ही थोड़े हैं। गृहस्थाश्रमी होकर भी सब कुछ त्याग कर देनेवाले महान देशभक्त भारत-भूषण पण्डित मदनमोहन मालवीयजीको अपने विचार हिन्दीमें प्रकट करनेमें जरा भी कठिनाअी नहीं होती। अुनका अंग्रेजी भाषण चाँदीकी तरह चमकता हुआ कहा जाता है; किन्तु पण्डितजीका हिन्दी भाषण अिस तरह चमकता है, जैसे मानसरोवरसे निकलती हुअी गंगाका प्रवाह सूर्यकी किरणोंसे सोनेकी तरह चमकता है। मैंने कितने ही मौलवियोंको धर्मबोध करते हुअे सुना है। वे अपने गंभीर विचार भी अपनी मातृभाषामें ही बड़ी आसानीसे प्रगट कर सकते हैं। तुलसीदासजीकी भाषा सम्पूर्ण है, अविनाशी है। अिस भाषामें हम अपने विचार प्रकट न कर सकें, तो दोष हमारा ही है।

अैसा होनेका कारण स्पष्ट है: हमारी शिक्षाका माध्यम अंग्रेजी है। अिस भारी दोषको दूर करनेमें सब मदद कर सकते हैं। मुझे लगता है कि विद्यार्थी लोग अिस मामलेमें सरकारको विनयके साथ सूचना कर सकते हैं। साथ ही साथ विद्यार्थियोंके पास तुरन्त करने लायक यह अुपाय भी है कि वे जो कुछ स्कूलमें पढ़ें, अुसका अनुवाद हिन्दीमें करते रहें, जहाँ तक हो सके अुसका प्रचार घरमें करें और आपसके व्यवहारमें मातृभाषाको ही काममें लेनेकी प्रतिज्ञा कर लें। अेक

बिहारी दूसरे बिहारीके साथ अंग्रेजी भाषामें पत्र-व्यवहार करे, यह मेरे लिअे तो असह्य है। मैंने लाखों अंग्रेजोंको बातचीत करते सुना है। वे दूसरी भाषाअें जानते हैं, किन्तु मैंने दो अंग्रेजोंको आपसमें पराअी भाषामें बोलते कभी नहीं सुना। जो अत्याचार हम भारतमें करते हैं, अुसका अुदाहरण दुनियाके अितिहासमें कहीं नहीं मिलेगा।

अेक वेदान्ती कवि लिख गया है कि विचारके बिना शिक्षा व्यर्थ है। किन्तु अूपर बताये हुअे कारणोंसे विद्यार्थीका जीवन बहुत कुछ विचारशून्य दिखाअी देता है। विद्यार्थी तेजहीन हो गये हैं; अुनमें नयापन नहीं होता और अधिकतर निरुत्साही नजर आते हैं।

मुझे अंग्रेजी भाषासे वैर नहीं। अिस भाषाका भण्डार अटूट है। यह राजभाषा है और ज्ञानके कोषसे भरी-पूरी है। फिर भी मेरी यह राय है कि हिन्दुस्तानके सब लोगोंको अिसे सीखनेकी जरूरत नहीं। किन्तु अिस बारेमें मैं ज्यादा नहीं कहना चाहता। विद्यार्थी अंग्रेजी पढ़ रहे हैं, और जब तक दूसरी योजना नहीं होती और आजकी शालाओंमें परिवर्तन नहीं होता, तब तक विद्यार्थियोंके लिअे दूसरा कोअी अुपाय नहीं। अिसलिअे मैं मातृभाषाके अिस बड़े विषयको यहीं समाप्त कर देता हूँ। मैं अितनी ही प्रार्थना करूँगा कि आपसके व्यवहारमें और जहाँ-जहाँ हो सके, वहाँ सब लोग मातृभाषाका ही अुपयोग करें; और विद्यार्थियोंके सिवाय जो महाशय यहाँ आये हैं, वे मातृभाषाको शिक्षाका माध्यम बनानेका भगीरथ प्रयत्न करें।

जैसा मैंने अूपर कहा है, अधिकतर विद्यार्थी निरुत्साही दीखते हैं। बहुतसे विद्यार्थियोंने मुझसे सवाल किया है कि, 'मुझे क्या करना चाहिये? मैं देशसेवा किस तरह कर सकता हूँ? आजीविकाके लिअे मुझे क्या करना ठीक है?' मुझे मालूम हुआ है कि आजीविकाके लिअे विद्यार्थियोंको बड़ी चिन्ता रहा करती है। अिन प्रश्नोंका अुत्तर सोचनेसे पहले यह विचार करना जरूरी है कि शिक्षाका अुद्देश्य क्या है?

हक्सलेने कहा है कि शिक्षाका अुद्देश्य चरित्रनिर्माण है । भारतके ऋषि-मुनियोंने कहा है कि वेद आदि सारे शास्त्र जानने पर भी यदि कोअी आत्माको न पहचान सके, सब बन्धनोंसे मुक्त होनेके लायक न बन सके, तो अुसका ज्ञान बेकार है । दूसरा वचन यह है कि जिसने आत्माको जान लिया, अुसने सब कुछ जान लिया । अक्षर-ज्ञानके बिना भी आत्म-ज्ञान होना संभव है । पैगम्बर मुहम्मद साहबने अक्षर-ज्ञान नहीं पाया था । अीसा मसीहने किसी स्कूलमें शिक्षा नहीं ली थी । अितने पर भी यह कहना कि अिन महात्माओंको आत्मज्ञान नहीं हुआ था, धृष्टता ही होगी । वे हमारे विद्यालयोंमें परीक्षा देने नहीं आये थे । फिर भी हम अुन्हें पूज्य मानते हैं । विद्याका सब फल अुन्हें मिल चुका था । वे महात्मा थे । अुनकी देखा-देखी यदि हम स्कूल-कॉलेज छोड़ दें, तो हम कहींके न रहें । किन्तु हमें भी अपनी आत्माका ज्ञान चारित्र्यसे ही मिल सकता है । चारित्र्य क्या है ? सदाचारकी निशानी क्या है ? सदाचारी पुरुष सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अस्तेय, निर्भयता आदि व्रतोंका पालन करनेका प्रयत्न करता रहता है । वह प्राण छोड़ देगा, किन्तु सत्यको कभी न छोड़ेगा । वह स्वयं मर जायगा, परन्तु दूसरेको नहीं मारेगा । वह स्वयं दुःख अुठा लेगा, परन्तु दूसरेको दुःख नहीं देगा । अपनी स्त्री पर भी भोग-दृष्टि न रखकर अुसके साथ मित्रकी तरह रहेगा । सदाचारी अिस तरह ब्रह्मचर्य रखकर शरीरके सत्वको भरसक बचानेका प्रयत्न करता है । वह चोरी नहीं करता, रिश्वत नहीं लेता । वह अपना और दूसरोंका समय खराब नहीं करता । वह अकारण धन अिकट्ठा नहीं करता । वह अैश-आराम नहीं बढ़ाता और सिर्फ शौककी खातिर निकम्मी चीजें काममें नहीं लेता ; परन्तु सादगीमें ही सन्तोष मानता है । वह पक्का विचार रखकर कि 'मैं आत्मा हूँ, शरीर नहीं हूँ और आत्माको मारनेवाला दुनियामें पैदा नहीं हुआ,' वह आधि, व्याधि और अुपाधिका डर छोड़ देता है और चक्रवर्ती सम्राटसे भी नहीं दबता; किन्तु निडर होकर काम करता चला जाता है ।

यदि हमारे विद्यालयोंसे अूपर कहे हुअे परिणाम न निकल सकें, तो अिसमें विद्यार्थी, शिक्षा और शिक्षक तीनोंका दोष होना चाहिये। किन्तु चरित्रकी कमी पूरी करनेका काम तो विद्यार्थियोंके ही हाथमें है। यदि वे चरित्र-निर्माण नहीं करना चाहते हों, तो शिक्षक या पुस्तक अुन्हें यह चीज़ नहीं दे सकते। अिसलिअे, जैसा मैंने अूपर कहा है, शिक्षाका अुद्देश्य समझना ज़रूरी है। चरित्रवान बननेकी अिच्छा रखनेवाला विद्यार्थी किसी भी पुस्तकसे चरित्रका पाठ ले लेगा। तुलसीदासजीने कहा है:

'जड़ चेतन गुण दोषमय, विश्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुण गहहिं पय, परिहरि वारि विकार॥'

रामचन्द्रजीकी मूर्तिके दर्शन करनेकी अिच्छा रखनेवाले तुलसीदासजीको कृष्णकी मूर्ति रामके रूपमें दिखाअी दी। हमारे कितने ही विद्यार्थी विद्यालयका नियम पालनेके लिअे बाअिबलके वर्गमें जाते हैं, फिर भी बाअिबलके ज्ञानसे अछूते रहते हैं। दोष निकालनेकी नीयतसे गीता पढ़नेवालेको गीतामें दोष मिल जायँगे। मोक्ष चाहनेवालेको गीता मोक्षका सबसे अच्छा साधन बताती है। कुछ लोगोंको कुरान शरीफ़में सिर्फ़ दोष ही दोष दिखाअी देते हैं; दूसरे अुसे पढ़कर व मनन करके अिस संसार-सागरसे पार होते हैं। अिस तरह देखने पर, जैसी भावना होती है, वैसी ही सिद्धि होती है। किन्तु मुझे डर है कि बहुतसे विद्यार्थी अुद्देश्यका खयाल नहीं करते। वे रिवाजके मारे ही स्कूल जाते हैं। कुछ आजीविका या नौकरीके हेतुसे जाते हैं। मेरी तुच्छ बुद्धिके अनुसार शिक्षाको आजीविकाका साधन समझना नीच वृत्ति कही जायेगी। आजीविकाका साधन शरीर है और पाठशाला चरित्र-निर्माणकी जगह है। अुसे शरीरकी ज़रूरतें पूरी करनेका साधन समझना चमड़ेकी जरासी रस्सीके लिअे भैंसको मारनेके बराबर है। शरीरका पोषण शरीर द्वारा ही होना चाहिये। आत्माको अुस काममें कैसे लगाया जा सकता है? 'तू अपने पसीनेसे अपनी

रोटी कमा ले', यह अैसा मसीहका महावाक्य है । श्रीमद् भगवद्गीतामें भी यही ध्वनि निकलती जान पड़ती है । अिस दुनियामें ९९ फी सदी लोग अिस नियमके अधीन रहते हैं और निडर बन जाते हैं । जिसने दाँत दिये हैं, वही चबेना भी देगा, यह सच्ची बात है । किन्तु यह आलसीके लिअे नहीं कही गअी है । विद्यार्थियोंको शुरूमें ही यह सीख लेना जरूरी है कि अुन्हें अपनी आजीविका अपने बाहुबलसे ही चलानी है । अुसके लिअे मज़दूरी करनेमें शर्म नहीं आनी चाहिये । अिससे मेरा यह मतलब नहीं कि हम सब हमेशा कुदाली ही चलाया करें । परन्तु यह समझनेकी ज़रूरत है कि दूसरा धंधा करते हुअे भी आजीविकाके लिअे कुदाली चलानेमें जरा भी बुराअी नहीं और हमारे मज़दूर भाअी हमसे नीचे नहीं हैं । अिस सिद्धान्तको मानकर, अिसे अपना आदर्श समझकर, हम किसी भी धंधेमें पड़ें, तो भी हमें अपने काम करनेके ढंगमें शुद्धता और असाधारणता मालूम होगी । और अिससे हम लक्ष्मीके दास नहीं बनेंगे; लक्ष्मी हमारी दासी बनकर रहेगी । यदि यह विचार सही हो, तो विद्यार्थियोंको मज़दूरी करनेकी आदत डालनी पड़ेगी । ये बातें मैंने धन कमानेके अुद्देश्यसे शिक्षा पानेवालोंके लिअे कही हैं ।

जो विद्यार्थी शिक्षाका अुद्देश्य सोचे बिना पाठशाला जाता है, अुसे वह अुद्देश्य समझ लेना चाहिये । वह आज ही निश्चय कर सकता है कि 'मैं आजसे पाठशालाको चरित्र-निर्माणका साधन समझूँगा ।' मुझे पूरा भरोसा है कि अैसा विद्यार्थी अेक महीनेमें अपने चरित्रमें जबरदस्त परिवर्तन कर डालेगा और अुसके साथी भी अुसकी गवाही देंगे । यह शास्त्रका वचन है कि हम जैसे विचार करते हैं, वैसे ही बन जाते हैं ।

बहुतसे विद्यार्थी अैसा मानते हैं कि शरीरके लिअे ज्यादा प्रयत्न करना ठीक नहीं । किन्तु शरीरके लिअे व्यायाम बहुत ज़रूरी है । जिस विद्यार्थीके पास शरीर-सम्पत्ति नहीं, वह क्या कर सकेगा ? जैसे दूधको कागजके

बरतनमें रखनेसे वह नहीं रह सकता, वैसे ही शिक्षारूपी दूधका विद्यार्थियोंके कागज जैसे शरीरमें से निकल जाना संभव है। शरीर आत्माके रहनेकी जगह होनेके कारण तीर्थ जैसा पवित्र है। अुसकी रक्षा करनी चाहिये। सुबह तड़के डेढ़ घंटा और शामको डेढ़ घण्टा साफ़ हवामें नियमसे और अुत्साहके साथ घूमनेसे शरीरमें शक्ति बढ़ती है और मन प्रसन्न रहता है। और अैसा करनेमें लगाया हुआ समय बरबाद नहीं होता। अैसे व्यायाम और आरामसे विद्यार्थीकी बुद्धि तेज़ होगी और वह सब बातें जल्दी याद कर लेगा। मुझे लगता है कि गेंद-बल्ला या बॉल-बैट अिस ग़रीब देशके लिअे ठीक नहीं। हमारे देशमें निर्दोष और कम खर्चवाले बहुतसे खेल हैं।

विद्यार्थी जीवन निर्दोष होना चाहिये। जिसकी बुद्धि निर्दोष है, अुसे ही शुद्ध आनन्द मिल सकता है। अुसे दुनियामें आनन्द लेनेको कहना ही अुसका आनन्द छीन लेनेके बराबर है। जिसने यह निश्चय कर लिया हो कि 'मुझे अूँचा दरजा पाना है,' अुसे वह मिल जाता है। निर्दोष बुद्धिसे रामचन्द्रने चन्द्रमाकी अिच्छा की, तो अुन्हें चन्द्रमा मिल गया।

अेक तरहसे सोचने पर जगत मिथ्या मालूम होता है और दूसरी तरहसे देखने पर वह सत्य मालूम होता है। विद्यार्थियोंके लिअे तो जगत है ही, क्योंकि अुन्हें अिसी जगतमें पुरुषार्थ करना है। रहस्य समझे बिना जगतको मिथ्या कह कर मनमानी करनेवाला और जगतको छोड़ देनेका दावा करनेवाला भले ही सन्यासी हो, किन्तु वह मिथ्याज्ञानी है।

अब मैं धर्मकी बात पर आ गया। जहाँ धर्म नहीं वहाँ विद्या, लक्ष्मी, स्वास्थ्य आदिका भी अभाव होता है। धर्मरहित स्थितिमें बिलकुल शुष्कता होती है, शून्यता होती है। हम धर्मकी शिक्षा खो बैठे हैं। हमारी पढ़ाअीमें धर्मको जगह नहीं दी गअी। यह तो बिना दूल्हेकी बरात जैसी बात है। धर्मको जाने बिना विद्यार्थी निर्दोष आनन्द नहीं

ले सकते । यह आनन्द लेनेके लिअे शास्त्रोंका पढ़ना, शास्त्रोंका चिन्तन करना और विचारके अनुसार कार्य करना जरूरी है । सुबह अुठते ही सिगरेट पीनेसे या निकम्मी बातचीत करनेसे न अपना भला होता है और न दूसरोंका भला होता है । नज़ीरने कहा है कि चिड़ियाँ भी चूँ-चूँ करके सुबह-शाम अीश्वरका नाम लेती हैं, किन्तु हम तो लम्बी तानकर सोये रहते हैं । किसी भी तरह धर्मकी शिक्षा पाना विद्यार्थीका कर्तव्य है । पाठशालाओंमें धर्मकी शिक्षा दी जाय या न दी जाय, किन्तु अिस समय यहाँ आये हुअे विद्यार्थियोंसे मेरी प्रार्थना है कि वे अपने जीवनमें धर्मका तत्त्व दाखिल कर दें । धर्म क्या है? धर्मकी शिक्षा किस तरहकी हो सकती है? अिन बातोंका विचार अिस जगह नहीं हो सकता । परन्तु अितनी-सी व्यावहारिक सलाह अनुभवके आधार पर देता हूँ कि तुम रामचरितमानसके और भगवद्गीताके भक्त बनो । तुम्हारे पास 'मानस' रूपी रत्न आ पड़ा है । अुसे ग्रहण कर लो । किन्तु अितना याद रखना कि अिन दो ग्रंथोंकी पढ़ाअी धर्म समझनेके लिअे करनी है । अिन ग्रन्थोंके लिखनेवाले ऋषियोंका ध्येय अितिहास लिखना नहीं था, बल्कि धर्म और नीतिकी शिक्षा देना था । करोड़ों आदमी अिन ग्रन्थोंको पढ़ते हैं और अपना जीवन पवित्र करते हैं । वे निर्दोष बुद्धिसे अिनका अध्ययन करते हैं और अुससे निर्दोष आनन्द लेकर अिस संसारमें विचरते हैं । मुसलमान विद्यार्थियोंके लिअे कुरान शरीफ़ सबसे अूँचा ग्रन्थ है । अुन्हें भी मैं अिस ग्रन्थका धर्मभावसे अध्ययन करनेकी सलाह देता हूँ । कुरान शरीफ़का रहस्य जानना चाहिये । मेरा यह भी विचार है कि हिन्दू-मुसलमानोंको अेक दूसरेके धर्मग्रन्थोंको विनयके साथ पढ़ना चाहिये और समझना चाहिये ।

अिस रमणीय विषयको छोड़कर मैं फिर प्राकृत विषय पर आता हूँ । यह प्रश्न पूछा जाता है कि विद्यार्थियोंका राजनैतिक मामलोंमें भाग लेना ठीक है या नहीं? मैं कारण बताये बिना अिस विषयमें अपनी राय बताता हूँ । राजनैतिक क्षेत्रके दो भाग हैं: अेक सिर्फ

शास्त्रका और दूसरा शास्त्र पर अमल करनेका । विद्यार्थियोंके लिअे शास्त्रके प्रदेशमें जाना ज़रूरी है, किन्तु अुसके व्यवहारके प्रदेशमें अुतरना हानिकारक है । विद्यार्थी शास्त्रकी शिक्षा लेने या राजनीति सीखनेके ध्येयसे राजनैतिक सभाओंमें, कांग्रेसमें जा सकते हैं । अैसे सम्मेलन अुन्हें पदार्थपाठ देनेवाले साबित होते हैं । अुनमें जानेकी अुन्हें पूरी आज़ादी होनी चाहिये और जो प्रतिबन्ध अभी लगाया गया है, अुसे दूर करानेका पूरा प्रयत्न होना चाहिये । अैसी सभाओंमें विद्यार्थी बोल नहीं सकते, राय नहीं दे सकते । किन्तु यदि पढ़ाअीके काममें रुकावट न होती हो, तो वे स्वयंसेवकका काम कर सकते हैं । मालवीयजीकी सेवा करनेका अवसर कौन विद्यार्थी छोड़ सकता है? विद्यार्थियोंको दलबन्दीसे दूर रहना चाहिये । तटस्थ या निष्पक्ष रहकर जनताके नेताओं पर पूज्य भाव रखना चाहिये । अुनके गुण-दोषोंकी तुलना करनेका काम अुनका नहीं । विद्यार्थी तो गुणोंके लेनेवाले होते हैं; वे गुणोंकी पूजा करते हैं ।

बड़ोंको पूज्य समझकर अुनकी बातोंका आदर करना विद्यार्थियोंका धर्म है । यह बात ठीक है । जिसने आदर करना नहीं सीखा, अुसे आदर नहीं मिलता । धृष्टता विद्यार्थियोंको शोभा नहीं देती । अिस बारेमें भारतमें विचित्र हालत पैदा हो गअी है : बड़े बड़प्पन छोड़ते दिखाअी दे रहे हैं या अपनी मर्यादा नहीं समझते । अैसे समय विद्यार्थी क्या करें? मैंने अैसी कल्पना की है कि विद्यार्थियोंमें धर्म-वृत्ति होनी चाहिये । धर्म पर चलनेवाले विद्यार्थियोंके सामने धर्मसंकट आ पड़े, तो अुन्हें प्रल्हादको याद करना चाहिये । अिस बालकने जिस समय और जिस हालतमें पिताकी आज्ञाको बड़े आदरके साथ तोड़ा, वैसे समय और वैसी हालतमें हम भी आदरके साथ अुस प्रकारके बड़ोंकी आज्ञा माननेसे अिनकार कर सकते हैं । अिस मर्यादाके बाहर जाकर किया हुआ अनादर दोषमय है । बड़ोंका अपमान करनेमें प्रजाका नाश है । बड़प्पन सिर्फ अुम्रमें ही नहीं, अुम्रके कारण मिले हुअे ज्ञान, अनुभव और चतुराअीमें

भी है। जहाँ ये तीनों चीज़ें न हों, वहाँ सिर्फ अुम्रके कारण बड़प्पन रहता है। किन्तु सिर्फ अुम्रकी ही पूजा कोअी नहीं करता।

अैसा प्रश्न पूछा जाता है कि विद्यार्थी किस प्रकारकी देशसेवा कर सकता है? अिसका सीधा अुत्तर यह है कि विद्यार्थी विद्या अच्छी तरह प्राप्त करे और अैसा करते हुअे शरीरकी तंदुरुस्ती बनाये रखे और यह विद्याध्ययन देशके लिअे करनेका आदर्श सामने रखे। मुझे विश्वास है कि अैसा करके विद्यार्थी पूरी तरह देशसेवा करता है। विचारपूर्वक जीवन व्यतीत करके और स्वार्थ छोड़कर परोपकार करनेका ध्यान रखकर हम मेहनत किये बिना भी बहुत कुछ काम कर सकते हैं। अैसा अेक काम मैं बताना चाहता हूँ। तुमने रेलके यात्रियोंकी तकलीफोंके बारेमें मेरा पत्र अखबारोंमें पढ़ा होगा। मैं यह मानता हूँ कि तुममें से ज्यादातर विद्यार्थी तीसरे दरजेमें सफ़र करनेवाले होंगे। तुमने देखा होगा कि मुसाफिर गाड़ीमें थूकते हैं; पान-तम्बाकू चबाकर जो छूँछ निकलती है अुसे भी वहीं थूकते हैं; केले-सन्तरे वगैरा फलोंके छिलके और जूठन भी गाड़ीमें ही फेंकते हैं; पाखानेका भी सावधानीसे अुपयोग नहीं करते, अुसे भी खराब कर डालते हैं; दूसरोंका खयाल किये बिना सिगरेट, बीड़ी पीते हैं। जिस डब्बेमें हम बैठते हैं, अुस डब्बेके मुसाफिरोंको गाड़ीमें गंदगी करनेसे होनेवाली हानियाँ समझा सकते हैं। ज्यादातर मुसाफिर विद्यार्थियोंका आदर करते हैं और अुनकी बात सुनते हैं। लोगोंको सफाअीके नियम समझानेका बहुत अच्छा मौका छोड़ नहीं देना चाहिये। स्टेशन पर खानेकी जो चीज़ें बेची जाती हैं, वे गंदी होती हैं; अैसी गंदगी मालूम हो, तब विद्यार्थियोंका कर्तव्य है कि वे ट्रैफिक मैनेजरका ध्यान अुस तरफ खींचें। ट्रैफिक मैनेजर भले ही जवाब न दे। पत्र भी हिन्दी भाषामें लिखना चाहिये। अिस तरह बहुतसे पत्र जायेंगे, तो ट्रैफिक मैनेजरको विचार करना पड़ेगा। यह काम आसानीसे हो सकता है, किन्तु अिसका नतीजा बड़ा निकल सकता है।

मैं तम्बाकू और पान खानेके बारेमें बोला हूँ। मेरी नम्र रायमें तम्बाकू व पान खानेकी आदत खराब और गंदी है। हम सब स्त्री-पुरुष अिस आदतके गुलाम हो गये हैं। अिस गुलामीसे हमें छूटना चाहिये। कोअी अनजान आदमी भारतमें आ पहुँचे, तो अुसे ज़रूर अैसा लगेगा कि हम दिन भर कुछ न कुछ खाते रहते हैं। संभव है पानमें अन्नको पचानेका थोड़ा बहुत गुण हो, किन्तु नियमसे खाया हुआ अन्न पान वगैराकी मददके बिना पच सकता है। नियमके साथ खानेसे पानकी ज़रूरत नहीं रहती। पानमें कोअी स्वाद भी नहीं। जरदा भी ज़रूर छोड़ना चाहिये। विद्यार्थियोंको सदा संयम पालना चाहिये। तम्बाकू पीनेकी आदतका भी विचार करना ज़रूरी है। अिस मामलेमें हमारे शासकोंने हमारे सामने बड़ा बुरा अुदाहरण रखा है। वे जहाँ-तहाँ सिगरेट पीया करते हैं। अुसके कारण हम भी अुसे फैशन समझकर मुँह को चिमनी बनाते हैं। यह बतानेके लिअे बहुतसी पुस्तकें लिखी गअी हैं कि तम्बाकू पीनेसे नुकसान होता है। हम अैसे समयको कलियुग कहते हैं। अीसाअी कहते हैं कि जिस समय जनतामें स्वार्थ, अनीति, दुर्व्यसन फैल जायँगे, अुस समय अीसा मसीह फिर अवतार लेंगे। अिसमें कितना मानने लायक है, अिसका मैं विचार नहीं करता। फिर भी मुझे मालूम होता है कि शराब, तम्बाकू, कोकीन, अफ़ीम, गाँजा, भंग आदि व्यसनोंसे दुनिया बहुत दुःख पा रही है। अिस जालमें हम सब फँस गये हैं, अिसलिअे हम अुसके बुरे नतीजोंका ठीक-ठीक अंदाज नहीं लगा सकते। मेरी प्रार्थना है कि तुम विद्यार्थी लोग अैसे व्यसनोंसे दूर रहो।

* * *

भाषणोंका अुद्देश्य ज्ञान प्राप्त करके अुसके अनुसार बरताव करना है। तुममें से कितने विद्यार्थियोंने विदुषी अेनी बेसेंटकी सलाह मानकर देशी पोशाक पसन्द की, खान-पान सादा बनाया और गंदी बातें छोड़ीं? प्रोफेसर जदुनाथ सरकारकी सलाहके मुताबिक छुट्टीके दिनोंमें गरीबोंको

भी है। जहाँ ये तीनों चीज़ें न हों, वहाँ सिर्फ़ अुम्रके कारण बड़प्पन रहता है। किन्तु सिर्फ़ अुम्रकी ही पूजा कोअी नहीं करता।

अैसा प्रश्न पूछा जाता है कि विद्यार्थी किस प्रकारकी देशसेवा कर सकता है? अिसका सीधा अुत्तर यह है कि विद्यार्थी विद्या अच्छी तरह प्राप्त करे और अैसा करते हुअे शरीरकी तंदुरुस्ती बनाये रखे और यह विद्याध्ययन देशके लिअे करनेका आदर्श सामने रखे। मुझे विश्वास है कि अैसा करके विद्यार्थी पूरी तरह देशसेवा करता है। विचारपूर्वक जीवन व्यतीत करके और स्वार्थ छोड़कर परोपकार करनेका ध्यान रखकर हम मेहनत किये बिना भी बहुत कुछ काम कर सकते हैं। अैसा अेक काम मैं बताना चाहता हूँ। तुमने रेलके यात्रियोंकी तकलीफोंके बारेमें मेरा पत्र अखबारोंमें पढ़ा होगा। मैं यह मानता हूँ कि तुममें से ज्यादातर विद्यार्थी तीसरे दरजेमें सफ़र करनेवाले होंगे। तुमने देखा होगा कि मुसाफिर गाड़ीमें थूकते हैं; पान-तम्बाकू चबाकर जो झूँठ निकलती है अुसे भी वहीं थूकते हैं; केले-सन्तरे वगैरा फलोंके छिलके और जूठन भी गाड़ीमें ही फेंकते हैं; पाखानेका भी सावधानीसे अुपयोग नहीं करते, अुसे भी खराब कर डालते हैं; दूसरोंका खयाल किये बिना सिगरेट, बीड़ी पीते हैं। जिस डब्बेमें हम बैठते हैं, अुस डब्बेके मुसाफिरोंको गाड़ीमें गंदगी करनेसे होनेवाली हानियाँ समझा सकते हैं। ज्यादातर मुसाफिर विद्यार्थियोंका आदर करते हैं और अुनकी बात सुनते हैं। लोगोंको सफ़ाअीके नियम समझानेका बहुत अच्छा मौका छोड़ नहीं देना चाहिये। स्टेशन पर खानेकी जो चीज़ें बेची जाती हैं, वे गंदी होती हैं; अैसी गंदगी मालूम हो, तब विद्यार्थियोंका कर्तव्य है कि वे ट्रैफिक मैनेजरका ध्यान अुस तरफ़ खींचें। ट्रैफिक मैनेजर भले ही जवाब न दे। पत्र भी हिन्दी भाषामें लिखना चाहिये। जिस तरह बहुतसे पत्र जायेंगे, तो ट्रैफिक मैनेजरको विचार करना पड़ेगा। यह काम आसानीसे हो सकता है, किन्तु अिसका नतीजा बड़ा निकल सकता है।

मैं तम्बाकू और पान खानेके बारेमें बोला हूँ। मेरी नम्र रायमें तम्बाकू व पान खानेकी आदत खराब और गंदी है। हम सब स्त्री-पुरुष अिस आदतके गुलाम हो गये हैं। अिस गुलामीसे हमें छूटना चाहिये। कोअी अनजान आदमी भारतमें आ पहुँचे, तो अुसे ज़रूर अैसा लगेगा कि हम दिन भर कुछ न कुछ खाते रहते हैं। संभव है पानमें अन्नको पचानेका थोड़ा बहुत गुण हो, किन्तु नियमसे खाया हुआ अन्न पान वगैराकी मददके बिना पच सकता है। नियमके साथ खानेसे पानकी ज़रूरत नहीं रहती। पानमें कोअी स्वाद भी नहीं। जरदा भी ज़रूर छोड़ना चाहिये। विद्यार्थियोंको सदा संयम पालना चाहिये। तम्बाकू पीनेकी आदतका भी विचार करना ज़रूरी है। अिस मामलेमें हमारे शासकोंने हमारे सामने बड़ा बुरा अुदाहरण रखा है। वे जहाँ-तहाँ सिगरेट पीया करते हैं। अुसके कारण हम भी अुसे फैशन समझकर मुँह को चिमनी बनाते हैं। यह बतानेके लिअे बहुतसी पुस्तकें लिखी गअी हैं कि तम्बाकू पीनेसे नुकसान होता है। हम अैसे समयको कलियुग कहते हैं। अीसाअी कहते हैं कि जिस समय जनतामें स्वार्थ, अनीति, दुर्व्यसन फैल जायँगे, अुस समय अीसा मसीह फिर अवतार लेंगे। अिसमें कितना मानने लायक है, अिसका मैं विचार नहीं करता। फिर भी मुझे मालूम होता है कि शराब, तम्बाकू, कोकीन, अफ़ीम, गाँजा, भंग आदि व्यसनोंसे दुनिया बहुत दुःख पा रही है। अिस जालमें हम सब फँस गये हैं, अिसलिअे हम अुसके बुरे नतीजोंका ठीक-ठीक अंदाज नहीं लगा सकते। मेरी प्रार्थना है कि तुम विद्यार्थी लोग अैसे व्यसनोंसे दूर रहो।

* * *

भाषणोंका अुद्देश्य ज्ञान प्राप्त करके अुसके अनुसार बरताव करना है। तुममें से कितने विद्यार्थियोंने विदुषी अेनी बेसेंटकी सलाह मानकर देशी पोशाक पसन्द की, खान-पान सादा बनाया और गंदी बातें छोड़ीं? प्रोफेसर जदुनाथ सरकारकी सलाहके मुताबिक छुट्टीके दिनोंमें गरीबोंको

मुफ्त पढ़ानेका काम कितने विद्यार्थियोंने किया? अिस तरहके बहुतसे सवाल पूछे जा सकते हैं। अिनका जवाब मैं नहीं माँगता। तुम स्वयं अपनी अन्तरात्माको अिनका जवाब देना।

तुम्हारे ज्ञानकी कीमत तुम्हारे कामोंसे होगी। सैकड़ों किताबें दिमागमें भर लेनेसे अुसकी कीमत मिल सकती है, किन्तु अुसके हिसाब से कामकी कीमत कअी गुनी ज्यादा है। दिमागमें भरे हुअे ज्ञानकी कीमत सिर्फ कामके बराबर ही है। बाकीका सब ज्ञान दिमागके लिअे व्यर्थका बोझ है। अिसलिअे मेरी तो सदा यही प्रार्थना है और यही आग्रह है कि तुम जैसा पढ़ो और समझो, वैसा ही आचरण करना। वैसा करनेमें ही अुन्नति है।

('गांधीजीकी विचारसृष्टि' से)

४

[काशी हिन्दू विश्वविद्यालयकी स्थापनाके मौके पर ता० ४–२–'१६ को काशीमें दिये हुअे भाषणमेंसे।]

मैं आशा रखता हूँ कि यह विश्वविद्यालय पढ़ने आनेवाले विद्यार्थियोंको अुनकी मातृभाषामें शिक्षा देनेकी व्यवस्था करेगा। हमारी भाषा हमारा अपना प्रतिबिम्ब है। और कभी आप यह कहें कि हमारी भाषाअें अच्छेसे अच्छे विचार प्रगट करनेके लिअे बहुत कंगाल हैं, तो मैं कहूँगा कि हमारा जितना जल्दी नाश हो जाय अुतना अच्छा है। हिन्दुस्तानकी राष्ट्र-भाषा अंग्रेजी बने, अैसा सपना देखनेवाला कोअी है? जनता पर यह बोझ लादना किस लिअे जरूरी है? घड़ी भर सोचकर देखिये कि हमारे बच्चोंको अंग्रेज बच्चोंके साथ कैसी विषम होड़ करनी पड़ती है! मुझे पूनाके कुछ प्रोफेसरोंके साथ गहराअीसे बात करनेका मौका मिला था। अुन्होंने मुझे विश्वास दिलाया था कि हरअेक भारतीय युवकको अंग्रेजी द्वारा शिक्षा पानेके कारण अपने जीवनके कमसे कम ६ अमूल्य वर्ष खो देने पड़ते हैं। हमारे स्कूलों और कॉलेजोंसे निकलनेवाले विद्यार्थियोंकी

संख्यासे अिसका गुणा करें, तो आपको मालूम होगा कि राष्ट्रको कितने हज़ार सालका नुकसान हुआ ! हम पर यह आक्षेप किया जाता है कि हममें कोअी काम शुरू करनेकी शक्ति नहीं । हमारे जीवनके कीमती वर्ष अेक विदेशी भाषा पर अधिकार पानेमें बिताने पड़ें, तो हममें वह शक्ति कहाँसे हो ? अिस काममें भी हम सफल नहीं होते । कल और आज हिजीन्बोटम साहबके लिअे अपने श्रोताओं पर जितना असर डालना सम्भव था, अुतना और किसी भी बोलनेवालेके लिअे सम्भव था ? मुझसे पहले बोलनेवाले लोग श्रोताओंका दिल न जीत सके, तो अिसमें अुनका दोष नहीं था । अुनके बोलनेमें जितना चाहिये, अुतना सार था । किन्तु अुनका बोलना हमारे दिलमें नहीं घुस सकता था । मैंने यह कहते सुना है कि कुछ भी हो, भारतमें जनताको रास्ता दिखाने और जनताके लिअे सोचनेका काम अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोग ही करते हैं । अैसा न हो तब तो बहुत बड़ी बात ही कही जायेगी । हमें जो शिक्षा मिलती है, वह सिर्फ अंग्रेजीमें ही मिलती है । बेशक, अिसके बदलेमें हमें कुछ करके दिखाना चाहिये । किन्तु पिछले पचास बरसमें हमें देशी भाषाओं द्वारा शिक्षा दी गअी होती, तो आज हमारे पास अेक आज़ाद हिन्दुस्तान होता, हमारे पास अपने शिक्षित आदमी होते, जो अपनी ही भूमिमें विदेशी जैसे न रहे होते, बल्कि जिनका बोलना जनताके दिलों पर असर कर सकता था । वे गरीबसे गरीब लोगोंके बीच जाकर काम करते होते और पिछले पचास सालमें अुन्होंने जो कुछ कमाया होता, वह जनताके लिअे अेक कीमती विरासत साबित होता । आज हमारी स्त्रियाँ भी हमारे अुत्तम विचारोंमें शरीक नहीं हो सकतीं । प्रोफेसर बोस और प्रोफेसर रॉयका और अुनकी अुज्ज्वल खोजोंका विचार कीजिये । क्या यह शर्मकी बात नहीं कि अुनकी खोजें आम जनताकी सार्वजनिक सम्पत्ति नहीं बन सकीं ?

अब हम दूसरे विषयकी तरफ मुड़ेंगे ।

कांग्रेसने स्वराज्यके बारेमें अेक प्रस्ताव पास किया है और मैं आशा रखता हूँ कि आल अिण्डिया कांग्रेस कमेटी और मुस्लिम लीग

अपना फर्ज अदा करेंगी और कुछ व्यावहारिक सुझाव पेश करेंगी। किन्तु मुझे खुले दिलसे मंजूर करना चाहिये कि जो कुछ वे करेंगी, अुसमें मुझे अुतनी दिलचस्पी नहीं होगी, जितनी विद्यार्थी लोग या आम जनता जो कुछ करेगी, अुसमें होगी। लेखोंसे हमें कभी स्वराज्य नहीं मिलेगा। हम कितने ही भाषण दें, परन्तु वे भी हमें स्वराज्यके लायक नहीं बनायेंगे। हमारा चरित्र ही हमें स्वराज्यके योग्य बनायेगा। हम अपने आप पर राज्य करनेके लिअे क्या प्रयत्न करते हैं? मै चाहता हूँ कि आज शामको हम सब मिलकर अिस पर विचार करें। . . . . .
कल शामको मैं विश्वनाथ महादेवके मन्दिरमें गया था। जब मैं वहाँकी गलियोंमें से गुजर रहा था, तब मेरे मनमें अिस तरहके विचार आये: अिस बड़े भारी मन्दिरमें कोअी अनजान आदमी अूपरसे अुतर आये और अुसे यह सोचना पड़े कि हिन्दूकी हैसियतसे हम कैसे हैं, और वह कभी हमें फटकारे, तो क्या अुसका अैसा करना ठीक नहीं होगा? क्या यह महा-मन्दिर हमारे चरित्रका प्रतिबिम्ब नहीं है? हिन्दूकी हैसियतसे मुझे यह बात चुभती है, "अिसीलिअे मै बोलता हूँ"। क्या हमारे पवित्र मन्दिरकी गलियाँ आज जैसी गन्दी होनी चाहियें? अुनके पास मकान जैसे-तैसे बना दिये गये हैं। गलियाँ बाँकी, टेढ़ी और तंग हैं। हमारे मन्दिर भी विशालता और स्वच्छताके नमूने न हों, तो फिर हमारा स्वराज्य कैसा होगा? जिस घड़ी अंग्रेज अपनी मर्जीसे या मजबूर होकर अपना बोरिया-बिस्तर लेकर भारतसे चले जायँगे, अुसी घड़ी क्या हमारे मन्दिर पवित्रता, शुद्धता और शान्तिके स्थान बन जायँगे?

कांग्रेसके अध्यक्षके साथ अिस बातमें मैं बिलकुल सहमत हूँ कि स्वराज्यका विचार करनेसे पहले हमें अुसके लिअे जरूरी मेहनत करनी पड़ेगी। हर शहरके दो हिस्से होते हैं, अेक छावनी और दूसरा खुद शहर। बहुत हद तक शहर दुर्गन्धवाली गुफाकी तरह होता है। हम शहरी जीवनसे अपरिचित हैं। किन्तु हम शहरी जीवन चाहते हों, तो अुसमें मनमाने देहाती जीवनके तत्त्व दाखिल नहीं कर सकते। क्योंकि

देशी मुहल्लोंमें चलनेवालोंको हमेशा यह डर रहता है कि 'कहीं अूपरकी मंजिलमें रहनेवाले हम पर थूक न दें।' यह विचार कुछ अच्छा नहीं लगता। मैं रेलमें बहुत सफर करता हूँ। तीसरे दरजेके मुसाफिरोंकी मुश्किलें मैं देखता हूँ। परन्तु वे जो तकलीफें अुठाते हैं, अुन सबके लिअे मैं रेलवालोंकी व्यवस्थाको किसी भी तरह दोष नहीं दे सकता। सफाअीके पहले नियम भी हम नहीं जानते। रेलका फर्श बहुत बार सोनेके काम आता है। अिसका खयाल किये बिना हम डब्बेमें हर कहीं थूक देते हैं। हम डब्बेका कैसा भी अुपयोग करनेमें जरा भी नहीं हिचकिचाते। नतीजा यह होता है कि अुसमें अितनी गंदगी हो जाती है, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। अूँचे दरजेके कहलानेवाले मुसाफिर अपने कमनसीब भाअियोंको डरा देते हैं। मैंने विद्यार्थियोंको भी अैसा करते देखा है। कभी-कभी तो वे औरोंसे जरा भी अच्छा बरताव नहीं करते। वे अंग्रेजी बोल सकते हैं और कोट पहने होते हैं; अिसी पर वे डब्बेमें जबरदस्ती घुसने और बैठनेकी जगह लेनेका दावा करते हैं। मैंने चारों तरफ अपनी नजर दौड़ाअी है और आपने मुझे अपने सामने बोलनेका मौका दिया है, अिसलिअे मैं अपना दिल खोल रहा हूँ। हमें स्वराज्यकी तरफ प्रगति करनी हो, तो अिन बातोंमें सुधार करना चाहिये।

अब मैं आपके सामने दूसरा चित्र पेश करता हूँ।

कलके हमारे अध्यक्ष माननीय महाराजा साहब हिन्दुस्तानकी गरीबीके बारेमें बोले थे। दूसरे वक्ताओंने भी अिस पर बहुत जोर दिया था। किन्तु माननीय वाअिसरॉय साहबने जिस मंडपमें स्थापनक्रिया की, अुसमें हमने क्या देखा? बेशक, वह अेक तड़क-भड़कका दिखावा था, जवाहरातका प्रदर्शन था। और वे जवाहरात भी अैसे जो पेरिससे आनेवाले सबसे बड़े जौहरीकी आँखोंमें भी चकाचौंध पैदा कर दें। मैं अिन कीमती शृंगार करनेवाले अमीरोंकी लाखों गरीबोंके साथ तुलना करता हूँ और मुझे अैसा लगता है कि मैं अिन अमीरोंसे कह रहा हूँ:

'जब तक आप अपने जवाहरात नहीं अुतारेंगे और अपने देशवासियोंके खातिर अुन्हें बचाकर नहीं रखेंगे, तब तक भारतका अुद्धार नहीं होगा। मुझे भरोसा है कि माननीय सम्राट या लॉर्ड हार्डिंजकी यह अिच्छा नहीं कि सम्राटके प्रति पूरी वफादारी दिखानेके लिअे हम अपना जवाहरातका खजाना खाली करके सिरसे पैर तक सजे-धजे बाहर निकलें। मैं अपनी जान जोखिममें डाल कर भी सम्राट जॉर्ज से यह संदेश ला देनेको तैयार हूँ कि वे अैसी कोअी बात नहीं चाहते। जब मैं सुनता हूँ कि भारतके किसी भी बड़े शहरमें, भले ही वह ब्रिटिश भारतमें हो या देशके दूसरे हिस्सेमें जिसमें कि देशी राजा राज्य करते हैं, कोअी बड़ा महल बन रहा है, तब मुझे तुरन्त अीर्षा होती है और यह लगता है कि अुसके लिअे रुपया तो किसानोंसे लिया गया है। भारतकी आबादीके ७५ फी सदीसे भी ज्यादा किसान हैं। .... अुनकी मेहनतका लगभग सारा फल हम ले लें या दूसरोंको ले जाने दें, तो हममें स्वराज्यकी भावना बहुत नहीं हो सकती। ब्रिटिश गुलामीसे हमारा छुटकारा किसानोंके ज़रिये ही हो सकेगा। वकील, डॉक्टर या बड़े ज़मींदार अुसे नहीं मिटा सकेंगे।

अन्तमें जिस महत्वकी बातने दो-तीन दिनसे हमें परेशान कर रखा है, अुसके बारेमें बोलना मैं अपना ज़रूरी फर्ज समझता हूँ। जिस समय वाअिसरॉय साहब काशीके रास्तोंमें से गुजर रहे थे, अुस समय हम सबको चिन्ता हो रही थी। कअी जगह खुफिया पुलिसका अिन्तजाम था। हम सब घबरा रहे थे। हमको अैसा लगता है कि अितना ज्यादा अविश्वास किस लिअे है? लॉर्ड हार्डिंजको अिस तरह मौतके जबड़ोंमें रहनेके बजाय मौत ज्यादा अच्छी लगनी चाहिये। किन्तु शायद समर्थ सम्राटके प्रतिनिधि अैसा न मानें। अुन्हें हमेशा मौतके मुँहमें भी रहनेकी ज़रूरत हो सकती है। किन्तु हमारे पीछे यह खुफिया पुलिस लगानेकी क्या ज़रूरत थी? हम नाराज़ हों, चिढ़ जायें, या विरोध करें, परन्तु हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि आजके भारतने, अपनी अधीरताके

कारण, विद्रोहियोंकी अेक खूनी फौज पैदा कर दी है। मैं खुद भी विद्रोही हूँ, किन्तु दूसरी तरहका। परन्तु हम लोगोंमें विद्रोहियोंका अेक अैसा दल है; और यदि मैं अुन लोगोंसे मिल सका तो अुनसे कहूँगा कि भारतके विजेताओंको जीतना हो, तो यहाँ विद्रोहके लिअे गुंजाअिश नहीं है। विद्रोह डरकी निशानी है। यदि हम अीश्वर पर विश्वास रखें और अीश्वरसे डरते रहें, तो राजा-महाराजा, वाअिसरॉय, खुफिया पुलिस और सम्राट जॉर्ज, किसीसे भी डरनेकी ज़रूरत नहीं। मैं विद्रोहियोंमें रहे हुअे देश-प्रेमके लिअे अुनका आदर करता हूँ। अपने देशकी खातिर जान देनेकी अुनकी अिच्छामें जो बहादुरी है, अुसका भी मैं आदर करता हूँ। किन्तु मैं अुनसे पूछता हूँ कि मारना क्या कोअी आदरके योग्य बात है? आदरके साथ मरनेके लिअे खूनीका खंजर कोअी अच्छा हथियार है? मैं अिससे साफ अिनकार करता हूँ। किसी भी धर्मग्रंथमें अिस तरीकेके लिअे अिजाजत नहीं है। यदि मुझे अैसा जान पड़े कि भारतके छुटकारेके लिअे अंग्रेजोंको चला जाना चाहिये, अुन्हें यहाँसे निकाल देना चाहिये, तो मैं यह घोषणा करनेमें आनाकानी नहीं करूँगा कि अुन्हें जाना पड़ेगा; और मैं समझता हूँ कि अपने अिस विश्वासकी खातिर मैं मरनेको भी तैयार रहूँगा। मेरी रायमें वह आदरकी मौत होगी। बम फेंकनेवाले छिपे षड्यंत्र करते हैं, वे खुले तौर पर बाहर आनेसे डरते हैं और जब पकड़े जाते हैं, तो वे गलत रास्ते ले जानेवाले अपने अुत्साहके लिअे सज़ा भोगते हैं। . . . .

* * *

२

# विद्यार्थी जीवन*

विद्यार्थियोंकी अवस्था सन्यासीकी अवस्था जैसी है। अिसलिअे वह दशा पवित्र और ब्रह्मचारीकी होनी चाहिये। आजकल विद्यार्थियोंको वरमाला पहनानेके लिअे दो सभ्यताअें आपसमें होड़ कर रही हैं — प्राचीन और अर्वाचीन। प्राचीन सभ्यतामें संयमका मुख्य स्थान है। प्राचीन सभ्यता हमें कहती है कि जैसे-जैसे मनुष्य ज्ञानपूर्वक अपनी जरूरतें कम करता है, वैसे-वैसे वह आगे बढ़ता है। अर्वाचीन सभ्यता यह सिखाती है कि मनुष्य अपनी आवश्यकताअें बढ़ा कर अुन्नति कर सकता है। संयम और स्वेच्छाचारमें अुतना ही भेद है, जितना धर्म और अधर्ममें। संयममें बाहरी प्रवृत्तियोंको भीतरी प्रवृत्तियोंसे नीचा दरजा दिया गया है। संयमवाली पुरानी अवस्थाके बजाय स्वेच्छाचारपूर्ण नअी सभ्यता अपनानेका डर रहता है। अिस डरको दूर करनेमें विद्यार्थी बहुत मदद दे सकते हैं। विश्वविद्यालयके विद्यार्थियोंकी परीक्षा अुनके ज्ञानसे नहीं होगी, बल्कि अुनके धर्माचरणसे ही होगी। अिस विद्यालयमें धर्मकी शिक्षा और धर्मके आचरणको प्रधान पद देना चाहिये। अैसा होनेमें विद्यार्थियोंकी पूरी मदद चाहिये। मुझे भरोसा है कि राजनैतिक सुधारोंका लाभ हमें धर्मका विचार किये बिना कभी नहीं मिल सकेगा। धर्मकी संस्थापना अिन सुधारोंसे नहीं होगी, बल्कि धर्मसे ही अिन सुधारोंके दोष दूर किये जा सकेंगे।

---

* हिन्दू विश्वविद्यालयके विद्यार्थियोंको दिया हुआ भाषण। — नवजीवन, २९-२-'२०

३

# 'मैं विद्यार्थी बना'

['आत्मकथा' में गांधीजीने अपने अिंग्लैंडके विद्यार्थी जीवनके बारेमें जो दो प्रकरण लिखे हैं, अुनमें से मोटी-मोटी बातें लेकर यह हिस्सा यहाँ दिया जाता है। वे पहले भागके १५ व १६ वें प्रकरण हैं। जिज्ञासु पाठक ज्यादा वर्णनके लिअे मूल देखें। —सम्पादक]

१

मेरे विषयमें अुस मित्रकी चिन्ता दूर नहीं हुअी। अुसने प्रेमके वस होकर मान लिया कि मैं मांस नहीं खाअूँगा तो कमजोर हो जाअूँगा; अितना ही नहीं, मैं 'मूर्ख' भी रह जाअूँगा। क्योंकि अंग्रेजोंके समाजमें घुल-मिल ही न सकूँगा। अुसे पता था कि मैंने निरामिष भोजनके बारेमें पुस्तक पढ़ी है। अुसे यह डर लगा कि अिस तरहकी पुस्तकें पढ़नेसे मेरा मन भ्रममें पड़ जायगा, प्रयोगोंमें मेरी जिन्दगी बरबाद हो जायगी, मुझे जो कुछ करना है वह भूल जाअूँगा और मैं पक्का मूर्ख हो जाअूँगा।

मैंने अैसा निश्चय किया कि मुझे अुसका डर दूर करना चाहिये। मैं जंगली नहीं रहूँगा, सभ्य लोगोंके लक्षण सीखूँगा और दूसरी तरह समाजमें मिलने लायक बनकर अपनी निरामिषताकी विचित्रताको ढँक दूँगा।

मैंने सभ्यता सीखनेका भूलसे बाहरका और छिछला रास्ता लिया।

बम्बअीके सिले हुअे कपड़े अच्छे अंग्रेज समाजमें शोभा नहीं देंगे, अैसा सोच कर 'आर्मी और नेवी स्टोर' में कपड़े बनवाये। अुन्नीस शिलिंग (यह कीमत अुस जमानेमें तो बहुत मानी जाती थी) की 'चिमनी' टोपी सर पर पहनी। अितनेसे सन्तोष न करके बॉंड स्ट्रीटमें, जहाँ शौकीन लोगोंके कपड़े सीये जाते थे, शामकी पोशाक

दस पौण्ड फूँककर बनवा ली और भोले व शाही दिलवाले बड़े भाअीने दो जेबोंमें डालकर लटकानेकी खास सोनेकी जंजीर मँगाअी और वह मिल भी गअी। तैयार टाअी लेना सभ्यता नहीं मानी जाती थी, अिसलिअे टाअी लगानेकी कला सीखी। देशमें तो आअीना हजामतके दिन देखनेको मिलता था। किन्तु यहाँ बड़े शीशेके सामने खड़े होकर टाअी ठीक तरहसे लगानेकी कला देखने और बालोंको ठीकसे सजानेके लिअे रोज दसेक मिनट तो बरबाद होते ही थे। बाल मुलायम नहीं थे, अिसलिअे अुन्हें ठीक तरहसे मुड़े हुअे रखनेके लिअे ब्रश (यानी झाड़ू ही तो?) के साथ रोज लड़ाअी होती थी। और टोपी पहनते-अुतारते समय हाथ तो मानो माँगको सँभालनेके लिअे सिर पर पहुँच ही जाता था। फिर समाजमें बैठे हों, तो बीच-बीचमें माँग पर हाथ फेरकर बालोंको जमे हुअे रखनेकी निराली और सभ्य क्रिया भी होती ही रहती थी।

परन्तु अितनी-सी टीमटाम ही काफी न थी। सिर्फ सभ्य पोशाकसे ही थोड़े सभ्य बना जाता है? सभ्यताके कुछ बाहरी गुण भी जान लिये थे और वे सीखने थे, — जैसे गृहस्थको नाचना आना चाहिये और फ्रेंच भाषा ठीक-ठीक जानना चाहिये। क्योंकि फ्रेंच अिंग्लैण्डके पड़ोसी फ्रांसकी भाषा थी और सारे युरोपकी राष्ट्रभाषा भी थी। और युरोपमें घूमनेकी मेरी अिच्छा थी। अिसके सिवाय सभ्य आदमीको लच्छेदार भाषण देना आना चाहिये। मैंने नाच सीख लेनेका निश्चय किया। अेक वर्गमें भरती हुआ। अेक सत्रकी तीनेक पौण्ड फ़ीस दी। तीनेक हफ्तेमें छः पाठ लिये होंगे। किन्तु तालके साथ ठीक तरहसे पैर नहीं पड़ता था। पियानो बजता था, परन्तु यह पता नहीं चलता था कि वह क्या कह रहा है। 'अेक, दो, तीन,' की ताल लगती थी, किन्तु अुनके बीचका अन्तर तो वह बाजा ही बताता था। वह कुछ समझमें नहीं आता था। तब क्या किया जाय? अब तो 'बावाजीकी बिल्ली' वाली बात हुअी। चूहेको दूर रखनेके लिअे बिल्ली, बिल्लीके लिअे गाय,

अिस तरह जैसे बावाजीका परिवार बढ़ा, वैसे ही मेरे लोभका परिवार भी बढ़ा। वायोलिन बजाना सीखा, जिससे ताल-सुरका ज्ञान हो। तीन पौण्ड वायोलिन खरीदनेमें फूँके और कुछ सीखनेमें खर्चे। भाषण देना सीखनेके लिअे तीसरे शिक्षकका घर ढूँढ़ा। अुसे भी अेक गिनी तो दी। 'बेल्स स्टैण्डर्ड अिलोक्यूशनिस्ट' नामक पुस्तक खरीदी। पिटका भाषण शुरू कराया!

अिन बेल साहबने मेरे कानमें घण्टा बजाया। मैं जाग गया।

मुझे कहाँ अिंग्लैंडमें जीवन बिताना है? लच्छेदार भाषण देना सीखकर मुझे क्या करना है? नाच-नाचकर मैं कैसे सभ्य बनूँगा? वायोलिन तो देशमें भी सीखा जा सकता है। मैं विद्यार्थी हूँ। मुझे विद्या-धन बढ़ाना चाहिये। मुझे अपने पेशेसे सम्बन्ध रखनेवाली तैयारी करनी चाहिये। मैं अपने सदाचरणसे सभ्य माना जाअूँ तो ठीक है, नहीं तो मुझे यह लोभ छोड़ना चाहिये।

अिन विचारोंकी धुनमें अिन अुद्‌गारोंवाला पत्र भाषण सिखानेवाले शिक्षकको मैंने भेज दिया। अुससे मैंने दो या तीन ही पाठ लिये थे। नाचना सिखानेवालीको भी मैंने अैसा ही पत्र लिख भेजा। वायोलिन शिक्षिकाके यहाँ वायोलिन लेकर गया। जो दाम मिलें अुतने ही में बेच डालनेकी अुसे अिजाजत दी। क्योंकि अुसके साथ कुछ मित्रका-सा सम्बन्ध हो गया था, अिसलिअे अुससे अपनी मूर्छाकी बात की। नाच वगैराके जंजालसे छूटनेकी मेरी बात अुसे पसन्द आयी।

सभ्य बननेका मेरा पागलपन कोअी तीन महीने रहा होगा। पोशाककी टीमटाम बरसों तक कायम रही, परन्तु मैं विद्यार्थी बन गया।

## २

कोअी यह न माने कि नाच वगैराके मेरे प्रयोग मेरी स्वच्छंदताका समय बताते हैं। पाठकोंने देखा होगा कि अुसमें कुछ न कुछ समझदारी थी। अिस मूर्छाके समयमें भी मैं अेक हद तक सावधान था। पाअी-

पाअीका हिसाब रखता था। हर महीने १५ पौण्डसे ज्यादा खर्च न करनेका निश्चय किया था । बस (मोटर) में जानेका और डाक व अखबारका खर्च भी हमेशा लिखता था और सोनेसे पहले सदा जोड़ लगा लेता था । यह आदत अंत तक बनी रही । अिसीलिअे मैं जानता हूँ कि सार्वजनिक जीवनमें मेरे हाथसे जो लाखों रुपयेका खर्च हुआ है, अुसमें मैं अुचित कंजूसीसे काम ले सका हूँ; और जितने काम मेरे हाथसे हुअे हैं, अुनमें कभी कर्ज नहीं करना पड़ा, बल्कि हर काममें कुछ न कुछ बचत ही रही है। हर नवयुवक अपनेको मिलनेवाले थोड़ेसे रुपयेका भी होशियारीसे हिसाब रखेगा, तो अुसका लाभ जैसे मैंने आगे चलकर अुठाया और जनताको भी मिला, वैसे वह भी अुठायेगा ।

मेरा अपने रहन-सहन पर अंकुश था । अिसलिअे मैं देख सका कि मुझे कितना खर्च करना चाहिये । अब मैंने खर्च आधा कर डालनेका विचार किया । हिसाबकी जाँच करने पर मैंने देखा कि मुझे गाड़ी-भाड़ेका काफी खर्च होता था । साथ ही, कुटुम्बमें रहनेसे अेक खास रकम तो हर हफ्ते लगती ही थी । कुटुम्बके आदमियोंको किसी दिन खिलाने-पिलानेके लिअे बाहर ले जानेकी तमीज़ रखनी चाहिये । अिसके सिवाय किसी समय अुनके साथ दावतमें जाना पड़ता, तब गाड़ी-भाड़ेका खर्च होता ही था । लड़की होती तो उसे खर्च नहीं करने दिया जा सकता था । और बाहर जाते, तो खानेके समय घर नहीं पहुँच सकते थे । वहाँ तो दाम दिये हुअे ही होते थे, बाहर खानेका खर्च और करना पड़ता था । मैंने देखा कि अिस तरह होनेवाला खर्च बचाया जा सकता है । यह भी समझमें आया कि सिर्फ शर्मके मारे जो खर्च होता था, वह भी बच सकता है ।

अब तक कुटुम्बोंके साथ रहा था । अुसके बजाय अपना ही कमरा लेकर रहनेका निर्णय किया, और यह भी तय किया कि कामके अनुसार और अनुभव लेनेके लिअे अलग-अलग मुहल्लोंमें बदल-बदल कर मकान लिया जाय । मकान अैसी जगह पसन्द किया, जहाँसे पैदल

चलकर आध घण्टेमें कामकी जगह पहुँचा जा सके और गाड़ी-भाड़ा बचे। अिससे पहले जब कभी बाहर जाना होता, तो गाड़ी-भाड़ा देना पड़ता था और घूमने जानेका समय अलग निकालना पड़ता था। अब अैसी व्यवस्था हो गअी कि कामके लिअे जानेके साथ ही घूमना भी हो जाता और अिस व्यवस्थासे मैं आठ-दस मील तो सहज ही रोज चल लेता था। खास तौर पर अिस अेक आदतसे मैं शायद ही कभी विलायतमें बीमार पड़ा हूँगा। शरीर काफ़ी कस गया। कुटुम्बमें रहना छोड़कर दो कमरे किराये पर लिये; अेक सोनेका और अेक बैठकका। यह फेरबदल दूसरा काल माना जा सकता है। अभी तीसरा परिवर्तन अिसके बाद होनेवाला था।

अिस तरह आधा खर्च बचा, किन्तु समयका क्या हो? मैं जानता था कि बैरिस्टरकी परीक्षाके लिअे बहुत पढ़नेकी ज़रूरत न थी; अिसलिअे मुझे धीरज था। मुझे अपना अंग्रेजीका कच्चा ज्ञान दुःख देता था। लेली साहबके ये शब्द कि "तू बी० अे० हो जा, फिर आना" मुझे खटकते थे। मुझे बैरिस्टर होनेके अलावा और भी पढ़ाअी करनी चाहिये। ऑक्सफ़ोर्ड केम्ब्रिजका पता लगाया। कुछ मित्रोंसे मिला। देखा कि वहाँ जाने पर खर्च बहुत बढ़ जायगा और वहाँ की पढ़ाअी भी लम्बी थी। मैं तीन सालसे ज्यादा रह नहीं सकता था। किसी मित्रने कहा: "तुम्हें कोअी कठिन परीक्षा ही देनी हो, तो लंदनका मैट्रिक्युलेशन पास कर लो; अुसमें मेहनत खासी करनी पड़ेगी और साधारण ज्ञान बढ़ेगा। खर्च बिलकुल नहीं बढ़ेगा।" यह सूचना मुझे अच्छी लगी। परीक्षाके विषय देखे तो चौंक गया। लेटिन और अेक दूसरी भाषा अनिवार्य थी! लेटिनका क्या किया जाय? किन्तु किसी मित्रने सुझाया: "लेटिन वकीलके बहुत काम आती है। लेटिन जाननेवालेके लिअे कानूनकी किताबें समझना आसान होता है। अिसके सिवाय रोमन-लॉकी परीक्षामें अेक प्रश्न तो सिर्फ लेटिन भाषामें ही होता है। और लेटिन जाननेसे अंग्रेजी भाषा पर अधिकार बढ़ता है।" अिन सब

दलीलोंका मुझ पर असर पड़ा। कठिन हो या न हो, लेटिन सीखना ही है। फ्रेंच ले रखी थी; अुसे पूरा करना था। अिस तरह दूसरी भाषाके तौर पर फ्रेंच लेनेका निश्चय किया। अेक खानगी मैट्रिक्युलेशन वर्ग चलता था। अुसमें भर्ती हो गया। परीक्षा हर छः महीने होती थी। मुझे मुश्किलसे पाँच महीनेका समय मिला। यह काम मेरे बूतेके बाहर था। फल यह हुआ कि सभ्य बननेके बजाय मैं अेक बहुत ही मेहनती विद्यार्थी बन गया। टाअिम टेबल बनाया। अेक-अेक मिनिट बचाया। किन्तु मेरी बुद्धि या स्मरण-शक्ति अैसी नहीं थी कि मैं दूसरे विषयोंके अलावा लेटिन और फ्रेंच भी पूरी कर सकता। परीक्षामें बैठा। लेटिनमें फेल हो गया। दुःख हुआ, परन्तु हिम्मत न हारी। लेटिनमें रस आ गया था। सोचा फ्रेंच ज्यादा अच्छी हो जायेगी और विज्ञानका नया विषय ले लूँगा। अब देखता हूँ कि जिस रसायन-शास्त्रमें खूब रस आना चाहिये था, वह प्रयोगोंके न होनेसे अुस समय मुझे अच्छा ही नहीं लगता था। देशमें तो यह विषय पढ़ना था ही, अतः लंदन मैट्रिकके लिअे भी अुसीको पसन्द किया। अिस बार रोशनी और गरमी (लाअिट और हीट) का विषय लिया। यह विषय आसान माना जाता था। मुझे भी आसान लगा।

दुबारा परीक्षा देनेकी तैयारीके साथ ही रहन-सहनमें ज्यादा सादगी दाखिल करनेका बीड़ा अुठाया। मुझे लगा कि अभी तक मेरा जीवन अपने कुटुम्बकी गरीबीके लायक सादा नहीं बना था। भाअीकी तंगी और अुदारताका खयाल मुझे सताता था। जो पंद्रह पौण्ड और आठ पौण्ड माहवारी खर्च करते थे, अुन्हें छात्रवृत्ति मिलती थी। मुझसे भी ज्यादा सादगीसे रहनेवालोंको भी मैं देखता था। अैसे गरीब विद्यार्थियोंसे काफी काम पड़ता था। अेक विद्यार्थी लंदनकी गरीब बस्तीमें दो शिलिंग हफ्तेवार देकर अेक कोठरीमें रहता था और लोकार्टकी सस्ती कोकोकी दुकानमें दो पेनीका कोको और रोटी खाकर गुजर करता था। अुसकी बराबरी करनेकी तो मुझमें शक्ति नहीं थी, किन्तु मुझे अैसा लगा कि

मैं दोके बजाय अेक कमरेमें रह सकता हूँ और आधी रसोअी हाथसे भी बना सकता हूँ। अिस तरह करके मैं चार-पाँच पौण्डमें अपना माहवारी खर्च चला सकता हूँ। सादगीसे रहनेके बारेमें पुस्तकें भी पढ़ी थीं। दो कमरे छोड़कर हफ्तेके आठ शिलिंगवाली अेक कोठरी किराये ली। अेक अँगीठी खरीदी और सुबहका खाना हाथसे बनाना शुरू किया। खाना बनानेमें मुश्किलसे बीस मिनिट लगते थे। ओट-मीलके दलियेमें और कोकोके लिअे पानी अुबालनेमें क्या देर लगे? दुपहरको बाहर खा लेता और शामको फिर कोको बनाकर रोटीके साथ ले लेता। अिस तरह अेकसे सवा शिलिंगमें रोज खानेका काम चलाना सीख लिया। यह समय ज्यादासे ज्यादा पढ़ाअी करनेका था। जीवन सादा हो जानेसे समय ज्यादा बचता था। दूसरी बार परीक्षामें बैठा और पास हो गया।

पाठक यह न मानें कि सादगीसे जीवन रसहीन हो गया। अुलटे, फेर-बदल करनेसे मेरी बाहरी और भीतरी स्थितिमें अेकता हो गयी। घरकी स्थितिके साथ अिस जीवनका मेल बैठा; जीवन अधिक सत्यमय बना। अिससे मेरी आत्माके आनन्दका पार नहीं रहा।

नवजीवन, २१-३-'२६

## ४

# मुमुक्षुका पाथेय*

हम यहाँ अेक नया ही प्रयोग करना चाहते हैं। यह प्रयोग अैसा है कि मैं बीचमें न होअूँ, तो राष्ट्रीय शालाके शिक्षकोंकी अपने आप यह प्रयोग करनेकी हिम्मत न हो।

हम यहाँ लड़के-लड़कियोंकी शिक्षा साथ-साथ चलाना चाहते हैं। अेक बार मुझे शिक्षकोंने पूछा कि 'अब शालामें लड़कियोंकी संख्या बढ़ चली है और अिसमें बड़ी लड़कियाँ भी हैं। तो क्या थोड़े दिनों बाद लड़कियोंका वर्ग अलग खोला जाय?' मैंने अुस समय तो तुरंत अिनकार कर दिया और कह दिया कि लड़कियोंका वर्ग अलग करनेकी कोअी जरूरत नहीं।

किन्तु बादमें मुझे तुरन्त अिसकी गंभीरता समझमें आ गयी और अिस बातका खयाल हो आया कि अिसमें कितनी जोखिम भरी है। मुझे अैसा लगा कि अिस बारेमें मैं तुम सब लड़कोंको, स्त्रियोंको और आश्रममें रहनेवाले सभी लोगोंको कुछ नियम बता दूँ तो ठीक हो। मैं यहाँ जो कुछ कहूँ, अुस सबको कानून ही मत समझना। मैं सिर्फ अपने विचार बताअूँगा। शिक्षक लोग बादमें चर्चा करके फेर-बदल कर सकते हैं।

लड़के और लड़कियाँ अेक वर्गमें बैठें, परन्तु वहाँ अुन्हें अुचित मर्यादामें बैठना चाहिये। लड़के अेक तरफ और लड़कियाँ दूसरी तरफ बैठ जायँ। बड़े लड़के और बड़ी लड़कियाँ घुल-मिलकर

* [यह प्रवचन सत्याग्रह आश्रमकी शालाके विद्यार्थियोंके सामने दिया गया था। विद्यार्थी जीवनकी पवित्रता और जिम्मेदारीके बारेमें गांधीजीके विचार जानना जरूरी होनेके कारण वे 'साबरमती' मासिक (१९२२) से यहाँ दिये जाते हैं।]

न बैठें, क्योंकि अिसमें स्पर्श-दोष होनेकी संभावना रहती है। अभी अिनमें से कुछ लड़कियाँ बड़ी हो रही हैं और कुछ थोड़े समयमें हो जायँगी। अिस तरह लड़कियाँ बड़ी होती जा रही हैं और लड़के तो हमारे यहाँ बड़े हैं ही। अिनका अेक दूसरेके साथ स्पर्श-दोष नहीं होना चाहिये। स्पर्श-दोष होनेसे ब्रह्मचर्यको नुकसान पहुँचता है। वर्गसे बाहर निकलनेके बाद लड़के आपसमें मिलें-जुलें, अेक दूसरेके साथ बातें करें, अेक दूसरेके साथ हँसी-मजाक करें, खेलें-कूदें; और लड़कियाँ भी आपसमें वैसा ही बरताव करें। किन्तु लड़के और लड़कियाँ अेक दूसरेके साथ अिस तरहका व्यवहार नहीं कर सकते। वे अेक दूसरेके साथ बातें नहीं कर सकते, हँसी-मजाक नहीं कर सकते और अेक दूसरेके साथ खानगी पत्र-व्यवहार तो हरगिज नहीं कर सकते। बच्चोंके लिअे कोअी बात खानगी होनी ही न चाहिये। जो आदमी अच्छी तरह सत्यका पालन करता है, अुसके पास खानगी रखनेके लिअे क्या होगा? बड़ोंमें भी अैसा किसी तरहका पत्र-व्यवहार होना अेक तरहकी कमजोरी ही मानी जायगी। तुम्हें अपने बड़ोंकी अिस कमजोरीकी नकल नहीं करनी चाहिये, बल्कि बड़ोंके कहे अनुसार तुम्हें अपनी कमजोरी दूर कर लेनी चाहिये। आम तौर पर माता-पिता अपनी कमजोरी अपने बच्चोंको नहीं बताते और अैसे मामलोंमें तो अेक शब्द भी नहीं कहते। किन्तु यह अुनकी गहरी भूल है। अैसा करके वे अपने बच्चोंको विनाशके गहरे खड्डेमें ढकेलते हैं। यदि हरअेक माता-पिता यह खयाल रखें कि हमारी की हुअी भूलको हमारे बच्चे न दोहरावें, तो अिससे बच्चोंको जितना लाभ होगा, अुसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। मैं कहता हूँ कि किसीको कोअी बात गुप्त नहीं रखनी चाहिये; अिसका यह मतलब नहीं कि तुम्हें दूसरोंकी खानगी बातें भी जाननेका प्रयत्न करना चाहिये। यह तुम्हारा काम नहीं। यदि हम बड़े कहीं बैठे बातें कर रहे हों और तुमसे वहाँसे चले जानेको कहें, तो तुम्हें चले ही जाना चाहिये। हमारी बातें जानकर तुम

हमारी कमजोरी नहीं मिटा सकते। किन्तु तुम्हारा तो कोअी भी पत्र या बात अैसी न होनी चाहिये, जिसे तुम बड़ोंके सामने बेधड़क होकर न रख सको। सबसे अच्छा तो यह है कि लड़के और लड़कियोंके बीच वर्गमें या वर्गसे बाहर किसी भी जगह बड़ोंकी गैरहाजिरीमें बातचीत ही न हो। लड़कोंके निजी कमरेमें जैसे कोअी दूसरा लड़का जाकर बैठता है, पढ़ता है, चर्चा करता है, बातें करता है, वैसे लड़की जाकर बातचीत, चर्चा या पढ़ाअी नहीं कर सकती। बड़ोंकी मौजूदगीमें — जैसे *प्रार्थनामें — लड़कियाँ लड़कोंको पानी पिलायें, अुनसे बातें करें,* तो अिसमें किसी भी तरहकी रुकावट नहीं हो सकती। वहाँ तो लड़कियोंका सबको पानी पिलाना फ़र्ज है। किन्तु वहाँ भी मर्यादा ज़रूर रहनी चाहिये। वहाँ यह सावधानी रखनी चाहिये कि स्पर्श-दोष न होने पाये। बड़े लड़कोंके साथ बड़ी लड़कियोंके स्पर्शसे विषय-वासना जाग्रत हो अुठनेकी बड़ी संभावना रहती है। अिसलिअे यह सावधानी रखनेकी बड़ी ज़रूरत है कि अिस तरहका स्पर्श-दोष कभी न होने पाये।

हमें यदि देश-सेवा करनी ही है, तो मैं दिन-दिन यह अनुभव करता जा रहा हूँ कि वीर्यकी रक्षा बहुत ज़रूरी है। तुम्हारे अिन निर्माल्य जैसे शरीरोंसे मैं क्या काम ले सकता हूँ? अिनमें किसीके शरीर पर मांस तो मानो है ही नहीं। वीर्यकी रक्षा न करनेके कारण ही तुम्हारे शरीर अितने निर्बल हैं। तुम सब अपने वीर्यकी रक्षा करके अपना शरीर बनाओ। जब तक शरीर कमजोर है, तब तक ज्ञान ग्रहण नहीं किया जा सकता, तब फिर अुसका अुपयोग तो हो ही क्या सकता है? क्रोधी मनुष्य ज्ञान प्राप्त कर सकता है, झूठा आदमी भी कर सकता है; किन्तु जो ब्रह्मचर्य नहीं पालता, वह कभी ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। हम पुराणोंसे जान सकते हैं कि जो बड़े-बड़े राक्षस बादमें तो कामके पुतले ही बन गये थे, अुन्हें भी ज्ञान-प्राप्तिके लिअे ब्रह्मचर्यका पालन करनेकी ज़रूरत पड़ी थी। ज्ञान प्राप्त करनेके लिअे

शरीर बढ़िया होना चाहिये, जिसमें सिद्ध करने जैसी कोअी बात ही नहीं। अिसलिअे तुम्हारे शरीर तो मैं राक्षसों जैसे ही बनाना चाहता हूँ। तुम्हारे शरीर सुधारनेका सबल प्रयत्न करते हुअे भी मैं तुम्हारे शरीर शौकतअली जैसे नहीं देख सकूँगा, क्योंकि अिसमें हमारे बाप-दादोंका दोष है। परन्तु अब भी वीर्यकी रक्षा की जाय, तो फिर अेक बार हनुमान पैदा हो सकते हैं। जिसका शरीर लकड़ी जैसा है, वह क्षमाका गुण क्या धारण कर सकता है? अैसा आदमी तो डरके मारे दब जायगा। मुझे अभी शौकतअली तमाचा मारें, तो मैं अुन्हें क्या माफी दूँ! यदि अुन्हें कुछ न कहूँ, तो मैं दब गया कहा जाअूँगा। मैं माफी तो रसिकको दे सकता हूँ। अिसलिअे मैं तुमसे कहूँगा कि यदि तुम्हें क्षमावान और सत्यवादी वीर बनना हो, तो तुम्हें वीर्यकी अच्छी तरह रक्षा करनी चाहिये। मैं जो अभी अिक्कावन बरसका बूढ़ा होने पर भी अितना जोर दिखा रहा हूँ, अुसका कारण सिर्फ वीर्य-रक्षा ही है। यदि मैं पहलेसे ही वीर्यकी रक्षा कर सका होता, तो मेरी कल्पनामें भी नहीं आ सकता कि आज मैं कहाँ अुड़ता होता! मैं यहाँ बैठे हुअे सब माता-पिता और अभिभावकोंसे कहता हूँ कि आप अपने लड़के-लड़कियोंको वीर्यकी रक्षा करनेकी पूरी सुविधा दें। अुनसे न रहा जाय और वे आपसे आकर कहें कि अब हमसे नहीं रहा जाता, आप हमारी शादी कर दीजिये, तभी आप अुनकी शादी करें। यह बात नहीं है कि मनुष्य प्राचीन समयमें ही ब्रह्मचारी रह सकते थे। लॉर्ड किचनर ब्रह्मचारी था — अविवाहित था। मैं यह नहीं मानता कि वह और कहीं अपनी विषय-वासना तृप्त कर आता होगा। अुसने अैसा निश्चय कर लिया था कि फौजमें सब ब्रह्मचारी और अविवाहित लोग ही आयें — यानी गठे हुअे शरीरके आदमी आयें; अविवाहित किन्तु व्यभिचारी नहीं। अिसलिअे मैं आप सब बड़ोंसे प्रार्थना करता हूँ कि अिस डरके मारे कि बादमें जोड़ी नहीं मिलेगी, आप अपने लड़के-लड़कियोंकी शादी जल्दी न कर देना। वे स्वयं आपसे कहने आयें, तब तक राह देखना।

मुझे भरोसा है कि अुस समय अीश्वर बैठा होगा और वह वरको योग्य कन्यासे और कन्याको योग्य वरसे मिला देगा।

लड़के-लड़कियोंको अेक बात और कह देना चाहता हूँ। और वह यह कि जिन लड़के-लड़कियोंने अेक गुरुको माना है, अेक गुरुके पास विद्याभ्यास किया है, वे भाअी-बहन हैं। अुन दोनोंको भाअी-बहन होकर ही रहना चाहिये। अिन दोनोंके बीच भाअी-बहनके सिवाय और किसी भी तरहका व्यवहार या सम्बन्ध नहीं हो सकता। अिस शाला और आश्रममें रहनेवाले तुम सब भाअी-बहन हो। जिस दिन यह सम्बन्ध या नाता टूट जायगा, अुस दिन मुझे यह आश्रम या शाला समेट लेनेमें अेक क्षणकी भी देर नहीं लगेगी, अुस समय मैं लोकलाजकी भी परवाह नहीं करूँगा। तुम मुझे विश्वास दिला दोगे कि तुम लोगोंमें भाअी-बहनका नाता बना रहेगा, तो ही मैं यह प्रयोग निडर होकर चलाअूँगा; और तभी मैं दूसरी लड़कियोंको यहाँ लाअूँगा। अभी अेक सज्जन यहाँ आना चाहते हैं। अुनके अेक बारह सालकी लड़की है। अितनी बड़ी लड़की तो हममें काफी अुम्रकी मानी जाती है और अुसका ब्याह कर दिया जाता है। अिसलिअे तुम मुझे निर्भय बना दो, तो ही मैं अिन सज्जनको निर्भय कर सकता हूँ और कह सकता हूँ कि यहाँ आपकी लड़कीके शीलकी रक्षा होगी और आप अुसे जैसी शिक्षा देना चाहेंगे वैसी दे सकेंगे। यह प्रयोग अैसा है कि मैंने जो नियम बताये, वे अक्षरशः पाले जायँ, तो ही लड़कियोंके माता-पिता या अभिभावक निश्चिन्त रह सकते हैं और आश्रममें रहनेवाले बड़े आदमी और शिक्षक निडर होकर यह प्रयोग कर सकते हैं। ये लोग शंकित रहकर लड़कियोंके पीछे-पीछे फिरते रहें, तो यह दोनोंके लिअे बुरा ही होगा।

जिसे अैसा लगता हो कि अब मुझसे नहीं रहा जाता, मेरी विषय-वासना अितनी ज्यादा भड़क अुठी है कि मैं अुसे काबूमें नहीं रख सकता, अुसे तुरन्त यहाँसे चला जाना चाहिये, परन्तु आश्रमको कलंक

नहीं लगाना चाहिये और अैसे पवित्र प्रयोगको खतम नहीं करना चाहिये। बाअिबलमें तो यहाँ तक कहा है कि 'तुम्हारी आँख वशमें न रहे, तो तुम अुसमें सुअी घुसेड़ देना।' मुझे अैसा नहीं लगता कि मेरी अैसी नौबत आयेगी। किन्तु मेरी, अैसी हालत हो जाय, तो मैं हूँ और यह साबरमती है।

किसीकी विषय-वासना जाग गयी हो या न जागी हो, सबको जो कुछ मैंने कहा, अुसका अच्छी तरह मनन करके पालन करना चाहिये। अीश्वरने जो भेद कर दिया है, अुसे हम मिटा नहीं सकते। अिस भेदको कायम रखनेसे ही, जिनकी विषय-वासना जाग्रत हो गअी हो अुनकी — और जिनकी न हुअी हो अुनकी तो और भी आसानीसे — विषय-भोगकी अिच्छा काबूमें रह सकती है। मैंने कअी बार कहा है, फिर भी अेक बार अुसे यहाँ दुहरा देता हूँ कि मुझे ब्रह्मचर्य पालनेमें बड़ा परिश्रम करना पड़ा है। अितना परिश्रम करके ब्रह्मचर्य पालनेवाला दूसरा कोअी आदमी मेरे देखनेमें अभी तक नहीं आया। जिसने अेक बार भी विषय-भोग कर लिया है, अुसके लिअे फिर वीर्यकी रक्षा करना बहुत ही कठिन हो जाता है। अिसलिअे तुम शुरूसे ही विषय-भोगमें न पड़ना। जिन्हें अैसा लगता हो कि हमारी अिन्द्रयाँ जाग गयी हैं, अुन्हें वहींसे अुनको दबा देना चाहिये। और जिनकी नहीं जागी हों, अुन्हें अिसके लिअे कोअी खास परिश्रम नहीं करना पड़ेगा। अुन्हें सचेत रहना चाहिये कि अिन्द्रियाँ जागने न पायें। जो वीर्यकी रक्षा करेंगे, वे ही देशसेवक बन सकेंगे; और लड़कियाँ भी अुत्तमसे अुत्तम गृहिणी तो ब्रह्मचर्यका पालन करके ही बन सकेंगी। जो अेक पतिकी ही नहीं बल्कि सारे देशकी, गरीब और दुःखी लोगोंकी सेवा करती है, अुसे कौन अच्छीसे अच्छी गृहिणी नहीं कहेगा?

दूसरी बात यह भी तुमसे कह देना चाहता हूँ कि सादी पोशाक ब्रह्मचर्य पालनेमें मददगार होती है। किन्तु यह मदद बहुत थोड़ी होती है। खादीके कपड़े पहनकर भी कोअी आदमी खूब पाप करनेवाला

ज्ञानसे मनुष्यत्व नहीं आता । अिसके सिवाय, कॉलेजके विद्यार्थी ब
नहीं कहे जा सकते । यह नहीं माना जा सकता कि वे स्वतंत्र विच
करनेके लायक नहीं । अिसलिअे मैं आशा करता हूँ कि यदि सि
विद्यार्थियोंके साथ न्याय न हो, तो हरअेक काठियावाड़ी विद्यार्थी कॉलि
छोड़ देगा ।

यह प्रश्न होगा कि फिर क्या किया जाय । सम्भव है अि
विद्यार्थियोंको दूसरे कॉलेजोंमें न लिया जाय । ले लिया जाय, तो सम्भ
है अुनके पास फीस देनेके लिअे रुपया न हो । यह मुसीबत सहनेमें
कॉलेज छोड़नेकी कीमत है । यदि कॉलेज घासकी तरह अुग जाते,
अुनकी कोअी कीमत न होती और न सिंधी विद्यार्थी निकाले ही जाते

त्यागी विद्यार्थी मेहनत करके अपनी पढ़ाअी घर पर कर सकते हैं
अुनके लिअे मुफ्त शिक्षाका प्रबन्ध हो सकता है । आजकल अै
परोपकारी शिक्षक मिलना मुश्किल नहीं, जो अैसे विद्यार्थियोंको मद
देना अपना फर्ज समझें । यदि विद्यार्थी अपना पहला फर्ज अदा करेंगे
तो अुसीमें से अिस अन्यायसे निपटनेका रास्ता निकल आयेगा । अप
सामने आये हुअे फर्जको पूरा करते समय आगेका विचार न करने
नाम ही निष्काम कर्म है और वही धर्म है ।

नवजीवन, ११-७-'२०

६

# कसौटी

रौलट कानूनका विरोध करनेके आन्दोलनके समय विद्यार्थियोंके विषयमें जो कुछ हुआ, वह दोहराया जा रहा है । अुन अमूल्य दिनोंमें अेक विद्यार्थीने मुझे पत्रमें लिखा था कि मुझे पाठशालासे निकाल दिया गया है, अिसलिअे आत्महत्या करनेको जी चाहता है । अिस बार अेक विद्यार्थी लिखता है :

". . . के विद्यार्थियोंने जन्मभूमिकी पुकार सुनी और अुसे मान दिया । ३ . तारीखको हमने हड़ताल रखी । हमारी अिस हिम्मतके लिअे हममें से हरअेकको दो-दो रुपये जुर्माना हुआ है । गरीब विद्यार्थियोंकी फीसकी माफी, आधी माफी और छात्रवृत्तियाँ बन्द होने लगी हैं । कृपा करके आचार्य श्री. . . को अिस बारेमें पत्र लिखकर या 'यंग अिण्डिया' के जरिये समझाअिये । अुन्हें कहिये कि हम कोअी चोर और षड्यंत्रकारी नहीं और न हमने कोअी अैसा काम किया है । हमने तो भारतमाताकी पुकार सुनकर अुसे मान दिया है और माताको बदनामीसे बचानेके लिअे हमसे जो कुछ हो सकता था सो किया है । अुन्हें बताअिये कि हम नामर्द नहीं हैं । कृपया हमारी मदद कीजिये ।"

आचार्यको लिखनेकी सलाह अैसी नहीं जिसे मैं मान सकूँ । यदि अुन्हें अपनी जगह पर रहना है, तो अुन्हें कुछ न कुछ तो करना ही पड़ेगा न ? जब तक शिक्षाकी संस्थाअें सरकारके आश्रय पर आधार रखेंगी, तब तक वे सरकारको मजबूत करनेके ही काम आयेंगी । और जो विद्यार्थी या शिक्षक सरकारके खिलाफ जनताकी हलचलोंमें भाग लें, अुन्हें अिसका नतीजा समझ लेना चाहिये और स्कूलसे निकाल दिये जानेकी जोखिम अुठानेके लिअे तैयार रहना चाहिये । देशसेवाकी दृष्टिसे

विद्यार्थी लोग जनताकी रायके साथ अेक हुअे, यह अुन्होंने ठीक ही किया और यह अुनकी बहादुरी है। यदि भारतमाताकी पुकार अुन्होंने न सुनी होती, तो वे देशभक्तिसे खाली होने या अिससे भी बुरे आक्षेपके पात्र ठहराये जाते। सरकारकी दृष्टिसे अुन्होंने ज़रूर बुरा किया और अुसका खौफ अपने सर पर लिया। विद्यार्थी दो घोड़ों पर अेक साथ सवार नहीं हो सकते। यदि अुन्होंने जनताके दर्दको अपना दर्द बना लिया है, तो अिन स्कूलोंमें मिलनेवाली विद्वत्ताकी देशके कामके सामने कोअी गिनती न होनी चाहिये; और जब वह देशके भलेके खिलाफ जाती हो, तो बेशक अुसका त्याग कर देना चाहिये। १९२० में ही मैंने यह चीज़ साफ देख ली थी और अुसके बादके अनुभवसे मेरी यह राय पक्की हो गयी है। अिसके बराबर दूसरा कोअी सही-सलामत और गौरव भरा रास्ता है ही नहीं कि विद्यार्थी अिन सरकारी स्कूलोंको किसी भी कीमत पर छोड़ दें। अिसके बाद दूसरे दर्जेका रास्ता यह है कि सरकार और जनताके रास्तोंमें विरोध खड़ा हो, अैसे हर मौके पर स्कूल या कॉलेजसे अलग किये जानेके लिअे तैयार रहें। दूसरी जगहोंके विद्यार्थियोंकी तरह सरकारके खिलाफ बगावत करनेमें वे अगुआ न बनें, तो अुन्हें अन्त तक पक्के और सच्चे सिपाही तो बने ही रहना चाहिये; भारतमाताकी आज्ञा माननेमें अुन्होंने जो हिम्मत दिखायी, वैसी ही हिम्मत अुसका फल भोगनेमें भी दिखानी चाहिये। जिन स्कूलोंसे अुन्हें निकाल दिया गया है, अुनमें भरती होनेका प्रयत्न करके शर्म और स्वाभिमान-भंगके भागी कोअी न बनें। यदि पहली ही कसौटी पर वे पूरे न अुतरे, तो अुनकी दिखायी हुअी बहादुरी बहादुरी नहीं, बल्कि झूठी वाहवाही लूटना होगा।

मुझे कहा जाता है कि हड़तालसे पहलेके दिनोंमें विद्यार्थियोंने विलायती कपड़ा छोड़ दिया और बड़ी तादादमें खादी धारण की। 'यह दो घड़ीका तमाशा था', अैसा कहनेका या बाहरके दबाव या भीतरी लालचके वश होकर जैसे अेक पलमें विलायती कपड़ा छोड़ा, वैसे ही पल भरमें खादी भी छोड़ दी, अैसा होनेका मौका न आने देना। मेरे

विचारसे अिस देशके अिअे विलायती कपड़ेका मतलब विदेशी राज्यका जुआ ही है। अितनी-सी बात स्वयंसिद्ध सिद्धान्तके रूपमें मान ली जाय, तो कितने सुन्दर परिणाम निकलें?

नवजीवन, १९-२-'२८

## ७

# चेतो

### १

अेक सज्जनने मुझे अेक अखबारकी कतरन भेजी है। अुसमें अमेरिकामें लड़कोंके बढ़ते हुअे अपराधोंके बारेमें और लड़कियोंमें फैली हुअी अनुचित वासना-तृप्तिके बारेमें बड़ी ही कँपकँपी पैदा करनेवाली हकीक़तें दी हैं।

अिनमें से अेक हकीक़त यह है कि चार बरसके अेक लड़केको अुसकी माँने दियासलाअीसे खेलने न दिया, अितने ही पर अुसने माँको गोलीसे मार डाला। पुलिस जब पकड़ने आयी, तो वह जरा भी नहीं घबराया। 'अुसे भी गोलीसे अुड़ा देनेकी' धमकी दी और जब कॉरोनर अुसे सवाल पूछने लगा, तब अुसका दिमाग अितना फिर गया कि अुसने अदालतके सामने पेश की हुअी चीज़ोंमें से अेक छुरी अुठायी और कॉरोनरको मारनेको लपका। कहते हैं कि अमेरिकामें शायद ही कोअी दिन अैसा जाता होगा, जब किसी लड़के या लड़कीने कोअी अपराध न किया हो। यह भी कहा जाता है कि अमेरिकाके अधिकतर कॉलेजोंमें आत्महत्या-समितियाँ या अपराधी टोलियाँ होती हैं। और अिस हकीक़तका ज्यादा दुःखदायी भाग यह है कि बहुतसी लड़कियाँ — लड़कियोंके खास कॉलेजोंमें पढ़नेवाली भी — अितनी भटक गयी हैं कि दूर कहीं अपनी वासना पूरी करनेकी तलाशमें भाग तक जाती हैं।

अिस ज़मानेमें अखबार पढ़नेवालोंको तेज और सनसनीदार खुराक देनेके लिअे, किस्से गढ़नेके लिअे, सच्ची हकीक़तें न मिलने पर कल्पित बातें जोड़ लेते हैं। अैसी हालतमें अखबारोंसे मिलनेवाली जिन हकीक़तोंका सार मैंने अूपर बताया है, अुनको पूरी तरह सच्ची मान लेना मुश्किल है। किन्तु अतिशयोक्ति सौ फीसदी निकाल दें, तो भी अिसमें कोअी शक नहीं कि अमेरिकामें लड़कों और लड़कियोंमें बाल-अपराध और स्वच्छंदता अितने बढ़ गये हैं कि अिन अपराधों और स्वच्छन्दताके लिअे जो सुधार जिम्मेदार हैं, अुन सुधारोंसे हमें सावधान ही रहना चाहिये। अितने ज्यादा बाल-अपराध होने पर भी पश्चिमका जीवन टिका हुआ है — यह भी कहा जा सकता है कि अेक तरहकी प्रगति कर रहा है — यह बात तो माननी ही पड़ेगी। और यह भी मानना होगा कि पश्चिमके सयाने लोग अिस बुराअीसे अपरिचित नहीं हैं। अितना ही नहीं, अिसका मुकाबला करनेका प्रयत्न भी कर रहे हैं। फिर भी हमें अिसका निर्णय करना है कि अैसे सुधारोंकी अंधी नकल करना चाहिये या नहीं। समय-समय पर पश्चिमकी जो हकीक़तें हम तक पहुँचती हैं, अुन्हें देखकर जरा ठहरना चाहिये और अपने दिलसे पूछ कर देख लेना चाहिये कि अैसी हालतमें क्या यही अच्छा नहीं होगा कि हम अपने ही सुधारोंसे चिपटे रहें और हमें जो थोड़ा ज्ञान मिला है, अुसके प्रकाशसे हमारे सुधारोंमें रहे दोषोंको दूर करके अुनका रूपान्तर कर दें? क्योंकि यह तो निर्विवाद है कि यदि पश्चिमके पास अुसके सुधारसे पैदा होनेवाले कअी भयंकर प्रश्न हल करनेको मौजूद हैं, तो हमारे पास भी हल करनेके लिअे कोअी कम गंभीर प्रश्न नहीं हैं।

अिस जगह अिन दो सुधारोंके गुण-दोषोंकी तुलना करना शायद बेकार नहीं, तो गैरज़रूरी अवश्य है। हो सकता है कि पश्चिमने अपने वातावरणके अनुसार यह सुधार किया हो और अिसी तरह हमारा सुधार हमारी परिस्थितिके अनुकूल हो, और दोनों सुधार अपनी-अपनी जगह अच्छे हों। फिर भी अितना तो निडर होकर कहा जा सकता है कि

जिन अपराधों और स्वच्छन्दताका मैंने वर्णन किया है; वे हमारे यहाँ लगभग असभव हैं। मैं मानता हूँ कि अिसका कारण हमारी शान्तिपरायण शिक्षा और हम पर बचपनसे रहनेवाला आसपासका अंकुश है। शान्तिपरायण शिक्षासे बहुत बार जो नामर्दी पैदा होती है और पीढ़ी दर पीढ़ी चले आनेवाले अंकुशसे जो दास्यवृत्ति पैदा होती है, अुनसे किसी भी तरह बचना चाहिये, नहीं तो हमारा प्राचीन सुधार अिस ज़मानेके पागलपनकी बाढ़में बह जायगा और खतम हो जायगा। आधुनिक सुधारकी खास निशानी यह है कि अुसने मनुष्यकी ज़रूरतें बेहद बढ़ा दी हैं। प्राचीन सुधारका लक्षण यह है कि अिन ज़रूरतों पर वह कड़ा अंकुश लगाता है और अुन्हें कड़ी मर्यादामें रखता है। आधुनिक या पाश्चात्य सुधारके अिस लक्षणकी सच्ची जड़ परलोकके विषयमें और अिसलिअे अीश्वरके विषयमें जीती-जागती श्रद्धाके अभावमें रही है। प्राचीन या पूर्वके सुधारके समयका मूल स्वर्गके प्रति और अीश्वरी शक्तिकी हस्तीके प्रति हमारे रोम-रोममें रमी हुअी श्रद्धा है। जिन हकीक़तोंका सार मैंने अूपर दिया है, वे पश्चिमकी अंधी नकलके खिलाफ हमें (लें तो) मिली हुअी चेतावनी है। अैसी अंधी नकल हम भारतके शहरी जीवनमें और खास तौर पर पढ़े-लिखे लोगोंमें देखते हैं। आजकलकी खोजबीनके कुछ तात्कालिक और चमकते हुअे परिणाम अितने मादक हैं कि अुनका विरोध करना असंभव हो जाता है। किन्तु मनुष्यकी जीत अिनके खिलाफ़ लड़नेमें ही है, अिस बारेमें मुझे ज़रा भी शक नहीं। यह खतरा हमारे सामने हर समय मौजूद रहता है कि हम कहीं पल भरके भोगकी खातिर शाश्वत कल्याणको न छोड़ दें।

नवजीवन, ५-६-'२७

२

मैं हजारों भारतीय विद्यार्थियोंके सम्पर्कमें आया हूँ। मैं विद्यार्थियोंका दिल पहचानता हूँ, विद्यार्थियोंकी मुश्किल सदा मेरे सामने रहती है, किन्तु मैं विद्यार्थियोंकी कमजोरी भी जानता हूँ। अुन्होंने मुझे अपने

हृदयमें घुसनेका अधिकार दिया है। जो बातें वे अपने माता-पितासे कहनेको तैयार नहीं, वे मुझे कहते हैं। मैं नहीं जानता कि अुन्हें किस तरह आश्वासन दूँ। मैं तो सिर्फ अुनका मित्र-बन सकता हूँ, अुनके दुःखमें हिस्सा बँटानेका प्रयत्न कर सकता हूँ और अपने अनुभवसे अुन्हें कुछ मदद दे सकता हूँ। वैसे, अिस दुनियामें मनुष्यके लिअे अीश्वर जैसा कोअी सच्चा सहायक नहीं। और अीश्वरमें श्रद्धा न रहने जैसी, यानी नास्तिक बन जाने जैसी, दूसरी कोअी भी सजा नहीं। मुझे सबसे बड़ा दुःख यह है कि हमारे विद्यार्थियोंमें नास्तिकता बढ़ती जाती है और श्रद्धा घटती जाती है। जब मैं हिन्दू विद्यार्थीसे मिलता हूँ; तब कहता हूँ कि तुम द्वादशमंत्र जपो, अिससे तुम्हारी चित्तशुद्धि होगी। किन्तु वह कहता है: मुझे मालूम नहीं कि राम कौन है, विष्णु कौन है। जब मैं मुसलमान विद्यार्थीसे कहता हूँ कि तुम कुरान पढ़ो, खुदासे डरो, घमण्ड न करो, तो वह कहता है कि मैं नहीं जानता, खुदा कहाँ है, कुरान मैं समझता नहीं। अैसे लोगोंको मैं कैसे समझाअूँ कि तुम्हारे लिअे पहला कदम चित्तशुद्धि है। हमें जो विद्या मिलती है, वह यदि हमें अीश्वरसे विमुख करती है, तो वह विद्या हमारा क्या भला करेगी, और दुनियाका क्या भला करेगी?

नवजीवन, ७-८-'२७

८

# ज्ञानका बदला दो

१ *

"मैं यह सोच रहा हूँ कि अिस बड़े भारी कार-बारमें मेरी जगह कहाँ है," अितना कहकर गांधीजी जरा रुके। फिर कहने लगे, "मेरे जैसा देहाती तो यहाँ आकर दाँतों तले अुँगली दबाने लगेगा। मैं तुम्हारे सामने क्या बात कहूँ? ये जो बड़ी प्रयोगशालाअें और बिजलीकी मशीनें यहाँ दिखाअी देती हैं, ये किसके प्रतापसे चल रही हैं? ये करोड़ों आदमियोंकी बेगारके सहारे चलती हैं। टाटाके ३० लाख रुपये कहीं बाहरसे नहीं आये। मैसूरके राजा जो अपार धन दे रहे हैं, वह भी प्रजाका ही धन है। 'बेगार' शब्दका मैं जान-बूझकर अुपयोग करता हूँ, क्योंकि जो लोग कर देकर अिस संस्थाका खर्च चला रहे हैं, अुन्हें तुम पूछो कि 'क्या हम अैसी संस्था बनानेके लिअे तुम्हारा रुपया खर्च करें? अिससे अभी तो तुम्हें कोअी लाभ न होगा, परन्तु आगे चलकर तुम्हारे बाल-बच्चोंको लाभ होगा,' तो क्या वे तुमसे 'हाँ' कहेंगे? हरगिज़ नहीं। अिसलिअे अुनकी मज़दूरी बेगार है। परन्तु हमने किस दिन लोगोंका मत लेनेकी परवाह की है? हम तो मत देनेके हक्के बिना कर न देनेका नारा पुकारते हैं, किन्तु अुसे अिन लोगोंके लिअे लागू नहीं करते। यदि तुम अपनी जिम्मेदारी समझो और तुम्हें अैसा लगे कि अिन लोगोंको कोअी हिसाब देना है, तो तुम्हें मालूम होगा कि अिस आलीशान मकानका अुपयोग करनेके बाद भी विचार करनेके लिअे अेक और पक्ष रह जाता है। तब तुम

* बैंगलोरकी विज्ञानशालाके विद्यार्थियोंने जो थैली भेंट की थी, अुसके जवाबमें दिया गया भाषण।

गरीबोंके लिअे अपने दिलमें अेक छोटासा नहीं, बल्कि लम्बा-चौड़ा कोना रखोगे; और अुसे पवित्र तथा स्वच्छ रखोगे, ताकि जिन गरीबोंकी मेहनतसे यह सब अपार खर्च चलता है, अुनकी भलाअीके लिअे तुम अपने ज्ञानका अुपयोग कर सको।

* * *

"तुमसे मैं मामूली अपढ़ और नासमझ आदमीकी अपेक्षा कहीं ज्यादा आशा रखता हूँ। तुमने जो कुछ दिया है, वही देकर संतोष न कर लेना और यह कहकर निश्चिन्त न हो जाना कि 'अब हमें कुछ भी करना बाकी नहीं रहा। चलो टेनिस बिलियर्ड खेलें।' किन्तु बिलियर्ड या टेनिस खेलनेसे तुम्हारे खातेमें नामेकी रकमका जोड़ जो रोज़ बढ़ता जा रहा है, अुसका ध्यान रखना।

"किन्तु धर्मकी गायके कहीं दाँत पूछे जाते हैं? अिसलिअे धन्यवाद सहित तुमने जो कुछ दिया है, अुसे स्वीकार करता हूँ। मैंने जो प्रार्थना की है, अुसे दिलमें रखना और अुस पर अमल करनेका प्रयत्न करना। गरीब स्त्रियोंकी बनायी हुअी खादी पहननेसे न डरना। अिसका भी डर न रखना कि तुम्हें तुम्हारे सेठ निकाल देंगे। सेठसे कहना कि 'मेरे पहनावेकी तरफ न देखकर मेरे कामकी तरफ देखिये; और यदि आपको न जँचे तो मैं चला जाअूँगा, परन्तु मेरे जैसा वफादार और अीमानदार आदमी आपको नहीं मिलेगा।' मैं चाहता हूँ कि तुम अपने आग्रह पर डटे रहकर दुनियाके सामने स्वाभिमानसे खड़े रहो। धनकी खोजमें गरीबोंकी सेवाकी गतिको ठण्डी न होने देना। तुम जो वायरलेस या बेतारके तारका यंत्र देख रहे हो, अुससे कहीं बड़ा वायरलेस दिलके भीतर बनाओ, जिससे करोड़ों लोगोंके साथ तुम्हारा सम्बन्ध अपने आप हो जाय। यदि तुम्हारी सारी खोजोंका अुद्देश्य देशकी और गरीबोंकी भलाअी न हो, तो तुम्हारे सारे कारखाने, श्री० राजगोपालाचार्य तो मज़ाकमें ही कहते थे, सचमुच शैतानके कारखाने ही बन जायेंगे।"

नवजीवन, २४-७-'२७

## २

[कराचीके विद्यार्थियोंके सामने]

विद्यार्थियों और विद्यार्थिनियोंसे मैं कहता हूँ कि सीखनेकी पहली चीज़ नम्रता है। जिनमें नम्रता नहीं आती, वे विद्याका पूरा सदुपयोग नहीं कर सकते। फिर भले ही अुन्होंने डबल फर्स्ट क्लास या पहला नम्बर लिया हो तो भी क्या हुआ? परीक्षा पास कर लेनेसे ही पार नहीं अुतरा जाता। अुससे अच्छी नौकरी मिल सकती है, अच्छी जगह शादी भी हो सकती है। किन्तु विद्याका सदुपयोग करना हो, विद्याधनको सेवाके ही लिअे खर्च करना हो, तो नम्रताकी मात्रा दिन-दिन बढ़नी चाहिये। अुसके बिना सेवा नहीं हो सकती। बी० अे० ऑनर्स या अिंजीनियरीका घमण्ड करनेवाले बहुतेरे विद्यार्थियोंको मैं जानता हूँ। गाँवके लोग अैसे लोगोंकी तरफ आँख अुठाकर भी नहीं देखेंगे। वे कहेंगे, 'अिससे हमें क्या? तुम हमारे दुःखमें क्या हिस्सा बँटानेवाले हो?' कोअी आदमी गाँवोंमें जाये और अुसके पास किसी बड़ी परीक्षाका प्रमाणपत्र हो, तो अिससे अुसे देहातियोंका ज्यादा प्रेम पानेका अनुभव भारतके सात लाख देहातमें कहीं भी नहीं मिल सकता। मनुष्यको अपनी बुद्धिकी शक्तिका और आध्यात्मिक शक्तिका अुपयोग आजीविकाके लिअे, शरीरके पोषणके लिअे नहीं करना चाहिये। अुसके लिअे अीश्वरने हाथ-पैर दे रखे हैं। अुनसे मामूली काम करके रोटी कमाना चाहिये। क्या विद्या-प्राप्तिका अुद्देश्य हजारों रुपया कमाना हो सकता है? यदि पुराने ज़मानेका अनुभव देखें, तो अुस समय वकील लोग भी रुपया लेकर नहीं, बल्कि मुफ्त काम करते थे। यह रिवाज आज भी जारी है। आज भी बैरिस्टर फीसके लिअे दावा नहीं कर सकता, क्योंकि यह काम सेवाका माना जाता है। यही बात डॉक्टर-वैद्यकी है। यह मैं किस विद्यार्थी या विद्यार्थिनीको बता सकता हूँ कि विद्याधन सेवाके लिअे ही है?

हरिजनबन्धु, २२-७-'३४

आध्यात्मपरायण देश है, तो विद्यार्थियोंमें अीश्वरके ज्ञानके लिअे सची लगन क्यों नहीं पायी जाती? बहुतसे विद्यार्थियोंको तो यह भी पता नहीं कि भगवद्गीता क्या है। यह कैसे?' अिन मित्रकी बतायी हुअी स्थितिका जो असली कारण और बहाना मुझे सूझा, वह मैंने अुन्हें बता दिया। किन्तु वह कारण मैं तुम्हारे सामने नहीं रखना चाहता, और न अिस बड़े और गहरे दोषके लिअे बहाने ही ढूँढ़ना चाहता हूँ। यहाँ मेरे सामने बैठे हुअे विद्यार्थियोंसे मेरी पहली और हार्दिक विनती यह है कि तुम सब अपने दिलको टटोलो; जहाँ-जहाँ तुम्हें अैसा लगे कि मेरा कहना ठीक है, वहाँ-वहाँ तुम अपनेको सुधारकर जीवनकी अिमारत नये सिरेसे बनाओ। तुममें जो हिन्दू हैं — और मैं जानता हूँ कि तुममें हिन्दू बहुत ज्यादा हैं — वे गीताजीका अत्यन्त सादा, सुन्दर और मेरी दृष्टिसे हृदयस्पर्शी आध्यात्मिक सन्देश समझनेका प्रयत्न करें। हृदयको पवित्र बनानेके लिअे जिन साधकोंने अिस सत्यकी सची खोज की है, अुनका अनुभव — निरपवाद अनुभव — यह है कि जब तक अिस प्रयत्नके साथ सर्वशक्तिमान अीश्वरकी हार्दिक प्रार्थना नहीं होती, तब तक यह प्रयत्न बिलकुल असंभव है। अिसलिअे तुम कुछ भी करना परन्तु अीश्वर पर की श्रद्धा न छोड़ना। यह चीज मैं तुम्हारे सामने बुद्धिसे साबित नहीं कर सकता, क्योंकि यह सत्य बुद्धिसे परे है, बुद्धि वहाँ तक पहुँच नहीं सकती। मैं तो तुमसे यही चाहता हूँ कि तुम अपनेमें सच्ची नम्रता पैदा करो और दुनियाके अितने सारे धर्मशिक्षकों, ऋषियों और दूसरे लोगोंके अनुभवको अेकदम फेंक न दो और न अिन सबको वहमी आदमी ही समझ बैठो।

यदि तुम अितना भी कर लोगे, तो बाकी जो कुछ मैं तुमसे कहना चाहता हूँ, वह तुम्हें स्फटिककी तरह स्पष्ट समझमें आ जायगा। तुम्हें यदि अीश्वर पर सची श्रद्धा होगी, तो अुसके बनाये हुअे छोटेसे छोटे जीवके लिअे भी तुममें प्रेम और सहानुभूति पैदा हुअे बिना नहीं रह सकती। और चरखा व खादी हो, अस्पृश्यता-निवारण हो, शराबबन्दी हो,

बाल-विधवाओं और बाल-विवाहों सम्बन्धी सुधार हो या अिसी तरहकी और बहुतसी चीज़ें हों, परन्तु तुम देखोगे कि अिन सबकी जड़ अेक ही है। . . . अिस अेक ही शिक्षण-संस्थामें तुम चौदह सौसे ज्यादा विद्यार्थी हो। तुम चौदह सौ विद्यार्थी रोज आधा घण्टा भी कातनेके लिअे दे सको, तो विचार करो कि देशकी सम्पत्ति कितनी बढ़ा सकते हो। यह सोचो कि चौदह सौ विद्यार्थी अछूत कहलानेवाले लोगोंके लिअे कितना काम कर सकते हैं। और यदि तुम चौदह सौ युवक अैसा पक्का निश्चय कर लो — और ज़रूर कर सकते हो — कि तुम बाल-विवाहके फन्देमें नहीं फँसोगे, तो खयाल करो कि तुम अपने आसपासके समाजमें कितना भारी सुधार करोगे। तुम चौदह सौ — या खासी अच्छी संख्या भी — अपना फुरसतका समय या रविवारके कुछ घण्टे शराब पीनेवालोंके पास जानेमें खर्च करो और अत्यन्त दयाभावसे बरताव करके अुनके दिलोंमें घुसो, तो अिसकी कल्पना करो कि तुम अुनकी और देशकी भी कितनी सेवा करोगे। ये सब बातें तो तुम आजकी दूषित शिक्षा पाते हुअे भी कर सकते हो। यह बात भी नहीं कि यह सब करनेमें तुम्हें बड़ा भारी प्रयत्न करनेकी ज़रूरत है। तुम्हें सिर्फ अपने दिल बदलने हैं, या प्रचलित राजनैतिक शब्द काममें लूँ तो, तुम्हें अपना दृष्टिकोण बदलना पड़ेगा।

नवजीवन, ११-९-'२७

## २

[पचिअप्पा कॉलेजके विद्यार्थियोंको दिये हुअे भाषणसे।]

दरिद्रनारायणके लिअे मुझे तुमने जो दान दिया है, अुसके लिअे मैं हृदयसे तुम्हारा आभार मानता हूँ।

यह सावधानी रखना कि चरखेके लिअे तुम्हारे प्रेमका आदि और अन्त अिस थैलीसे ही न हो जाय; क्योंकि भूखों मरनेवाले करोड़ों लोगोंमें बँटकर अिस रुपयेकी जो खादी तैयार होगी, अुसे यदि तुम

काममें न लो, तो तुम्हारा यह रुपया मेरे किस कामका? चरखेमें थद्दा होनेके जबानी अिकरारसे और आश्रयदाताके भावसे मेरी तरफ थोड़ा-सा रुपया फेंक देनेसे स्वराज्य नहीं मिलेगा; और मेहनत करके भी भूखों मरनेवाले करोड़ों लोगोंकी हमेशा बढ़ती जानेवाली गरीबीकी समस्या हल नहीं होगी। मुझे अपना बयान सुधारना चाहिये। मैंने 'मेहनत करनेवाले करोड़ों' अिन शब्दोंका अुपयोग किया है। मैं चाहता हूँ कि यह बयान सच हो। किन्तु दुर्भाग्यसे हमने पोशाकके बारेमें अपने शौकको नहीं सुधारा है, अिसलिअे अिन भूखों मरनेवाले करोड़ों आदमियोंके लिअे बारहों महीने मेहनत करना असंभव बना दिया है। हम अुन्हें साल भरमें कमसे कम चार महीनेकी जबरन छुट्टी देते हैं, जिसकी अुन्हें जरूरत नहीं। यह कोअी मेरी कल्पनाकी बनावटी बात नहीं, यह सच्ची हकीकत है। आम जनतामें घूमनेवाले अपने देशभाअियोंकी अिस गवाहीको तुम न मानो, तो राजकाज चलानेवाले बहुतसे अंग्रेज अफसरोंने भी अिसे बार-बार कबूल किया है। अिसलिअे यह थैली ले जाकर अुनमें बाँट देनेसे अुनका सवाल हल नहीं हो सकता। अिससे वे लोग भिखमंगे बन जायँगे और अुन्हें दान पर गुजर करनेकी आदत पड़ जायगी। जो स्त्री, पुरुष या राष्ट्र दान पर गुजारा करना सीख जाता है, अुसे अीश्वरके सिवाय और कौन बचा सकता है? परमात्मा अैसा न होने दे। तुम और मैं जो करना चाहते हैं, वह तो यह है कि अपने घरमें सुरक्षित रहनेवाली बहनोंको पूरा काम मिले। अिन्हें जो काम दिया जा सकता है, वह है सिर्फ चरखेका। यह अिज्जत और अीमानदारीका काम है। और साथ ही पूरी तरह हितकर भी है। तुम्हारे मन अेक आनेकी कोअी गिनती न हो। तुम दो-चार मील पैदल न चलकर ट्रामवालेको अेक आनेके पैसे देकर अपना समय आलसमें बिता सकते हो। किन्तु जब वह अेक आना अेक गरीब बहनकी जेबमें जा पहुँचता है, तब मददगार बन जाता है। अुसके लिअे तो वह मजदूरी करती है और अपने पवित्र हाथोंसे सुन्दर सूत कातकर मेरे हाथमें देती है। अिस सूतके पीछे

अितिहास है। अिस सूतसे राजा-महाराजाओंके भी कपड़े बनने चाहियें। मिलकी छींटके टुकड़ेके पीछे अैसा कोअी अितिहास नहीं होता। यह विषय मेरे लिअे बहुत बड़ा है और व्यवहारतः मेरा सारा समय अिसीमें जाता है। परन्तु मुझे तुम्हें अिस बारेमें और ज्यादा नहीं रोकना चाहिये। यदि तुम्हारी यह थैली अबसे — यदि अबसे पहले तुमने अैसा निश्चय न कर लिया हो तो — खादी ही पहननेके निश्चयका सच्चा नतीजा न हो, तो मेरे काममें अिससे मदद नहीं मिलेगी, बल्कि रुकावट ही होगी।

तुम मेरी प्रशंसा करते हो और मुझे थैली देते हो, अिसलिअे तुम खादीकी अिस 'अच्छी बात' को मानते हो, अैसा भ्रमपूर्ण विश्वास मुझमें पैदा न करना। मैं यह चाहता हूँ कि तुम जैसा कहो वैसा ही करो। तुम राष्ट्रके नवनीत हो। मैं नहीं चाहता कि तुम्हारे बारेमें यह कहा जाय कि तुमने यह रुपया मुझे धोखा देनेके लिअे दिया है, तुम खादी पहनना नहीं चाहते और खादीमें तुम्हारा विश्वास नहीं। तामिलनाडके अेक प्रसिद्ध व्यक्ति और मेरे मित्रने जो भविष्यवाणी की है, वह तुम सच साबित मत करना। अुन्होंने मुझे कहा है कि जब आप मरेंगे तब आपकी लाशको जलानेके लिअे दूसरी लकड़ी नहीं लानी पड़ेगी, बल्कि आप जो चरखे बाँट रहे हैं, अुन्हींकी अिकट्ठी हुअी लकड़ी आपकी देहको जलानेके काम आयेगी। अिनका चरखे पर बिलकुल विश्वास नहीं और वे समझते हैं कि जो लोग चरखेका नाम लेते हैं, वे सिर्फ मेरा मान रखनेके लिअे ही अैसा करते हैं। यह अुनकी सच्ची राय है। यदि खादीकी हलचलका यह परिणाम निकले, तो यह राष्ट्रकी अेक बहुत बड़ी करुण कथा होगी; और तुम अुसमें सीधा हिस्सा लेनेके गुनहगार माने जाओगे। यह राष्ट्रीय आत्महत्या होगी। यदि तुम्हें चरखे पर जीती-जागती श्रद्धा न हो, तो तुम अुसे स्वीकार न करो। अिसे मैं तुम्हारे प्रेमका ज्यादा सच्चा सबूत मानूँगा। तुम मेरी आँखें खोल दोगे और मैं यह अरण्यरोदन करते-करते अपना गला बैठा लूँगा कि तुमने चरखेको अस्वीकार करके दरिद्रनारायणको भी अस्वीकार कर दिया है। किन्तु अिस

बारेमें किसी भी तरहका धोखा या भ्रमजाल था, अैसा सिद्ध होनेसे जो दुःख, जो शर्म और जो पतन हमें घेर लेगा, अुससे तुम मुझे और अपने आपको बचाना। यह अेक बात है। परन्तु तुम्हारे मानपत्रमें और बहुत-सी बातें हैं।

अिसमें तुमने बाल-विधवाओं और बाल-विवाहका अुल्लेख किया है। अेक विद्वान तामिल-भाषीने मुझे लिखा है कि बाल-विधवाओंके बारेमें विद्यार्थियोंको दो शब्द कहियेगा। अुन्होंने कहा है कि अिस हिस्सेमें भारतके दूसरे हिस्सोंसे छोटी अुमकी विधवाओंका दुःख बहुत ज्यादा है। अिस कथनके सत्यको मैं जाँच नहीं सका। तुम अिसे मुझसे ज्यादा अच्छी तरह जानते होगे। किन्तु मेरे आसपास बैठे हुअे नौजवानो! मैं तुमसे जो चाहता हूँ, वह यह है कि तुममें कुछ न कुछ बहादुरी होनी चाहिये। यदि वह तुममें है, तो मुझे अेक बड़ी बात तुम्हें सुझानी है। मैं आशा रखता हूँ कि तुममें से ज़्यादातर कुँवारे हैं और तुममें काफी विद्यार्थी ब्रह्मचारी हैं। मैंने 'काफी विद्यार्थी' शब्द अिसलिअे कहे हैं कि मैं विद्यार्थियोंको जानता हूँ। जो विद्यार्थी अपनी बहन पर कामी दृष्टि डालता है, वह ब्रह्मचारी नहीं है। मैं तुमसे यह प्रतिज्ञा कराना चाहता हूँ कि शादी करेंगे तो विधवा कन्यासे ही करेंगे, नहीं तो जन्मभर कुँवारे रहेंगे। तुम अैसी प्रतिज्ञा करो। अपने माता-पिता (यदि हों तो) या अपनी बहनोंके और सारी दुनियाके सामने यह घोषणा करो। मैं विधवा कन्याअें अिसलिअे कहता हूँ कि जो भाषा चल पड़ी है, अुसकी भूल सुधर जाय। क्योंकि मैं मानता हूँ कि दस-पंद्रह बरसकी लड़की, जिसकी अपने तथाकथित विवाहमें राय नहीं ली गअी हो, जो शादीके बाद कथित पतिके साथ कभी रही न हो और जिसे अेकाअेक विधवा घोषित कर दिया गया हो, विधवा है ही नहीं। अुसे विधवा कहना विधवा शब्दका और भाषाका दुरुपयोग करना है, पाप है। 'विधवा' शब्दके आसपास पवित्रताकी सुगंध है। रमाबाअी रानडे जैसी सच्ची विधवाओंका मैं पुजारी हूँ।

अुन्हें अिस बातका ज्ञान था कि विधवा क्या होती है। किन्तु अेक नौ सालकी बच्चीको यह बिलकुल मालूम नहीं होता कि वर क्या होता है। यदि यह कहना सच नहीं हो कि अिस हिस्सेमें अैसी विधवाअें हैं, तो मेरा मुकदमा खारिज हो जाता है। किन्तु अैसी बाल-विधवाअें हों और तुम अिस शाप जैसे रिवाजसे छूटना चाहते हो, तो विधवा कन्यासे ब्याह करना तुम्हारा पवित्र कर्तव्य हो जाता है। मैं यह मानने जितना वहमी तो ज़रूर हूँ कि जो राष्ट्र अैसे पाप करता है, अुसे अुन सब पापोंकी शरीरसे सजा भोगनी पड़ती है। मैं मानता हूँ कि हम अिस सारे पापके भारसे ही गुलामीकी हालतमें पहुँचे हैं। ब्रिटिश पार्लियामेण्टकी तरफसे तुम्हारे हाथोंमें तुम्हारी कल्पनाका सुन्दरसे सुन्दर शासन-विधान आ जाय, तो भी अुसका अमल करनेवाले योग्य स्त्री-पुरुष तुम्हारे देशमें न होंगे, तो वह किसी कामका नहीं रहेगा। क्या तुम यह समझते हो कि जब तक अपनी प्राथमिक ज़रूरतें पूरी करनेकी अिच्छा रखनेवाली अेक भी विधवाको अैसा करनेसे जबरन रोका जाता है, तब तक हम अपनेको अपने आप पर या दूसरों पर राज्य करने लायक या ३० करोड़के राष्ट्रके भावीके विधायक बनने लायक कह सकते हैं? हिन्दू धर्मकी भावनासे ओतप्रोत मनुष्यकी हैसियतसे मैं कहता हूँ कि यह धर्म नहीं; अधर्म या पाप है। यह माननेकी भूल न करना कि मेरे भीतरसे जो भावना बोल रही है, वह पश्चिमकी भावना बोल रही है। मै भारतभूमिकी पवित्र भावनासे भरा होनेका दावा करता हूँ। मैंने पश्चिमकी बहुतसी चीज़ें अपनाअी हैं, किन्तु यह अुनमें शामिल नहीं है। हिन्दू धर्ममें अिस तरहके विधवापनके लिअे कोअी आधार नहीं है।

मैंने बाल-विधवाओंके लिअे जो कुछ कहा है, वह बाल-पत्नियोंके लिअे भी ज़रूर लागू होता है। सोलह वर्षसे नीचेकी लड़कीके साथ तुम्हें शादी हरगिज न करनी चाहिये। विषय-वासना पर अितना काबू रखनेकी शक्ति तुममें ज़रूर होनी चाहिये। यदि मेरा बस चले तो

में शादीके लिअे कमसे कम अुम्र बीस बरसकी रखूँ। भारतमें भी बीस बरसकी अुम्र काफ़ी जल्दीकी है। लड़कियोंके समयसे पहले जवान होनेकी जिम्मेदारी भी हमारी ही है, भारतकी आब-हवाकी नहीं। कारण मैं अैसी बीस-बीस सालकी लड़कियोंको जानता हूँ, जो शुद्ध और निर्मल हैं और चारों तरफ़से तूफ़ान आने पर भी अडिग रह सकती हैं। यह ज़रूरी है कि हम अिस अकाल यौवनको छातीसे लगाकर न रखें। कुछ ब्राह्मण विद्यार्थी मुझे कहते हैं कि 'हम अिस सिद्धान्त पर नहीं चल सकते। हममें सोलह साल तक लगभग कोअी भी लड़कीको कुँवारी नहीं रखता। माता-पिता दस, बारह या ज्यादासे ज्यादा तेरह वर्ष तक ज्यादातर लड़कियोंकी शादी कर ही देते हैं।' अैसा कहनेवाले ब्राह्मण युवकोंसे मैं कहता हूँ कि 'तुम अपने आप पर काबू न रख सको, तो ब्राह्मण बनना छोड़ दो। बचपनमें विधवा हुअी १६ सालकी लड़कीको पसन्द करो। अिस अुम्र तक पहुँची हुअी ब्राह्मण विधवा न पा सको, तो जाओ तुम अपनी पसन्दकी किसी भी लड़कीसे शादी कर लो। मैं कहता हूँ कि बारह बरसकी लड़की पर बलात्कार करनेके बजाय दूसरी जातिकी लड़कीके साथ विवाह करनेवाले लड़केको हिन्दुओंका अीश्वर क्षमा कर देगा। तुम्हारा दिल साफ़ न हो और तुम अपनी वासनाओं पर काबू न रख सको, तो तुम शिक्षित नहीं रह जाते। . . . चरित्रहीन शिक्षा और आत्म-शुद्धिके बिना चरित्र किस कामका है?'

* *

कालीकटके अेक अध्यापककी विनतीके जवाबमें अब मैं सिगरेट और चाय-कॉफी पीनेकी आदतोंके बारेमें कुछ कहूँगा। ये चीज़ें जीवनकी ज़रूरतें नहीं। कुछ लोग दिन भरमें दस-दस 'कप' कॉफी पी जाते हैं। क्या स्वास्थ्य बढ़ाने और अपना कर्तव्य पूरा करने जितना जागनेके लिअे यह ज़रूरी है? यदि जागते रहनेके लिअे कॉफी या चाय लेना ज़रूरी हो, तो अुसे न लेकर सो जाना ज्यादा अच्छा है। हमें अिन चीज़ोंके गुलाम नहीं बनना चाहिये। चाय-कॉफी पीनेवालोंका बहुत बड़ा

भाग जिन चीज़ोंका गुलाम बन जाता है। सिगार या सिगरेट देशी हो या विदेशी, अुससे दूर ही रहना चाहिये। धूम्रपान नशेकी दवा जैसा है। और तुम जो सिगार पीते हो, अुसमें कुछ अफीमका पुट लगा रहता है। यह तुम्हारे ज्ञानतंतुओं पर असर करता है और बादमें तुम अुसे छोड़ नहीं सकते। अेक भी विद्यार्थी अपने मुँहको धुआँदान बनाकर किस तरह गन्दा कर सकता है? यदि तुम तंबाकू और चाय-कॉफ़ी पीनेकी आदत छोड़ दो, तो तुम्हें पता चलेगा कि तुम अपना कितना ज्यादा रुपया बचा सकते हो। टॉलसटायकी कहानीमें अेक शराबी ख़ून करनेकी अपनी योजना पर अमल नहीं कर सका। तब वह सिगारके कुछ कश खींचता है, हँसते-हँसते खड़ा होता है और यह कहकर कि 'मैं कैसा नामर्द हूँ!' खंजर हाथमें लेता है और ख़ून कर डालता है। टॉल्सटायने यह अनुभवसे कहा है। व्यक्तिगत अनुभवके बिना अुन्होंने कुछ भी नहीं लिखा। वे शराबसे भी सिगार और सिगरेटका ज्यादा विरोध करते हैं। किन्तु तुम यह माननेकी भूल न करना कि शराब और तंबाकूके बीच चुनाव करना हो, तो तंबाकूसे शराब कम बुरी है। अिन दोनोंमें तुलना करके पसंद करने जैसा कुछ भी नहीं है।

यंग अिंडिया, १५-९-'२७

३

सच्चा प्रेम स्तुतिसे प्रकट नहीं होता, सेवासे प्रकट होता है। अिसके लिअे आत्मशुद्धि चाहिये; यह सेवाकी अनिवार्य शर्त है।

. . . हमारी स्वराज्य-साधनाके अिस अमूल्य वर्षमें हमने अपनी आत्मशुद्धिकी साधना पूरी की होगी तो भी काफी है।

नवजीवन, १७-३-'२९

# विद्यार्थी परिषदोंका कर्तव्य

छठी सिंध विद्यार्थी परिषदके मंत्रीने मेरे पास अेक छपा हुआ परिपत्र भेजा था और मेरा सन्देश माँगा था। . . . नीचेका हिस्सा मैंने अिस परिपत्रमें से लिया है। अिस परिपत्रके बारेमें मैं अितना कहूँगा कि यह बुरी तरह छपा हुआ है और अिसमें जो भूलें रह गअी हैं, वे विद्यार्थियोंकी संस्थाके लिअे क्षम्य नहीं मानी जा सकतीं :

"अिस परिषदके व्यवस्थापक परिषदको यथासंभव रसप्रद और ज्ञानवर्धक बनानेका भरसक प्रयत्न कर रहे हैं। . . . शिक्षाके बारेमें अेक व्याख्यानमाला रखनेका हमारा अिरादा है और हमारी प्रार्थना है कि आपका लाभ भी हमें आप दें। . . . यहाँ सिंधमें स्त्री-शिक्षाके सवाल पर खास तौर पर विचार करनेकी जरूरत है . . . विद्यार्थियोंकी दूसरी जरूरतोंकी तरफ भी हमारा दुर्लक्ष नहीं है। खेल-कूदकी होड़ रखी गअी है, और यह तथा भाषण-प्रतियोगिता परिषदमें और ज्यादा रस पैदा करेंगी, अैसी आशा है। अिसके सिवाय नाटक और संगीतको भी हमने अपने कार्यक्रममें स्थान दिया है। . . . अुर्दू और अंग्रेजी नाटक भी खेले जायँगे।"

अैसा अेक भी वाक्य मैंने नहीं छोड़ा है, जिससे यह खयाल आ सके कि परिषदमें क्या-क्या करनेका विचार है। फिर भी विद्यार्थी लोगोंके हमेशा काम आनेवाली चीजोंमें से अेकका भी अिसमें अुल्लेख नहीं मिलता। अिसमें मुझे शंका नहीं कि नाटक, संगीत और कसरतके खेल 'बड़े पैमाने' पर रखे गये होंगे। अवतरण चिन्हवाले शब्द मैंने परिपत्रमें से ही लिये हैं। अिसमें भी मुझे शंका नहीं कि स्त्री-शिक्षाके बारेमें आकर्षक निबंध परिषदमें पढ़े गये होंगे। किन्तु अिन

परिपत्रको देखें, तो अिसमें 'देती-लेती' (दहेज) के अुस शर्मनाक रिवाजका कहीं जिक्र नहीं। विद्यार्थी अिस कुरीतिसे छूटे नहीं हैं। यह कुरीति कअी तरहसे सिंधी लड़कियोंकी जिन्दगीको नरकके समान बना डालती है, और लड़कियोंके माता-पिताका जीवन भी दुःखी कर देती है। अिस परिपत्रमें यह भी कहीं नहीं दीखता कि विद्यार्थियोंकी नैतिकताके सवालकी चर्चा करनेका परिषदका अिरादा था। अिसी तरह अिसमें अैसा भी कुछ नहीं जान पड़ता कि विद्यार्थियोंको निडर राष्ट्र-निर्माता बननेका रास्ता दिखानेके लिअे परिषद कुछ करना चाहती है। . . . पश्चिमकी बेहूदी नकलसे या शुद्ध और लच्छेदार अंग्रेजी लिखना-बोलना आनेसे स्वतंत्रताके मन्दिरकी अिमारतमें अेक भी अींट नहीं जुड़ेगी। आज विद्यार्थी लोगोंको जो शिक्षा मिलती है, वह भूखसे छटपटाते हुअे भारतके लिअे बेहद खर्चीली है। अिस शिक्षाको कभी भी पानेकी आशा रखनेवाले लोगोंकी संख्या 'दरियेमें खसखस' के बराबर है। अैसी शिक्षा पानेवाले विद्यार्थियोंको योग्य साबित होना हो, तो अुन्हें राष्ट्रके चरणों पर अपना खून और पसीना — अपना जीवन-रस अर्पण करना चाहिये। विद्यार्थियोंको सच्चे संरक्षणको ध्यानमें रख कर सुधारके अगुआ बनना चाहिये। राष्ट्रमें जो कुछ अच्छा है अुसका संरक्षण करते हुअे समाजमें जो बेशुमार बुराअियाँ घुस गअी हैं, अुन्हें नेस्त-नाबूद करना चाहिये।

अैसी परिषदोंका कर्तव्य यह है कि वे विद्यार्थियोंके सामने जो सच्ची हालत है, अुसके बारेमें अुनकी आँखें खोलें। शालाके वर्गोंमें विदेशी वातावरण होनेके कारण विद्यार्थियोंको जो चीजें सीखनेका मौका वहाँ नहीं मिलता, अुन चीजोंके बारेमें ये परिषदें अुन्हें विचार करना सिखायें। अिन परिषदोंमें वे निरे राजनैतिक माने जानेवाले सवालों पर भले ही चर्चा न कर सकें। परन्तु सामाजिक और आर्थिक सवालोंका अध्ययन और चर्चा तो वे कर ही सकते हैं, जो हमारी पीढ़ीके लिअे बड़ेसे बड़े राजनैतिक सवालोंके बराबर ही महत्व रखते हैं। राष्ट्र-संगठनके

कार्यक्रममें राष्ट्रके अेक भी अंगको अछूता छोड़नेसे काम नहीं चल सकता विद्यार्थियोंको करोड़ों बेजबान लोगों पर अपनी छाप डालनी है। अुन्हें प्रांत, गाँव, वर्ग या जातिकी दृष्टिसे नहीं, बल्कि करोड़ों लोगोंकी दृष्टि सोचना सीखना चाहिये। अिन करोड़ोंमें अछूत, शराबी, गुंडे और वेश्याएं तक शामिल हैं। समाजमें अिन वर्गोंकी हस्तीके लिअे हममें से हरअेक आदमी जिम्मेदार है। पुराने ज़मानेमें विद्यार्थी 'ब्रह्मचारी' कहलाते थे। ब्रह्मचारीका अर्थ है अीश्वरके रास्ते और अीश्वरसे डर कर चलनेवाला। अिन ब्रह्मचारियोंकी राजा और बड़े लोग अिज्जत करते थे। समाज खुशीसे अिनका पोषण करता था और बदलेमें वे समाजको सौ गुनी बलवान आत्माअें, बलवान मानस और बलवान भुजाअें अर्पण करते थे। आजकी दुनियामें गिरी हुअी जातियोंकी शुभ आशाअें अपने विद्यार्थियों पर लगी हुअी हैं। ये विद्यार्थी हर मामलेमें आत्मत्याग करनेवाले अगुआ सुधारक हुअे हैं। हमारे यहाँ भारतमें अैसे अुदाहरण न हों सो बात नहीं, किन्तु वे अुँगलियों पर गिने जा सकते हैं। मेरा कहना यह है कि विद्यार्थी परिषदोंको अिस तरहका व्यवस्थित काम हाथमें लेना चाहिये, जो ब्रह्मचारीकी स्थितिको शोभा दे सके।

नवजीवन, १९-६-'२७

## ११
# विद्यार्थी क्या कर सकते हैं

### १

जैसे स्वराजकी कुंजी विद्यार्थियोंकी जेबमें है, वैसे ही समाज-सुधार और धर्म-रक्षाकी कुंजी भी वे अपनी जेबमें लिये फिरते हैं । यह हो सकता है कि लापरवाहीसे अपनी जेबमें पड़ी हुआी अनमोल चीजका अुन्हें पता न हो । . . . मैं आशा करता हूँ कि विद्यार्थी अपनी शक्तिका अन्दाज लगा लेंगे ।

नवजीवन, २६–२–'२८

### २

तीन विद्यार्थी लिखते हैं : "हम देशकी सेवा करना चाहते हैं, पढ़ाअी करते हुअे और अपनी जगह रहते हुअे हम देशकी सेवा किस तरह कर सकते हैं, यह हमें 'नवजीवन' के जरिये बताअियें ।" अिन विद्यार्थियोंने अपना नाम, पता और अुम्र लिखी है । वे कहते हैं : "हमारा नाम-पता जाहिर न कीजिये । हमें पत्र भी न लिखियेगा । हमारी अैसी हालत भी नहीं कि हम पत्र भी मँगा सकें ।" अैसे विद्यार्थियोंको सलाह देना मैं मुश्किल मानता हूँ । जो अपने लिखे हुअे पत्रका जवाब भी न पा सकें, अुन्हें क्या सलाह दी जा सकती है? फिर भी अितना तो कहा ही जा सकता है : आत्मशुद्धि ही अुत्तम देशसेवा है । क्या अिन विद्यार्थियोंने आत्माकी शुद्धि कर ली है? अुनके मन पवित्र हैं? विद्यार्थियोंमें फैली हुआी गंदगीसे वे दूर रह सके हैं? वे सत्य वगैराका पालन करते हैं? पत्रका अुत्तर पानेमें भी अुन्हें डर है, तो अिस हालतमें ही कहीं न कहीं दोष है । विद्यार्थियोंको अिस डरमें से निकलना आना चाहिये । अुन्हें अपने विचार बड़ोंके

सामने हिम्मत और दृढ़ताके साथ रखना सीखना चाहिये । ये विद्यार्थी खादी पहनते हैं? कातते हैं? यदि वे कातते हों और खादी पहनते हों, तो भी ये देशसेवामें भाग लेते हैं । फुरसत मिलने पर बीमार पड़ोसीकी सेवा करते हैं? अपने आसपास गंदगी रहती हो, तो अवकाश निकालकर स्वयं मेहनत करके अुसे साफ करते हैं? अैसे कअी सवाल पूछे जा सकते हैं और यदि अिनके जवाब विद्यार्थी संतोषजनक दे सकते हों, तो आज भी अुनकी जगह देशसेवकोंमें बड़ी मानी जायगी ।

नवजीवन, ८-७-'२८

## ३

विरोधके डरके बिना यह कहा जा सकता है कि चीन जैसे बड़े देशकी आज़ादीकी लड़ाअीके अगुआ वहाँके विद्यार्थी ही थे और मिस्रकी सच्ची स्वतंत्रताके संग्राममें विद्यार्थी ही सबसे आगे हैं । भारतके विद्यार्थियोंसे भी अैसी ही आशा रखी जाती है । पाठशालाओं या विद्यालयोंमें यदि वे जाते हैं या अुन्हें जाना चाहिये, तो स्वार्थके लिअे नहीं, बल्कि सेवाके लिअे। राष्ट्रका नवनीत विद्यार्थियोंको ही बनना चाहिये ।

विद्यार्थियोंके रास्तेमें जो बड़ीसे बड़ी रुकावट होती है, वह अकसर काल्पनिक परिणामोंके डरकी होती है । अिसलिअे अुन्हें जो पहला पाठ सीखना है, वह डर छोड़नेका है । जो विद्यार्थी स्कूलसे निकाल दिये जानेका, गरीबीका और मौतका भी डर रखते हैं, अुनसे कभी आज़ादी नहीं ली जा सकती । सरकारी संस्थाओंके विद्यार्थियोंको बड़ेसे बड़ा डर अिस बातका होता है कि वे निकाल दिये जायँगे । अुन्हें समझना चाहिये कि बिना हिम्मतकी शिक्षा अैसी ही है, जैसे मोमका पुतला । दीखनेमें सुन्दर होते हुअे भी किसी गरम चीज़के जरा छू जानेसे ही वह पिघल जाता है । *

* यंग अिंडिया, १२-७-'२८ । 'Awakening among students' लेखसे ।

४

सारे देशकी तरह विद्यार्थियोंमें भी अेक तरहकी जाग्रति और अशान्ति फैल गअी है। यह शुभ चिन्ह है, किन्तु आसानीसे अशुभ बन सकता है। भापको काबूमें रखकर अुसका भापयंत्र बनाते हैं और वह प्रचण्ड शक्ति बनकर अितना बोझा ढो लेता है जो हमने कभी सोचा भी न हो। यदि अुसे अिकट्ठी न करें, तो वह या तो बेकार जाती है या नाश करती है। अिसी तरह आज विद्यार्थी आदि वर्गोंमें पैदा हुअी भापको जमा न किया जायगा, तो वह व्यर्थ जायगी या हमारा ही नाश करेगी। यदि समझदारीके साथ अुसे संग्रह किया जायगा, तो अुसीसे अेक प्रचंड शक्ति पैदा हो जायगी।

* * *

मुझे आजकी ब्रिटिश राज्य पद्धतिके लिअे न अिज्जत है और न प्रेम। मैंने अुसे शैतानका काम कहा है। मैं अिस पद्धतिका हमेशा नाश चाहता हूँ। यह नाश भारतके नवयुवकों और नवयुवतियोंके हाथों हो, तो सब तरहसे अच्छा है। यह नाश करनेकी शक्ति पैदा करना विद्यार्थियोंके हाथमें है। यदि वे अपनेमें पैदा होनेवाली भापको जमा करके रखें, तो यही वह शक्ति पैदा कर सकती है।

* * *

जहाँ तक मै समझ पाया हूँ, विद्यार्थी शान्तिमय युद्धमें आहुति देना चाहते हैं। किन्तु मेरे समझनेमें भूल हो, तो भी अूपरकी बात दोनों तरहकी—आत्मबलवाली और पशुबलवाली—लड़ाअीके लिअे लागू होती है। हमें गोला-बारूदसे लड़ना हो, तो भी संयम रखना पड़ेगा, भापको अिकट्ठा करना पड़ेगा। अेक हद तक दोनों रास्ते अेक ही हैं। अिस्लामके खलीफोंने, अीसाअी क्रूसेडरों या धर्मवीरोंने और राजनीतिमें क्रॉमवेल और अुसके सिपाहियोंने अपूर्व बलिदान किया था। आजकलके अुदाहरण लें तो लेनिन, सनयात सेन आदिने सादगी,

दुःख सहनेकी शक्ति, भोगत्याग, अेकनिष्ठा और सतत जाग्रतिका, योगियोंको भी शरमानेवाला नमूना दुनियाके सामने पेश किया है। अुनके अनुयायियोंने भी वफादारी और नियम-पालनका अैसा ही अुज्वल नमूना पेश किया है।

अैसा ही किये बिना हमारा काम भी नहीं चलेगा। हमारा त्याग अभी न कुछ-सा है। हमारी नियम-पालनकी शक्ति भी थोड़ी ही है; हमारी सादगीकी मात्रा कम है; हमारी अेकनिष्ठा नाम-मात्रकी ही मानी जायगी। हमारी दृढ़ता और अेकाग्रता आरम्भकी स्थितिमें ही है। अिसलिअे नौजवान लोग याद रखें कि अुन्हें अभी बहुत कुछ करना बाकी है। अुन्होंने जो कुछ किया है, वह मेरे ध्यानमें है। मुझसे प्रशंसा करानेकी अुन्हें जरूरत न होनी चाहिये। मित्र मित्रकी बड़ाअी करे, तो वह मित्र न रहकर भाट बन जाता है और मित्रका दरजा खो देता है। मित्रका काम कमियाँ दिखाकर अुन्हें दूर करनेका प्रयत्न करना है।

नवजीवन, ३-१-'२९

# १२
# बहिष्कार और विद्यार्थी

अेक कॉलेजके प्रिन्सिपाल लिखते हैं :

"बहिष्कार आन्दोलनको चलानेवाले लोग विद्यार्थियोंको अुसमें खींच रहे हैं। यह साफ है कि अिस राजनैतिक प्रचारके काममें विद्यार्थी जो हिस्सा लेते हैं, अुसे कोअी जरा भी महत्व नहीं दे सकता। जब विद्यार्थी अपने स्कूल-कॉलेज छोड़कर किसी भी प्रदर्शनमें शरीक होते हैं, तब वे स्थानीय फसादियोंके साथ मिल जाते हैं, बदमाशोंकी तमाम बुराअियोंके लिअे अुन्हें जिम्मेदार बनना पड़ता है और अकसर पुलिसके डंडोंकी पहली मार अुन्हीं पर पड़ती है। अिसके सिवाय, अुनके स्कूल और कॉलेजके अधिकारी अुन पर नाराज होते हैं और वे जो सजा देते हैं, वह भी अुन्हें भोगनी पड़ती है। और अपनी आज्ञा भंग होनेके कारण माता-पिता या पालक लोग रुपया रोक देते हैं और विद्यार्थियोंकी जिन्दगी बरबाद होती है सो अलग। छुट्टीके दिनोंमें अपढ़ देहातियोंको शिक्षा देना, जन-स्वास्थ्यके ज्ञानका प्रचार करना वगैरा युवकोंके कामोंको मैं समझ सकता हूँ। किन्तु अुन्हें अपने ही माता-पिता और शिक्षकोंका विरोध करते, रास्तों पर संदिग्ध लोगोंकी सोहबतमें घूमते और कानून और व्यवस्थाको तोड़नेमें मदद देते देखकर बड़ा दुःख होता है। मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप राजनैतिक पुरुषोंको यह सलाह दें कि वे अपने प्रदर्शनोंको ज्यादा असरवाले बनानेके लिअे विद्यार्थियोंको अुनके योग्य कार्यमें से खींचकर न ले जायँ। असलमें अैसा करके वे अपने प्रदर्शनोंकी कीमत घटाते हैं, क्योंकि अैसे प्रदर्शनोंको स्वार्थी और मूर्ख आन्दोलनकारियों द्वारा बहकाये हुअे अविचारी लड़कोंका काम मान लिया जा सकता है।

" विद्यार्थी आधुनिक राजनीति पढ़ें, जिसके मैं विरुद्ध नहीं। शिक्षक रोजमर्राके सवालोंके बारेमें पक्ष और विपक्षके अखबारोंमें प्रगट होनेवाले विचार अिकट्ठे करके विद्यार्थियोंके आगे रखें और अुस परसे अपना-अपना फैसला कर लेना अुन्हें सिखायें, तो यह बड़ी अच्छी बात है। मैंने यह योजना सफलताके साथ आजमायी है। सचमुच विद्यार्थियोंके लिअे किसी भी विषयकी मनाही नहीं, क्योंकि बर्ट्रॉण्ड रसल और दूसरे लोग यह कहते हैं कि काम-मीमांसाके प्रश्नोंके बारेमें भी अुन्हें पढ़ाना चाहिये। विद्यार्थियोंको अैसे अुद्देश्योंके लिअे हथियार बनाया जाता है, जो न अुनके कामके हैं और न अुनका अुपयोग करनेवालोंके कामके हैं। मैं अिसी चीज़का कट्टर विरोधी हूँ। "

*पत्र लिखनेवालेने अिसी आशासे मुझे लिखा है कि मैं विद्यार्थियोंके* सक्रिय राजनीतिमें भाग लेनेकी निन्दा करूँगा। किन्तु मुझे दुःख है कि मुझे अुन्हें निराश करना पड़ रहा है। अुन्हें यह जानना चाहिये था कि १९२०-२१ में स्कूल-कॉलेज छोड़कर कैदकी जोखमवाले राजनैतिक फर्ज अदा करनेमें लग जानेके लिअे अुन्हें ललचानेमें मेरा हाथ कम नहीं था। मैं मानता हूँ कि देशके राजनैतिक आन्दोलनमें अगुआ बनकर भाग लेना विद्यार्थियोंका स्पष्ट कर्तव्य है। दुनियामें सब जगह ये लोग अैसा ही कर रहे हैं। भारतमें तो, जहाँ राजनैतिक *भान* कल तक अधिकतर अंग्रेजी शिक्षा पाये हुअे वर्ग तक ही मर्यादित था, अुनका अैसा करनेका और भी ज्यादा फर्ज है। चीनमें और मिस्रमें राष्ट्रीय प्रवृत्तिको संभव बनानेवाले वहाँके विद्यार्थी लोग ही थे। अुनसे भारतके विद्यार्थी कैसे पीछे रह सकते हैं?

प्रिंसिपाल साहब जिस बातका आग्रह रख सकते हैं, वह यह हो सकती है कि विद्यार्थियोंको अहिंसाके नियम पालने चाहियें और फसादी *लोगोंके असरमें न आकर अुन पर काबू रखना चाहिये।*

यंग अिंडिया, २९-३-'२८

## १३

# विद्यार्थियोंकी हड़ताल

अुचित हो या अनुचित, मज़दूरोंकी हड़ताल काफी बुरी चीज़ है, और विद्यार्थियोंकी हड़ताल तो अुससे भी बुरी है — अेक तो अुसके आखिरी परिणामोंके कारण और दूसरे अुसका पक्ष करनेवालोंकी हैसियतके कारण। मज़दूर अपढ़ या अशिक्षित होते हैं, जबकि विद्यार्थी शिक्षा पाये हुअे होते हैं। मज़दूरोंको हड़तालसे कुछ भौतिक स्वार्थ साधने होते हैं और अुन्हें रखनेवाले पूँजीपतियोंके स्वार्थसे वे अलग होते हैं या विरुद्ध भी हो सकते हैं, जबकि विद्यार्थियों या शिक्षा संस्थाओंके अधिकारियोंकी बात अैसी नहीं होती। अिसलिअे विद्यार्थियोंकी हड़ताल अैसे दूरके परिणाम लानेवाली होती है कि असाधारण परिस्थितियोंमें ही अुसे ठीक माना जा सकता है।

यद्यपि अच्छी तरह चलाये जानेवाले स्कूल-कॉलेजोंमें विद्यार्थियोंकी हड़तालके विरले ही मौके आने चाहियें, फिर भी अैसे मौकोंकी कल्पना की जा सकती है जब अुन्हें भी हड़ताल करनी पड़े। जैसे कोअी प्रिन्सिपाल लोकमतके खिलाफ होकर सार्वजनिक आनन्द-अुत्सवके दिनको — जिसे माता-पिता और विद्यार्थी दोनों मनाना चाहते हों — त्यौहारके तौर पर न माने, तो सिर्फ अुस दिनके लिअे हड़ताल रखना विद्यार्थियोंके लिअे ठीक समझा जायगा। जैसे-जैसे विद्यार्थी अपना स्वरूप ज्यादा-ज्यादा समझते जायेंगे और राष्ट्रके प्रति अपनी जिम्मेदारीकी भावनाके बारेमें ज्यादा-ज्यादा जाग्रत होते जायेंगे, वैसे-वैसे अैसे प्रसंग ज्यादा आते रहेंगे।

*　　　*　　　*

जब शिक्षक वचन-भंगका अपराधी पाया जाता है, तब अपने प्रतिष्ठित धन्धेके कारण जिस अमर्यादित मानका वह अधिकारी होता है, वह मान अुसे देना असम्भव होता है।

आगे बढ़े हुअे राजनैतिक विचार रखनेवाले विद्यार्थियों या सरकारको नापसन्द होनेवाली राजनैतिक सभाओंमें कुछ भी भाग लेनेवाले विद्यार्थियों पर सरकारी स्कूलों और कॉलेजोंमें बहुत ज्यादा जासूसी की जाती है। और अुन्हें बहुत ज्यादा सताया भी जाता है। यह बेजा दखल अब तुरन्त बन्द होना चाहिये। विदेशी राज्यके जुअेके नीचे दुःखसे चीखनेवाले भारत जैसे देशमें राष्ट्रीय आज़ादीके आन्दोलनमें विद्यार्थियोंको भाग लेनेसे रोकना असम्भव है। जो कुछ हो सकता है, वह अितना ही कि अुनके अुत्साहको अितना संयत रखा जाय कि वह अुनकी पढ़ाअीमें रुकावट न डाले। वे लड़ने-झगड़नेवाले दलोंके हिमायती न बनें, किन्तु अुन्हें अपनी पसन्दकी राजनैतिक राय रखने और अुसका सक्रिय प्रचार करनेके लिअे स्वतंत्र रहनेका अधिकार है। शिक्षा संस्थाओंका काम अुनमें भरती होना पसन्द करनेवाले लड़के-लड़कियोंको शिक्षा देना और अुसके ज़रिये अुनका चरित्र बनाना है; संस्थाके बाहरकी अुनकी राजनैतिक या नैतिक प्रवृत्तिको छोड़कर दूसरी प्रवृत्तियोंमें दखल देनेका अुनका काम कभी नहीं है।*

---

* यंग अिंडिया, २४-१-'२९, 'Duty of Resistance' लेखमें।

# १४
# युवक वर्गसे

## १

अेक कॉलेजका विद्यार्थी लिखता है :

"कांग्रेसके प्रस्तावके अनुसार अिस साल हमें औपनिवेशिक स्वराज्य मिलना चाहिये । किन्तु वर्तमान परिस्थितिको देखते हुअे अैसा नहीं जान पड़ता कि सरकार अैसी कोअी चीज़ देगी; और यह निश्चित है कि नहीं देगी ।

"तो फिर कांग्रेसके प्रस्तावके अनुसार अगले सालसे संपूर्ण असहयोग शुरू हो जायगा । हम युवकोंको तो अुसमें सबसे पहले भाग लेना पड़ेगा । तो क्या हमें स्कूल-कॉलेज छोड़ने पड़ेंगे? और यदि अैसा ही हो, तो आप अभीसे क्यों नहीं चेतावनी देते? स्कूलोंकी बात तो खैर ठीक है, पर कॉलेजोंका मामला ध्यान देने लायक है । सत्रकी जो भारी फीस विद्यार्थी चुका देंगे, वह क्या अुन्हें कॉलेज छोड़ते समय वापस मिल जायगी? यदि नहीं, तो विद्यार्थियोंका बहुतसा रुपया अिस तरह चला जायगा । अुसमें रुपयेवालोंको तो हर्ज नहीं, परन्तु गरीब विद्यार्थी बड़े परेशान होंगे ।

"अिसलिअे यदि कॉलेजोंका भी बहिष्कार करना निश्चित हो या संभव हो, तो विद्यार्थियोंको अभीसे चेतावनी दे देना चाहिये, जिससे अुनकी मेहनत और अुनका धन बेकार न जाय ।

आशा है अिन सवालोंका जवाब ज़रूर मिलेगा ।"

अिस पत्रमें मुझे ज़वानीका अुछलता हुआ आशावाद नहीं दिखायी देता, अुसकी बहादुरी भी नहीं दीखती । अिसमें मौतके किनारे बैठे हुअे मेरे जैसेकी निराशा और कंजूस बनियेकी कंजूसी दीखती है । अिस

नवयुवकने यह निश्चय किसलिअे किया है कि "वर्तमान परिस्थितिको देखते हुअे" सरकार औपनिवेशिक स्वराज्य देगी ही नहीं। यह नवयुवक भूल जाता है कि सरकार कुछ नहीं देगी, तो जो कुछ मिलेगा वह हमें अपने संघबलसे, त्यागबलसे लेना पड़ेगा। कौड़ी-कौड़ीका हिसाब करनेवालेको जो असंभव दीखता हो, वह नवयुवकके साहसको बिलकुल संभव मालूम होना चाहिये। असंभवको संभव बनानेमें ही नवयुवककी वीरता और शोभा है।

किन्तु मैं मानता हूँ कि जैसा अभी हो रहा है, वैसा ही नवयुवक और जनताके दूसरे भाग होने दें, तो वर्षके अन्तमें हमारी जीत नहीं हो सकती। अैसा ही हो, तो भी बहादुर आदमियोंके लिअे यह स्वागत करने लायक प्रसंग ही होगा, क्योंकि अुससे लड़ाअीका अवसर आयेगा। लड़ाअीका अवसर आयेगा, तो क्या यह समझकर कि 'मेरी ज़मीन लुट जायगी' योद्धा अपनी ज़मीन छोड़ देता है?

विद्यार्थियोंके लिअे घबरानेका कोअी भी कारण मुझे तो दिखायी नहीं देता। लड़ाअी आ जाय तो भी वे विश्वास रखें कि छोड़ा हुआ कॉलेज आखिर अुनका ही है। स्वराज्यके यज्ञका विचार करते समय फीसका खयाल तो बहुत ही तुच्छ चीज़ हो जाती है। जब बहुतोंको अपना सब कुछ छोड़नेका मौका आ जायगा, तब फीस किस गिनतीमें हो सकती है?

अितना कहनेके बाद अब असली सवाल पर आता हूँ। सरकारी स्कूल-कॉलेजोंका बहिष्कार करना या न करना, यह तो आखिरमें कांग्रेस ही तय करेगी। मेरी चले तो मैं ज़रूर सरकारी स्कूल-कॉलेजोंका बॉयकाट करवाअूँ। यह दीयेकी तरह साफ़ दीखता है कि सरकार अिन स्कूल-कॉलेजोंके ज़रिये ही राज करती है। आचार्य रामदेवने विद्यापीठमें व्याख्यान देते हुअे अंग्रेज गवाहोंके ज़रिये साबित कर दिया था कि आजकलकी शिक्षाका आकार तैयार करनेमें सरकारकी मन्शा राज्यके लिअे

नौकर पैदा करनेकी थी। हजारों नौजवान जो सरकारी मुहर (डिग्री) चाहते हैं, वह नौकरीके लिअे ही चाहते हैं। मुहर पानेमें ज्ञानसिद्धि नहीं। ज्ञानसिद्धि पढ़नेसे मिलती है। मुहरकी जड़में नौकरी पानेकी लगन होती है। यह लगन स्वराज्य मिलनेमें रुकावट डालती है। युवकोंमें मैं नया तेज देखता हूँ। अिससे मुझे खुशी होती है। किन्तु अिससे मैं अंधा नहीं बन सकता। यह तेज अभी तो पल भरका और कुछ हद तक यांत्रिक और बनावटी है। जब सच्चा तेज आवेगा, तब वह सूर्यकी किरणोंकी तरह दुनियाको चकाचौंधमें डाल देगा। जब यह तेज आवेगा, तब किसी विद्यार्थीको स्कूल या कॉलेजकी गरज नहीं रहेगी। किन्तु अभी तो सरकारके कागजी नोटोंकी तरह अुसके स्कूल-कॉलेज भी चलनका रुपया हैं। अुनके मोहसे कौन बच सकता है?।

नवजीवन, १४-४-'२९

## २

[आगरा कॉलेज और सेण्ट जॉन कॉलेजके विद्यार्थी आगरा कॉलेजके हॉलमें गांधीजीको मानपत्र देनेके लिअे अिकट्ठे हुअे थे। मानपत्रमें विद्यार्थियोंने बताया था: "हम गरीब हैं, अिसलिअे हम सिर्फ अपने हृदय आपको अर्पण कर देते हैं। आपके आदर्शोंको हम मानते हैं, किन्तु अुन्हें अमलमें लानेकी हममें शक्ति नहीं है।" यह लाचारी और कमजोरीका प्रदर्शन युवकोंको शोभा दे सकता है? गांधीजीको अुससे दुःख हुआ। अुसे प्रकट करते हुअे अुन्होंने कहा:]

"मैं युवक लोगोंसे अैसी अश्रद्धा और निराशाकी बातें सुननेके लिअे बिलकुल तैयार न था। मेरे जैसा मौतके किनारे पहुँचा हुआ आदमी अपना बोझा हलका करनेके लिअे युवक वर्गसे आशा न रखे, तो किससे रखे? और जब आगरेके युवक मुझसे आकर कहते हैं कि वे मुझे अपना हृदय देते हैं, किन्तु कुछ कर नहीं सकते, तो अिसका क्या अर्थ? 'दरियामें लगी आग, बुझा कौन सकेगा?'"

यह बात कहते-कहते गांधीजीका हृदय भर आया: "यदि तुम चरित्र-बल पैदा नहीं करोगे, तो तुम्हारा सब पढ़ना और शेक्सपीयर और वर्ड्सवर्थका अध्ययन बेकार साबित होगा। जब तुम अपने मन पर काबू कर सकोगे, विकारोंको वशमें करने लग जाओगे, तब तुम्हारे प्रकट किये हुअे विचारोंमें जो अश्रद्धा और निराशाकी ध्वनि भरी है, वह जाती रहेगी।"

नवजीवन, २२-९-'२९

## १५

## छुट्टियोंका सदुपयोग

[ओक विद्यार्थीने कओी सवाल करके पूछा है कि छुट्टियोंका अच्छेसे अच्छा अुपयोग क्या हो सकता है। नीचेका भाग अुसे दिये हुअे जवाबमें से है।]

विद्यार्थी यदि अुत्साहके साथ काम हाथमें लें, तो ज़रूर बहुतसी बातें कर सकते हैं। अुनमें से कुछ यहाँ देता हूँ:

(१) रात और दिनकी पाठशालाअें चलाना। अुनके लिअे छुट्टीके दिनोंमें पूरा हो जाने लायक अभ्यासक्रम तैयार कर लेना।

(२) हरिजनोंके मुहल्लोंमें जाकर वहाँ सफ़ाअी करना और अुसमें हरिजन मदद दें, तो अुनकी मदद लेना।

(३) हरिजन बच्चोंको घूमने ले जाना, अुन्हें गाँवके पासके दृश्य बताना, प्रकृतिका निरीक्षण करना सिखाना, आम तौर पर अपने आसपासके प्रदेशमें दिलचस्पी लेना सिखाना और अैसा करते-करते अुन्हें अितिहास और भूगोलका सामान्य ज्ञान देना।

(४) अुन्हें रामायण-महाभारतकी सादी कहानियाँ पढ़ सुनाना।

(५) अुन्हें सरल भजन सिखाना।

(६) हरिजन लड़कोंके शरीर पर मैल चढ़ा हुआ दीख पड़े, तो वह सब साफ कर देना और बड़े और बच्चे दोनोंको सफ़ाओकी सरल शिक्षा देना ।

(७) खास-खास हिस्सोंके हरिजनोंकी हालतकी ब्यौरे वार रिपोर्ट तैयार करना ।

(८) बीमार हरिजनोंको दवा-दारू पहुँचाना ।

हरिजनोंमें क्या-क्या किया जा सकता है, अिसका यह तो सिर्फ अेक नमूना है । यह सूची जल्दीमें लिख डाली है । मुझे अिसमें शक नहीं कि समझदार विद्यार्थी अिसमें और बहुतसी बातें जोड़ लेगा ।

यहाँ तक तो मैंने हरिजनोंकी ही सेवाका विचार किया है, परन्तु सवर्ण हिन्दुओंकी सेवा करनेकी ज़रूरत भी कुछ कम नहीं हुआ है । विद्यार्थी लोग सवर्ण हिन्दुओं तक, अुनकी अिच्छा न होने पर भी, बड़ी नम्रताके साथ अछूतपन मिटानेका सन्देश पहुँचा सकते हैं । शुद्ध और प्रामाणिक साहित्य योजनाके साथ बाँटकर बहुतसा अज्ञान आसानीसे दूर किया जा सकता है । विद्यार्थी अस्पृश्यता-निवारणके हिमायती और अुसके विरोधी लोगोंकी गिनती करें और यह गिनती करते समय हरिजनोंके लिअे खुले और न खुले दोनों तरहके कुओं, पाठशालाओं और मन्दिरोंकी सूची तैयार करें ।

यह काम यदि वे व्यवस्थित ढंग पर और लगनके साथ करेंगे, तो अुसके अद्भुत परिणाम देख सकेंगे । हरअेक विद्यार्थी अेक डायरी रखे । अुसमें रोजके किये कामको दर्ज करे । अिस डायरी परसे छुट्टीके अन्त तक किये हुअे कामकी ब्यौरेवार किन्तु छोटी रिपोर्ट तैयार करके वह हरिजनसेवक संघकी प्रान्तीय शाखाको भेज दे ।

हरिजनबन्धु, २–४–'३३

# १६

# विद्यार्थी और हड़ताल

बंगलोरसे अेक विद्यार्थी लिखता है :

" 'हरिजन' का आपका लेख पढ़ा। अब आपसे प्रार्थना है कि विद्यार्थी अंडमान–दिवस, पंजाब हत्याकाण्ड विरोधी-दिवस जैसे मौकों पर हड़तालमें शरीक हों या न हों, अिस बारेमें आप अपनी राय बतायें।"

मैने यह कहा है कि विद्यार्थियोंके बोलने और चलने-फिरने पर लगी हुअी पाबन्दियाँ दूर होनी चाहियें। किन्तु राजनैतिक हड़तालें और प्रदर्शनोंका समर्थन मैं नहीं कर सकता। राय बनाने और अुसे जाहिर करनेके मामलेमें विद्यार्थियोंको पूरी आज़ादी होनी चाहिये। वे अपनी पसन्दके किसी भी राजनैतिक दलके साथ अपनी सहानुभूति दिखा सकते हैं। किन्तु मेरी राय है कि पढ़ाअीके समयमें अुस दलका काम करनेकी स्वतंत्रता अुन्हें नहीं हो सकती। यह नहीं हो सकता कि विद्यार्थी सक्रिय राजनैतिक कार्यकर्ता भी हो और साथ-साथ पढ़ता भी हो। बड़ी भारी राष्ट्रीय अुथल-पुथलके समय अिस बारेमें बारीकीसे मर्यादा बाँधना कठिन है। अैसे समय वे हड़ताल नहीं करते; या अुन परिस्थितियोंके लिअे भी 'हड़ताल' शब्द काममें लें, तो वे हमेशाके लिअे हड़ताल करते हैं—पढ़ाअी बन्द कर देते हैं। यानी अपवाद जैसा लगने पर भी सच पूछें तो अैसा प्रसंग अपवाद नहीं होता।

असलमें, सवाल करनेवालेकी बतायी हुअी नौबत कांग्रेसी मंत्रि-मण्डलोंवाले प्रान्तोंमें तो आनी ही न चाहिये, क्योंकि जिन पाबंदियोंको समझदार विद्यार्थी खुशीसे मंजूर न कर सकें, वे तो वहाँ लगायी ही नहीं

# विद्यार्थी और हड़ताल

बंगलोरसे अेक विद्यार्थी लिखता है :

" 'हरिजन' का आपका लेख पढ़ा। अब आपसे प्रार्थना है कि विद्यार्थी अंडमान-दिवस, पंजाब हत्याकाण्ड विरोधी-दिवस जैसे मौकों पर हड़तालमें शरीक हों या न हों, अिस बारेमें आप अपनी राय बतायें।"

मैंने यह कहा है कि विद्यार्थियोंके बोलने और चलने-फिरने पर लगी हुअी पाबन्दियाँ दूर होनी चाहियें। किन्तु राजनैतिक हड़तालों और प्रदर्शनोंका समर्थन मैं नहीं कर सकता। राय बनाने और अुसे जाहिर करनेके मामलेमें विद्यार्थियोंको पूरी आज़ादी होनी चाहिये। वे अपनी पसन्दके किसी भी राजनैतिक दलके साथ अपनी सहानुभूति दिखा सकते हैं। किन्तु मेरी राय है कि पढ़ाअीके समयमें अुस दलका काम करनेकी स्वतंत्रता अुन्हें नहीं हो सकती। यह नहीं हो सकता कि विद्यार्थी सक्रिय राजनैतिक कार्यकर्ता भी हो और साथ-साथ पढ़ता भी हो। बड़ी भारी राष्ट्रीय अुथल-पुथलके समय अिस बारेमें बारीकीसे मर्यादा बाँधना कठिन है। अैसे समय वे हड़ताल नहीं करते; या अुन परिस्थितियोंके लिअे भी 'हड़ताल' शब्द काममें लें, तो वे हमेशाके लिअे हड़ताल करते हैं—पढ़ाअी बन्द कर देते हैं। यानी अपवाद जैसा लगने पर भी सच पूछें तो अैसा प्रसंग अपवाद नहीं होता।

असलमें, सवाल करनेवालेकी बतायी हुअी नौबत कांग्रेसी मंत्रि-मण्डलोंवाले प्रान्तोंमें तो आनी ही न चाहिये, क्योंकि जिन पाबंदियोंको समझदार विद्यार्थी खुशीसे मंजूर न कर सकें, वे तो वहाँ लगायी ही नहीं

# १

# हिन्दी साहित्य सम्मेलन

## १*

आपने मुझको अिस सम्मेलनका सभापतित्व देकर कृतार्थ किया है। हिन्दी साहित्यकी दृष्टिसे मेरी योग्यता अिस स्थानके लिअे कुछ भी नहीं है, यह मैं खूब जानता हूँ। मेरा हिन्दी भाषाका असीम प्रेम ही मुझे यह स्थान दिलानेका कारण हो सकता है। मैं अुम्मीद करता हूँ कि प्रेमकी परीक्षामें मैं हमेशा अुत्तीर्ण होअूँगा।

साहित्यका प्रदेश भाषाकी भूमि जानने पर ही निश्चित हो सकता है। यदि हिन्दी भाषाकी भूमि सिर्फ अुत्तर प्रान्त होगी, तो साहित्यका प्रदेश संकुचित रहेगा। यदि हिन्दी भाषा राष्ट्रीय भाषा होगी, तो साहित्यका विस्तार भी राष्ट्रीय होगा। जैसे भापक वैसी भाषा। भाषा-सागरमें स्नान करनेके लिअे पूर्व-पश्चिम, दक्षिण-अुत्तरसे पुनीत महात्मा आयेंगे, तो सागरका महत्व स्नान करनेवालोंके अनुरूप होना चाहिये। अिसलिअे साहित्य-दृष्टिसे भी हिन्दी भाषाका स्थान विचारणीय है।

हिन्दी भाषाकी व्याख्याका थोड़ासा खयाल करना आवश्यक है। मैं कअी बार व्याख्या कर चुका हूँ कि हिन्दी भाषा वह भाषा है, जिसको अुत्तरमें हिन्दू व मुसलमान बोलते हैं और जो नागरी अथवा फ़ारसी लिपिमें लिखी जाती है। यह हिन्दी अेकदम संस्कृतमयी नहीं है, न वह अेकदम फ़ारसी शब्दोंसे लदी हुअी है। देहाती बोलीमें जो माधुर्य मैं देखता हूँ, वह न लखनअूके मुसलमान भाअियोंकी बोलीमें, न प्रयागजीके

---

* यह भाषण अिन्दौरमें सन् १९१८ में हिन्दी साहित्य सम्मेलनके आठवें अधिवेशनके सभापति-पदसे दिया गया था।

पंडितोंकी बोलीमें पाया जाता है। भाषा वही श्रेष्ठ है, जिसको जनसमूह सहजमें समझ ले। देहाती बोली सब समझते हैं। भाषाका मूल करोड़ों मनुष्यरूपी हिमालयमें मिलेगा, और अुसमें ही रहेगा। हिमालयमें से निकलती हुआी गंगाजी अनन्त काल तक बहती रहेंगी। अैसा ही देहाती हिन्दीका गौरव रहेगा। और जैसे छोटीसी पहाड़ीसे निकलता हुआ झरना सूख जाता है, वैसी ही संस्कृतमयी तथा फ़ारसीमयी हिन्दीकी दशा होगी।

हिन्दू-मुसलमानोंके बीच जो भेद किया जाता है, वह कृत्रिम है। अैसी ही कृत्रिमता हिन्दी व अुर्दू भाषाके भेदमें है। हिन्दुओंकी बोलीसे फ़ारसी शब्दोंका सर्वथा त्याग और मुसलमानोंकी बोलीसे संस्कृतका सर्वथा त्याग अनावश्यक है। दोनोंका स्वाभाविक संगम गंगा-जमुनाके संगम-सा शोभित और अचल रहेगा। मुझे अुम्मीद है कि हम हिन्दी-अुर्दूके झगड़ेमें पड़कर अपना बल क्षीण नहीं करेंगे।

लिपिकी कुछ तकलीफ़ ज़रूर है। मुसलमान भाअी अरबी लिपिमें ही लिखेंगे; हिन्दू बहुत करके नागरी लिपिमें लिखेंगे। राष्ट्रमें दोनोंको स्थान मिलना चाहिये। अमलदारोंको दोनों लिपियोंका ज्ञान अवश्य होना चाहिये। अिसमें कुछ कठिनाअी नहीं है। अन्तमें जिस लिपिमें ज्यादा सरलता होगी, अुसकी विजय होगी। भारतवर्षमें परस्पर व्यवहारके लिअे अेक भाषा होनी चाहिये, अिसमें कुछ सन्देह नहीं है। यदि हम हिन्दी-अुर्दूका झगड़ा भूल जायें, तो हम जानते हैं कि मुसलमान भाअियोंकी तो अुर्दू ही राष्ट्रीय भाषा है। अिस बातसे यह सहजमें सिद्ध होता है कि हिन्दी या अुर्दू मुग़लोंके ज़मानेसे राष्ट्रीय भाषा बनती जाती थी।

आज भी हिन्दीसे स्पर्धा करनेवाली दूसरी कोअी भाषा नहीं है। हिन्दी-अुर्दूका झगड़ा छोड़नेसे राष्ट्रीय भाषाका सवाल सरल हो जाता है। हिन्दुओंको फ़ारसी शब्द थोड़े-बहुत जानने पड़ेंगे। अिस्लामी भाअियोंको संस्कृत शब्दोंका ज्ञान सम्पादन करना पड़ेगा। अैसे लेन-देनसे अिस्लामी भाषाका बल बढ़ जायगा और हिन्दू-मुसलमानोंकी अेकताका

अेक बड़ा साधन हमारे हाथमें आ जायगा । अंग्रेजी भाषाका मोह दूर करनेके लिअे अितना अधिक परिश्रम करना पड़ेगा कि हमें लाज़िम है कि हम हिन्दी-अुर्दूका झगड़ा न अुठावें । लिपिकी तकरार भी हमको न अुठानी चाहिये ।

हिन्दी-अुर्दू राष्ट्रीय भाषा होनी चाहिये, अिस बातको सिर्फ स्वीकार करनेसे हमारा मनोरथ सिद्ध नहीं हो सकता है। तो फिर किस प्रकार हम सिद्धि पा सकेंगे? जिन विद्वद्गणोंने अिस मंडपको सुशोभित किया है, वे भी अपनी वक्तृतासे हमको अिस विषयमें ज़रूर कुछ सुनायेंगे । मैं सिर्फ भाषा-प्रचारके बारेमें कुछ कहूँगा । भाषा-प्रचारके लिअे 'हिन्दी-शिक्षक' होना चाहिये । हिन्दी-बंगाली सीखनेवालोंके लिअे अेक छोटीसी पुस्तक मैंने देखी है । वैसी ही मराठीमें भी है । अन्य भाषा-भाषियोंके लिअे अैसी किताबें देखनेमें नहीं आयी हैं । यह काम करना जैसा सरल है, वैसा ही आवश्यक है । मुझे अुम्मीद है कि यह सम्मेलन अिस कार्यको शीघ्रतासे अपने हाथमें लेगा । अैसी पुस्तकें विद्वान् और अनुभवी लेखकोंके द्वारा बनवानी चाहियें ।

सबसे कष्टदायी मामला द्राविड़ भाषाओंके लिअे है । वहाँ तो कुछ प्रयत्न ही नहीं हुआ है । हिन्दी भाषा सिखानेवाले शिक्षकोंको तैयार करना चाहिये । अैसे शिक्षकोंकी बड़ी ही कमी है । अैसे अेक शिक्षक प्रयागजीसे आपके लोकप्रिय मंत्री भाअी पुरुषोत्तमदासजी टण्डनके द्वारा मुझे मिले हैं ।

हिन्दी भाषाका अेक भी सम्पूर्ण व्याकरण मेरे देखनेमें नहीं आया है । जो हैं, सो अंग्रेजीमें विलायती पादरियोंके बनाये हुअे हैं । अैसा अेक व्याकरण डॉ० केलॉगका रचा हुआ है । हिन्दुस्तानकी अन्यान्य भाषाओंका मुकाबला करनेवाला व्याकरण हमारी भाषामें होना चाहिये । हिन्दी-प्रेमी विद्वानोंसे मेरी नम्र विनती है कि वे अिस त्रुटिको दूर करें । हमारी राष्ट्रीय सभाओंमें हिन्दी भाषाका ही अिस्तेमाल होना आवश्यक है । कांग्रेसके कार्यकर्ताओं और प्रतिनिधियों द्वारा यह प्रयत्न

होना चाहिये । मेरा अभिप्राय है कि यह सभा अैसी प्रार्थना आगामी कांग्रेसमें अुसके कर्मचारियोंके सम्मुख अुपस्थित करे ।

हमारी क़ानूनी सभाओंमें भी, राष्ट्रीय भाषा द्वारा कार्य चलना चाहिये । जब तक अैसा नहीं होता, तब तक प्रजाको राजनीतिक कार्योंमें ठीक तालीम नहीं मिलती है । हमारे हिन्दी अखबार अिस कार्यको थोड़ा-सा करते तो हैं; लेकिन प्रजाको तालीम अनुवादसे नहीं मिल सकती है । हमारी अदालतमें ज़रूर राष्ट्रीय भाषा और प्रान्तीय भाषाका प्रचार होना चाहिये । न्यायाधीशोंकी मारफत जो तालीम हमको सहज ही मिल सकती है, अुस तालीमसे आज प्रजा वंचित रहती है ।

भाषाकी जैसी सेवा हमारे राजा-महाराजा लोग कर सकते हैं, वैसी अंग्रेज सरकार नहीं कर सकती । महाराजा होलकरकी कौन्सिलमें, कचहरीमें, और हरअेक काममें हिन्दीका और प्रान्तीय बोलीका ही प्रयोग होना चाहिये । अुनके अुत्तेजनसे भाषा और बहुत ही बढ़ सकती है । अिस राज्यकी पाठशालाओंमें शुरूसे आखिर तक सब तालीम मादरी ज़बानमें देनेका प्रयोग होना चाहिये । हमारे राजा-महाराजाओंसे भाषाकी बड़ी भारी सेवा हो सकती है । मैं अुम्मीद रखता हूँ कि होलकर महाराजा और अुनके अधिकारीवर्ग अिस महान् कार्यको अुत्साहसे अुठा लेंगे ।

अैसे सम्मेलनसे हमारा सब कार्य सफल होगा, अैसी समझ भ्रम ही है । जब हम प्रतिदिन अिसी कार्यकी धुनमें लगे रहेंगे, तभी अिस कार्यकी सिद्धि हो सकेगी । सैकड़ों स्वार्थ-त्यागी विद्वान् जब अिस कार्यको अपनायेंगे तभी सिद्धि सम्भव है ।

मुझे खेद तो यह है कि जिन प्रान्तोंकी मातृभाषा हिन्दी है, वहाँ भी अुस भाषाकी अुन्नति करनेका अुत्साह नहीं दिखायी देता है । अुन प्रान्तोंमें हमारे शिक्षित-वर्ग आपसमें पत्र-व्यवहार और बातचीत अंग्रेजीमें करते हैं । अेक भाअी लिखते हैं कि हमारे अखबार चलानेवाले अपना व्यवहार अंग्रेजीकी मारफत करते हैं, अपने हिसाब-किताब में

अंग्रेजीमें ही रखते हैं । फ्रांसमें रहनेवाले अंग्रेज अपना सब व्यवहार अंग्रेजी ही में रखते हैं । हम अपने देशमें अपने महत् कार्य विदेशी भाषामें करते हैं । मेरा नम्र लेकिन दृढ़ अभिप्राय है कि जब तक हम हिन्दी भाषाको राष्ट्रीय और अपनी-अपनी प्रान्तीय भाषाओंको अुनका योग्य स्थान नहीं देते, तब तक स्वराज्यकी सब बातें निरर्थक हैं । अिस सम्मेलन द्वारा भारतवर्षके अिस बड़े प्रश्नका निराकरण हो जाय, अैसी मेरी आशा और प्रभु-प्रति प्रार्थना है ।

२*

सन् १९१८ में जब आपका अधिवेशन यहाँ हुआ था, तबसे दक्षिणमें हिन्दी-प्रचारके कार्यका आरम्भ हुआ है । वह कार्य तबसे अुत्तरोत्तर बढ़ ही रहा है । दक्षिण-भारत कोअी छोटा मुल्क नहीं है । वह तो अेक महाद्वीप-सा है । वहाँ चार प्रान्त और चार भाषाअें हैं — तामिल, तेलगू, मलयाली और कानड़ी । आबादी करीब सवा सात करोड़ है । अितने लोगोंमें यदि हम हिन्दी-प्रचारकी नींव मजबूत कर सकें, तो अन्य प्रान्तोंमें बहुत ही सुभीता हो जायगा ।

यद्यपि मैं अिन भाषाओंको संस्कृतकी पुत्रियाँ मानता हूँ, तो भी ये हिन्दी, अुड़िया, बंगला, आसामी, पंजाबी, सिन्धी, मराठी, गुजरातीसे भिन्न हैं । अिनका व्याकरण हिन्दीसे बिलकुल भिन्न है । अिनको संस्कृतकी पुत्रियाँ कहनेसे मेरा अभिप्राय अितना ही है कि अिन सबमें संस्कृत शब्द काफी हैं, और जब संकट आ पड़ता है, तब ये संस्कृत-माताको पुकारती हैं, और नये शब्दोंके रूपमें अुसका दूध पीती हैं । प्राचीन कालमें भले ही ये स्वतंत्र भाषाअें रही हों, पर अब तो ये संस्कृतसे शब्द लेकर अपना गौरव बढ़ा रही हैं । अिसके अतिरिक्त और भी तो कअी कारण अिनको संस्कृतकी पुत्रियाँ कहनेके हैं, पर अुन्हें अिस समय जाने दीजिये ।

* ता० २०-४-'३५ को अिन्दौरमें हिन्दी साहित्य सम्मेलनके २४वें अधिवेशनके सभापति-पदसे दिये गये भाषणमें से ।

दक्षिणमें हिन्दी-प्रचार सबसे कठिन कार्य है। तथापि अठारह वर्षोंसे हम व्यवस्थित रूपमें वहाँ जो कार्य करते आये हैं, अुसके फलस्वरूप अिन वर्षोंमें छः लाख दक्षिणवासियोंने हिन्दीमें प्रवेश किया, ४२००० परीक्षामें बैठे, ३२०० स्थानोंमें शिक्षा दी गअी, ६०० शिक्षक तैयार हुअे और आज ४५० स्थानोंमें कार्य हो रहा है। सन् १९३१ से स्नातक-परीक्षाका भी आरम्भ हुआ और आज स्नातकोंकी संख्या ३०० है। वहाँ हिन्दीकी ७० किताबें तैयार हुअीं और मद्रासमें अुनकी आठ लाख प्रतियाँ छपीं। सत्रह वर्ष पूर्व दक्षिणके अेक भी हाअीस्कूलमें हिन्दीकी पढ़ाअी नहीं होती थी, पर आज सत्तर हाअीस्कूलोंमें हिन्दी पढ़ाअी जाती है। सब मिलाकर वहाँ ७० कार्यकर्त्ता काम कर रहे हैं और आज तक अिस प्रयासमें चार लाख रुपया खर्च हुआ है, जिसमें से आधेसे कुछ कम रुपये दक्षिणमें से ही मिले हैं। यहाँ अेक और बात कह देना जरूरी है। काका साहब अपने निरीक्षणके बाद कहते हैं कि दक्षिणमें बहनोंने हिन्दी-प्रचारके लिअे बहुत काम किया है। वे अिसकी महिमा समझ गअी हैं। वे यहाँ तक दिखा रही हैं कि कुछ पुरुषोंको यह फिक्र लग रही है कि यदि स्त्रियाँ अिस तरह अुधमी बनेंगी, तो घर कौन सँभालेगा?

मैंने आपको अिस संस्थाका अुज्ज्वल पक्ष ही दिखाया है। अिसका यह मतलब नहीं है कि अिसका काला पक्ष है ही नहीं।

"जड़ चेतन गुण दोषमय, विश्व कीन्ह करतार।
सन्त हंस गुण गहहिं पय, परिहरि वारि-विकार॥"

निष्फलता भी काफी हुअी है। सब कार्यकर्त्ता अच्छे ही निकले, अैसा भी नहीं कहा जा सकता। यदि सब कार्य आरम्भसे अन्त तक अच्छा ही रहता, तो अवश्य ही और भी सुन्दर परिणाम आ सकता था। पर अितना तो कहा ही जा सकता है कि यदि अन्य प्रान्तोंके हिन्दी-प्रचारसे अिसकी तुलना की जाय, तो यह काम अद्वितीय ठहरेगा।

पर तब यह प्रश्न अुठ सकता है कि क्या अन्य प्रान्तोंकी बात छोड़ दी जाय? क्या अन्य प्रान्तोंमें हिन्दी-प्रचारकी आवश्यकता नहीं है? अवश्य है। मुझे दक्षिणका पक्षपात नहीं है और न अन्य प्रान्तोंसे द्वेष। मैंने अन्य प्रान्तोंके लिअे भी काफी प्रयत्न किया है; लेकिन कार्यकर्त्ताओंके अभावके कारण वहाँ अितनी क्या, थोड़ी भी सफलता नहीं मिल सकी।

मेरी रायमें अन्य प्रान्तोंमें हिन्दी-प्रचार सम्मेलनका मुख्य कार्य बनना चाहिये। यदि हिन्दीको राष्ट्रभाषा बनाना है, तो प्रचार-कार्य सर्व-व्यापी और सुसंगठित होना ही चाहिये। हमारे यहाँ शिक्षकोंका अभाव है। सम्मेलनके केन्द्रमें हिन्दी-शिक्षकोंके लिअे अेक विद्यालय होना चाहिये, जिसमें अेक ओर तो हिन्दी प्रान्तवासी शिक्षक तैयार किये जायँ, और अुनको जिस प्रान्तके लिअे वे तैयार होना चाहें, अुस प्रान्तकी भाषा सिखायी जाय और दूसरी ओर अन्य प्रान्तोंके भी छात्रोंको भरती करके अुन्हें हिन्दीकी शिक्षा दी जाय। अैसा प्रयास दक्षिणके लिअे तो किया भी गया था।

* * *

मैंने अभी 'हिन्दी-हिन्दुस्तानी' शब्दका प्रयोग किया है। सन् १९१८ में जब आपने मुझको यही पद दिया था, तब भी मैंने यही कहा था कि हिन्दी अुस भाषाका नाम है, जिसे हिन्दू और मुसलमान कुदरती तौर पर बगैर प्रयत्नके बोलते हैं। हिन्दुस्तानी और अुर्दूमें कोअी फ़र्क़ नहीं है। देवनागरी लिपिमें लिखी जाने पर वह हिन्दी और अरबीमें लिखी जाने पर अुर्दू कही जाती है। जो लेखक या व्याख्यानदाता चुन-चुनकर संस्कृत या अरबी-फ़ारसी शब्दोंका ही प्रयोग करता है, वह देशका अहित करता है। हमारी राष्ट्रभाषामें वे सब प्रकारके शब्द आने चाहियें, जो जनतामें प्रचलित हो गये हैं। श्री घनश्यामदास बिड़लाने कहा है वह ठीक है कि अलग-अलग प्रांतीय भाषाओंमें जो शब्द रूढ़ हो गये हैं और जो राष्ट्रभाषामें आने लायक हैं,

राष्ट्रभाषावादियोंको अुन्हें ले लेने चाहियें। हर व्यापक भाषामें यह शक्ति रहती ही है। अिसीलिअे तो वह व्यापक बनती है। अंग्रेजीने क्या नहीं लिया है? लेटिन और ग्रीकसे कितने ही मुहावरे अंग्रेजीमें लिये गये हैं। आधुनिक भाषाओंको भी वे लोग नहीं छोड़ते। अिस बारेमें अुनकी निष्पक्षता सराहनीय है। हिन्दुस्तानी शब्द अंग्रेजीमें काफ़ी आ गये हैं। कुछ अफ्रीकासे भी लिये गये हैं। अिसमें अुनका 'फ्री ट्रेड' क़ायम ही है। पर मेरे यह सब कहनेका मतलब यह नहीं है कि बग़ैर अवसरके भी हम दूसरी भाषाओंके शब्द लें, जैसा कि आजकल अंग्रेजी पढ़े-लिखे युवक किया करते हैं। अिस व्यापारमें विवेक-दृष्टि तो रखनी ही होगी। हम कंगाल नहीं हैं, पर कंजूस भी नहीं बनेंगे। कुरसीको खुशीसे कुरसी कहेंगे, अुसके लिअे 'चतुष्पाद पीठ' शब्दका प्रयोग नहीं करेंगे।

अिस मौक़े पर अपने दुःखकी भी कुछ कहानी कह दूँ। हिन्दी भाषा राष्ट्रभाषा बने या न बने, मैं अुसे छोड़ नहीं सकता। तुलसीदासका पुजारी होनेके कारण हिन्दी पर मेरा मोह रहेगा ही। लेकिन हिन्दी बोलनेवालोंमें रवीन्द्रनाथ कहाँ हैं? प्रफुल्लचन्द्र राय कहाँ हैं? अैसे और भी नाम मैं बता सकता हूँ। मैं जानता हूँ कि मेरी अथवा मेरे-जैसे हजारोंकी अिच्छामात्रसे अैसे व्यक्ति थोड़े ही पैदा होनेवाले हैं। लेकिन जिस भाषाको राष्ट्रभाषा बनना है, अुसमें अैसे महान व्यक्तियोंके होनेकी आशा रखी ही जायगी।

वर्धामें हमारे यहाँ कन्या-आश्रम है। वहाँ सम्मेलनकी परीक्षाके लिअे कअी लड़कियाँ तैयार हो रही हैं। शिक्षक वर्ग और लड़कियाँ भी शिकायत करती हैं कि जो पाठ्य-पुस्तकें नियत की गअी हैं, अुनमें से सब पढ़ने लायक़ नहीं हैं। शिकायतके लायक़ पुस्तकें शृंगार रससे भरी हैं। हिन्दीमें शृंगार-साहित्य काफ़ी है। अिस ओर कुछ वर्ष पूर्व श्री बनारसीदास चतुर्वेदीने मेरा ध्यान खींचा था। जिस भाषाको हम राष्ट्रभाषा बनाना चाहते हैं, अुसका साहित्य स्वच्छ, तेजस्वी और अूर्ध्वगामी

होना चाहिये । हिन्दी भाषामें आजकल गन्दे साहित्यका काफ़ी प्रचार हो रहा है । पत्र-पत्रिकाओंके संचालक अिस बारेमें असावधान रहते हैं, अथवा गन्दगीको पुष्टि देते हैं । मेरी रायमें सम्मेलनको अिस विषयमें अुदासीन न रहना चाहिये । सम्मेलनकी तरफ़से अच्छे लेखकोंको प्रोत्साहन मिलना चाहिये । लोगोंको सम्मेलनकी तरफ़से पुस्तकोंके चुनावमें भी कुछ सहायता मिलनी चाहिये । अिस कार्यमें कठिनाअी अवश्य है, लेकिन कठिनाअीसे हम थोड़े ही भाग सकते हैं ।

परीक्षाओंकी पाठ्य-पुस्तकोंमें से अेक पुस्तकके बारेमें अेक मुसलमानकी भी, जो देवनागरी लिपि अच्छी तरह जानते हैं, शिकायत है । अुसमें मुग़ल बादशाहके लिअे भली-बुरी बातें हैं । वे सब अैतिहासिक भी नहीं हैं । मेरा नम्र निवेदन है कि पाठ्य-पुस्तकोंका चुनाव सूक्ष्म विवेकके साथ होना चाहिये, अुसमें राष्ट्रीय दृष्टि रहनी चाहिये और पाठ्यक्रम भी आधुनिक आवश्यकताओंको खयालमें रखकर निश्चित करना चाहिये । मैं जानता हूँ कि मेरा यह सब कहना मेरे क्षेत्रके बाहर है । लेकिन मेरे पास जो शिकायतें आयी हैं, अुन्हें आपके सामने रखना मैंने अपना धर्म समझा ।

## २

## राष्ट्रभाषा हिन्दी

[बंगलोरमें हिन्दीके अुपाधि-वितरण-समारोहके अवसर पर दिये गये भाषणसे ।]

अिस अवसर पर मैं आपको अिस बातके कुछ स्पष्ट कारण समझाअूँगा, कि हिन्दी-हिन्दुस्तानी ही राष्ट्रभाषा क्यों होनी चाहिये । जब तक आप कर्नाटकमें रहते हैं और कर्नाटकसे बाहर आपकी दृष्टि नहीं दौड़ती, तब तक आपके लिअे कन्नड़का ज्ञान काफ़ी है । लेकिन अगर आप अपने किसी गाँवको देखेंगे, तो फ़ौरन ही आपको पता चलेगा कि आपकी दृष्टि और अुसके क्षेत्रका विस्तार हुआ है । आप कर्नाटककी दृष्टिसे नहीं,

बल्कि हिन्दुस्तानकी दृष्टिसे सोचने लगे हैं। कर्नाटकके बाहरकी घटनाओंमें आपकी दिलचस्पी बढ़ी है। लेकिन अगर भाषाका कोओी सर्व-साधारण माध्यम या वाहन न हो, तो आपकी यह दिलचस्पी बहुत आगे नहीं बढ़ सकती। कर्नाटकवाले सिन्ध या संयुक्त प्रान्तवालोंके साथ किस तरह अपना सम्बन्ध कायम कर सकते हैं या अुनकी बातें सुन और समझ सकते हैं? हमारे कुछ लोग मानते थे, और शायद अब भी मानते होंगे कि, अंग्रेज़ी अैसे माध्यमका काम दे सकती है। अगर यह सवाल हमारे कुछ हज़ार पढ़े-लिखे लोगोंका ही सवाल होता, तो ज़रूर अैसा हो सकता था। लेकिन मुझे विश्वास है कि अिससे हममें से किसीको सन्तोष न होगा। हम और आप चाहते हैं कि करोड़ों लोग अन्तर्प्रान्तीय सम्बन्ध स्थापित करें। अैसा सम्बन्ध कभी अंग्रेज़ी द्वारा स्थापित हो भी सके, तो भी स्पष्ट है कि अभी कभी पीढ़ियों तक वह मुमकिन नहीं। कोओी वजह नहीं कि वे सब अंग्रेज़ी ही सीखें। और, अंग्रेज़ी जीविकाका अचूक और निश्चित साधन तो हरगिज नहीं। अगर अुसकी अैसी कोओी कीमत कभी रही भी होगी, तो जैसे-जैसे अधिक संख्यामें लोग अुसे सीखने लगेंगे, वैसे-वैसे अुसकी वह कीमत कम होगी। फिर, अंग्रेज़ी सीखना जितना कठिन है, हिन्दी-हिन्दुस्तानी सीखना अुतना कठिन है ही नहीं। अंग्रेज़ी सीखनेमें जितना समय लगेगा, अुतना हिन्दी-हिन्दुस्तानी सीखनेमें कभी नहीं लग सकता। कहा जाता है कि हिन्दी-हिन्दुस्तानी बोलने और समझनेवाले हिन्दू-मुसलमानोंकी संख्या २० करोड़से ज्यादा है। क्या १ करोड़ १० लाख कर्नाटकी भाओी-बहन अपने अिन २० करोड़ भाओी-बहनोंकी भाषा सीखना पसन्द न करेंगे? और क्या वे अुसे बहुत आसानीसे सीख नहीं सकते? अभी ही जिस अेक घटनाने मेरा ध्यान खींचा है, अुससे अिस सवालका जवाब मिल जाता है। आपने अभी-अभी लेडी रमणके हिन्दी व्याख्यानका कन्नड़ अनुवाद सुना है। अुसे सुनते समय अिस बातकी तरफ आपका ध्यान अवश्य आकर्षित हुआ होगा कि लेडी रमणके बहुतसे हिन्दी शब्द भाषान्तरमें ज्योंके त्यों रखे गये थे —

जैसे, प्रेम, प्रेमी, संघ, सभा, अध्यक्ष, पद, अनन्त, भक्ति, स्वागत, अध्यक्षता, सम्मेलन आदि । ये शब्द हिन्दी और कन्नड़ दोनोंमें प्रचलित हैं । अब मान लीजिये कि यदि कोअी अंग्रेजीमें अिसका अुल्था करता, तो क्या वह अिनमेंसे अेक भी शब्दका अुपयोग कर सकता? कभी नहीं। अिनमें से हरअेक शब्दका अंग्रेजी पर्याय श्रोताओंके लिअे बिलकुल नया होता । अिसलिअे ,जब हमारे कुछ कर्नाटकी मित्र कहते हैं कि हिन्दी अुन्हें कठिन मालूम होती है, तो मुझे हँसी आती है; साथ ही गुस्सा और बेसब्री भी कुछ कम नहीं मालूम होती । मेरा यह विश्वास है कि रोज़ कुछ घण्टे लगनके साथ मेहनत करनेसे अेक महीनेमें हिन्दी सीखी जा सकती है । मैं ६७ सालका हो चुका हूँ । लोग कहेंगे कि नया कुछ सीखनेकी मेरी अुमर नहीं रही । लेकिन आप यह सच मानिये कि जिस समय में कन्नड़ अनुवाद सुन रहा था, अुस समय मैंने यह अनुभव किया कि अगर मै रोज़ कुछ घण्टे अभ्यासमें दूँ, तो कन्नड़ सीखनेमें मुझे आठ दिनसे ज्यादा समय न लगे । माननीय शास्त्रीजी और मेरे जैसे दस-पाँचको छोड़कर बाकीके आप सब तो बिलकुल नौजवान हैं । क्या हिन्दी सीखनेके लिअे आप अेक महीने तक रोज़के चार घण्टे भी नहीं दे सकते? अपने २० करोड़ देशबन्धुओंके साथ सम्बन्ध स्थापित करनेके लिअे क्या अितना समय देना आपको ज्यादा मालूम होता है? अब मान लीजिये कि आपमें से जो लोग अंग्रेज़ी नहीं जानते, वे अुसे सीखनेका निश्चय करते हैं । क्या आप मानते हैं कि प्रतिदिन चार घण्टोंकी मेहनतसे आप अेक महीनेमें अंग्रेज़ी सीख सकेंगे? कभी नहीं । हिन्दी अितनी आसानीसे अिसलिअे सीखी जा सकती है कि दक्षिण भारतकी चार भाषाओं सहित हिन्दुस्तानके हिन्दू जो भाषाअें बोलते हैं, अुन सबमें संस्कृतके बहुतसे शब्द हैं । हमारा अितिहास कहता है कि पुराने ज़मानेमें अुत्तर-दक्षिणके बीचका व्यवहार संस्कृत द्वारा चलता था । आज भी दक्षिणके शास्त्री अुत्तरके शास्त्रियोंके साथ संस्कृतमें बातचीत करते हैं । अनेक प्रान्तीय भाषाओंमें मुख्य भेद व्याकरणका है । अुत्तर

भारतकी भाषाओंका तो व्याकरण भी अेकसा है । अलबत्ता, दक्षिण भारतकी भाषाओंका व्याकरण भिन्न है और संस्कृतसे प्रभावित होनेसे पहले अुनके शब्द भी भिन्न थे । लेकिन अब अुन्होंने भी बहुतसे संस्कृत शब्द ले लिये हैं; और वे अिस हद तक लिये गये हैं कि जब मैं दक्षिणमें घूमता हूँ, तो यहाँकी चारों भाषाओंमें जो कुछ कहा जाता है, अुसका सार समझ लेनेमें मुझे कोअी कठिनाअी नहीं मालूम होती ।

अब अपने मुसलमान मित्रोंकी बात लीजिये । ये अपने-अपने प्रान्तकी भाषा तो स्वभावतः जानते ही हैं; अिसके अलावा ये अुर्दू भी जानते हैं । दोनोंका व्याकरण अेकसा है; लिपिके कारण दोनोंमें जो फ़र्क़ है सो है । और अिस पर विचार करनेसे मालूम होता है कि हिन्दी, हिन्दुस्तानी और अुर्दू, ये तीनों शब्द अेक ही भाषाके सूचक हैं । अिन भाषाओंके शब्द-भण्डारको देखनेसे हमें पता चलता है कि अिनके अधिकांश शब्द अेक हैं । अिसलिअे अेक लिपिके सवालको छोड़ दें, तो अिसमें मुसलमानोंको कोअी कठिनाअी नहीं हो सकती । और लिपिका सवाल तो अपने-आप हल हो जायगा ।

अिसलिअे फिर अपनी शुरूकी बात पर लौटकर मैं कहता हूँ कि अगर आपकी दृष्टि-मर्यादा अुत्तरमें श्रीनगरसे दक्षिणमें कन्याकुमारी तक और पश्चिममें कराचीसे पूर्वमें डिब्रूगढ़ तक पहुँचती हो—और अितनी वह पहुँचनी भी चाहिये—तो अुसके लिअे आपके पास हिन्दीको छोड़कर और कोअी साधन नहीं । मैं आपको समझा चुका हूँ कि अंग्रेज़ी हमारी राष्ट्रभाषा नहीं बन सकती । अंग्रेज़ीसे मुझे नफ़रत नहीं । थोड़े पण्डितोंके लिअे अंग्रेज़ीका ज्ञान आवश्यक है; अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धोंके लिअे और पश्चिमी विज्ञानके ज्ञानके लिअे अुसकी ज़रूरत है । लेकिन जब मुझे वह स्थान दिया जाता है, जिसके योग्य वह है ही नहीं, तो मुझे दुःख होता है । मुझे अिसमें कोअी सन्देह नहीं कि अैसा प्रयत्न विफल ही हो सकता है । अपनी-अपनी जगह ही सब शोभा देते हैं ।

आपके दिमागमें व्यर्थ ही जो अेक डर घुस गया है, अुसे मैं निकाल डालना चाहता हूँ। क्या हिन्दी कन्नड़की जगह सिखायी जायगी? क्या वह कन्नड़को अुसके स्थानसे हटा देगी? नहीं, अुलटे मेरा दावा तो यह है कि जैसे-जैसे हम हिन्दीका अधिक प्रचार करेंगे, वैसे-वैसे हम अपनी प्रान्तीय भाषाओंके अभ्यासको न केवल विशेष प्रोत्साहन देंगे, बल्कि अुनकी शक्ति भी बढ़ायेंगे। यह बात मैं भिन्न-भिन्न प्रान्तोंके अपने अनुभवसे कहता हूँ।

दो शब्द लिपिके बारेमें। जब मैं दक्षिण अफ्रीकामें था, तब भी मैं मानता था कि संस्कृतसे निकली हुअी सभी भाषाओंकी लिपि देवनागरी होनी चाहिये; और मुझे विश्वास है कि देवनागरीके द्वारा द्राविड़ भाषाअें भी आसानीसे सीखी जा सकती हैं। मैंने तामिल-तेलगूको और कुछ दिन तक कन्नड़ व मलयालमको भी अुनकी अपनी लिपियों द्वारा सीखनेका प्रयत्न किया है। मैं आपसे कहता हूँ कि मुझे यह साफ़ दिखायी पड़ रहा था कि अगर अिन चारों भाषाओंकी लिपि देवनागरी ही होती, तो मैं अिन्हें थोड़े ही समयमें सीख सकता था; लेकिन जब मैंने देखा कि मुझे चार-चार लिपियाँ सीखनी होंगी, तो मैं मारे डरके घबरा अुठा। मेरी तरह जिसे चारों भाषाअें सीखनेका अुत्साह है, अुसके लिअे यह कितना बड़ा बोझ है? और क्या यह समझानेके लिअे भी किसी दलीलकी ज़रूरत है कि दक्षिणवालोंके लिअे अपनी मातृभाषाके सिवा दूसरी तीन भाषाअें सीखनेके लिअे देवनागरी लिपि अधिकसे अधिक सुविधाजनक हो सकती है? राष्ट्रभाषा हिन्दीके प्रश्नके साथ लिपिका प्रश्न मिलाना न चाहिये। मैंने यहाँ अुसका अुल्लेख केवल यह दिखानेके लिअे किया है कि हिन्दुस्तानकी सभी भाषाअें सीखनेवालेको लिपिके कारण कितनी कठिनाअी होती है।

हरिजनबन्धु, ५-७-'३६

# ३
# अेक लिपिका प्रश्न
## १

कुछ समय पहले किसी गुजराती पत्र-लेखकने 'नवजीवन' में अेक पत्र भेजा था, जिसमें अुन्होंने मुझे सलाह दी थी कि मैं 'नवजीवन' को देवनागरी लिपिमें छपवाअूँ। अुद्देश्य यह था कि मैं अपने अिस विश्वासको दृश्य स्वरूप दे दूँ कि भारतके लिअे अेक ही लिपिका होना आवश्यक है। सचमुच मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि भारतकी तमाम भाषाओंके लिअे अेक ही लिपिका होना फायदेमन्द है, और वह लिपि देवनागरी ही हो सकती है। तथापि मैं पत्र-लेखककी सलाह पर अमल नहीं कर सका। 'नवजीवन' में मैं अिसके कारण दे चुका हूँ।* यहाँ अुन्हें दोहरानेकी

---

* 'नवजीवन' ता० २६-९-'२७ में दिये गये कारण नीचेके अवतरणसे मालूम होंगे:

"अगर 'नवजीवन' के पाठकोंका बहुत बड़ा भाग देवनागरी लिपिमें छपे 'नवजीवन' को पसन्द करे, तो मैं 'नवजीवन' को देवनागरीमें छापनेकी चर्चा साथियोंसे तुरन्त करूँ। पाठकोंकी राय जाने बिना पहल करनेकी मेरी हिम्मत नहीं।

"अिन प्रश्नों पर मैंने यहाँ विचार किया है, और जिन्हें मैं अतिशय महत्त्वके मानता हूँ, अुनके प्रचारको अेक लिपिके प्रचारके मुकाबले मैं ज्यादा महत्त्वपूर्ण समझता हूँ। 'नवजीवन' ने बहुतसे साहस किये हैं, लेकिन वे सब मौलिक सिद्धान्तोंके सिलसिलेमें थे। देवनागरी लिपिके लिअे मैं 'नवजीवन' के प्रचारको हानि पहुँचानेका साहस न करूँगा।

"'नवजीवन' के पढ़नेवालोंमें बहुतसे हिन्दू हैं, कअी पारसी हैं, कअी मुसलमान हैं। मुझे डर है कि अिन सबके लिअे देवनागरी लिपि अनुकूल नहीं,

ज़रूरत नहीं है । पर अिसमें सन्देह नहीं कि हमें अिस विचारके प्रचारको और ठोस काम करनेके मौकेको, जो अिस महान देश-जागृतिके कारण हमें प्राप्त हुआ है, अपने हाथसे खोना न चाहिये । अिसमें शक नहीं कि हिन्दू-मुस्लिम पागलपन पूर्ण सुधारके मार्गमें अेक महान विघ्न है । पर अिसके पहले कि देवनागरी भारतकी अेकमात्र लिपि हो जाय, हमें हिन्दू-भारतको अिस कल्पनाके पक्षमें कर लेना चाहिये कि तमाम संस्कृत-जन्य और द्राविड़ भाषाओंके लिअे अेक ही लिपि हो । अिस समय बंगालके लिअे बंगाली, पंजाबके लिअे गुरुमुखी, सिन्धके लिअे सिन्धी, अुत्कलके लिअे अुड़िया, गुजरातके लिअे गुजराती, आन्ध्र देशमें तेलगू, तामिलनाड़में तामिल, केरलमें मलयाली और कर्नाटकमें कनड़ लिपि है। मैं बिहारकी कैथी और दक्षिणकी मोड़ीको तो छोड़ ही देता हूँ । यदि तमाम व्यवहार्य और राष्ट्रीय कामोंके लिअे अिन सब लिपियोंके स्थान पर देवनागरीका अुपयोग होने लग जाय; तो वह अेक भारी प्रगति होगी । अुससे हिन्दू-भारत सुदृढ़ हो जायगा और भिन्न-भिन्न प्रान्त अेक-दूसरेके अधिक निकट आ जायँगे । अैसा प्रत्येक भारतीय, जिसे भारतकी भिन्न-भिन्न भाषाओंका तथा लिपियोंका ज्ञान है, अपने अनुभवसे जानता है कि नवीन लिपिको भलीभाँति सीखनेमें कितनी देर लगती है । अिसमें सन्देह नहीं कि देश-प्रेमके लिअे कोअी बात कठिन नहीं है । और भिन्न-भिन्न लिपियोंका, जिनमें कुछ तो बहुत ही सुन्दर हैं, अध्ययन करनेमें जो समय लगता है, वह भी व्यर्थ नहीं जाता । परन्तु अिस त्यागकी आशा हम करोड़ोंसे नहीं कर सकते । राष्ट्रीय नेताओंको चाहिये कि वे अिन करोड़ोंके लिअे अिस कामको आसान करके रखें। अिसलिअे

---

तो कठिन अवश्य होगी । अगर मेरा यह अनुमान सही हो, तो मैं 'नवजीवन' को देवनागरीमें नहीं छाप सकता । चूँकि देवनागरी लिपिका प्रचार मेरा खास विषय नहीं है, अिसलिअे मैं सोचता हूँ कि अुसमें पहल करनेकी जोखिम मैं नहीं अुठा सकता । 'नवजीवन'को देवनागरीमें छापनेके बाद भी 'हिन्दी नवजीवन' की ज़रूरत तो रहेगी ही । अुसके पाठक गुजराती नहीं समझ सकते ।"

हमें अेक अैसी सर्व-सामान्य लिपिकी ज़रूरत है, जो जल्दीसे जल्दी सीखी जा सके। और देवनागरीके समान सरल, जल्दी सीखने योग्य और तैयार लिपि दूसरी कोअी है ही नहीं। अिस कामके लिअे भारतमें अेक सुसंगठित संस्था भी थी — शायद अब भी है। मुझे पता नहीं कि आजकल वह क्या कर रही है। परन्तु यदि यह काम करना अभीष्ट है, तो या तो अुसी पुरानी संस्थाको मजबूत बना देना चाहिये, या अुसी कामके लिअे अेक नवीन संस्थाका निर्माण कर लेना चाहिये। अिस हलचलको राष्ट्रभाषा हिन्दी या हिन्दुस्तानीके प्रचारके साथ नहीं जोड़ना चाहिये। अिससे तो गड़बड़ी हो जायगी। यह दूसरा काम धीरे-धीरे किन्तु अच्छी तरह हो ही रहा है। अेक लिपि अेक भाषाके प्रचारको बहुत आसान कर देगी। पर दोनोंके काम निश्चित हद तक ही साथ-साथ चल सकते हैं। हिन्दी या हिन्दुस्तानीके प्रचारका अुद्देश्य यह कदापि नहीं कि वह प्रान्तीय भाषाओंका स्थान ग्रहण कर ले। यह तो अुनकी सहायताके लिअे और अप्रान्तीय कामोंके लिअे है। जब तक हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य कायम रहेगा, तब तक अुसका रूप द्विविध होगा। वह कहीं तो फारसी लिपिमें लिखी जायगी और अुसमें फारसी और अरबी शब्दोंकी प्रधानता होगी; कहीं वह देवनागरी लिपिमें लिखी जायगी और तब अुसमें संस्कृत शब्दोंकी बहुतायत होगी। जब दोनोंके हृदय अेक हो जायँगे, तब अेक ही भाषाके ये दोनों रूप भी अेक हो जायँगे। और अुसके अुस सर्व-सामान्य रूपमें संस्कृत, फारसी, अरबी वगैरा वे सभी शब्द होंगे, जो अुसके पूर्ण विकास और विचार-प्रकाशनके लिअे आवश्यक होंगे।

परन्तु भिन्न-भिन्न प्रान्तोंकी भाषाओंका अध्ययन करनेमें लोगोंको कठिनाअी न हो, अिसके लिअे ज़रूर ही अेक लिपिके प्रचारका यह अुद्देश्य है कि वह दूसरी तमाम लिपियोंका स्थान ग्रहण कर ले। अिस अुद्देश्यको पूर्ण करनेका सबसे बढ़िया तरीका यह है कि तमाम शालाओंमें हिन्दुओंके लिअे देवनागरीका पढ़ना अनिवार्य कर दिया जाय, जैसे कि गुजरातमें

किया जाता है, और दूसरे, भिन्न-भिन्न भारतीय भाषाओंका महत्त्वपूर्ण साहित्य देवनागरीमें छापना शुरू कर दिया जाय । कुछ हद तक यह प्रयत्न किया भी गया है । मैंने देवनागरी लिपिमें छपी 'गीतांजलि' देखी है । पर यह प्रयत्न बहुत बड़े पैमाने पर किया जाना चाहिये, और अैसी पुस्तकोंके प्रकाशनके लिअे प्रचार होना चाहिये । यद्यपि मैं जानता हूँ कि हिन्दुओं और मुसलमानोंको अेक-दूसरेके नज़दीक लानेके लिअे विधायक सूचनाअें करना वर्तमान समयके रंग-ढगके प्रतिकूल है, तथापि मैं जिस बातको अिन स्तम्भोंमें और अन्यत्र कअी मरतबा कह चुका हूँ, अुसे फिर यहाँ दोहराये बिना नहीं रह सकता कि यदि हिन्दू अपने मुसलमान भाअियोंके निकट आना चाहते हैं, तो अुन्हें अुर्दू पढ़नी ही चाहिये और हिन्दू भाअियोंके निकट आनेकी अिच्छा रखनेवाले मुसलमानोंको भी हिन्दी ज़रूर सीख लेनी चाहिये । हिन्दू और मुसलमानोंकी सच्ची अेकतामें जिनका विश्वास है, वे पारस्परिक द्वेषके अिन भयंकर दृश्योंको देखकर चिन्तित न हों । यदि अुनका विश्वास सच्चा है, तो वह जहाँ-जहाँ सम्भव होगा, वहाँ-वहाँ अुन्हें ज़रूर ही मौका मिलने पर सहिष्णुता, प्रेम और अेक-दूसरेके प्रति सौजन्ययुक्त कार्य करनेके लिअे पहले प्रेरित करेगा । और अेक-दूसरेकी भाषा सीखना तो अिस मार्गमें सबसे पहली बात है । क्या हिन्दुओंके लिअे यह अच्छा नहीं कि वे भक्त-हृदय मुसलमानों द्वारा अधिकार-युक्त वाणीमें लिखी किताबोंको पढ़ें, और यह जानें कि वे कुरान और पैगम्बर साहबके विषयमें क्या लिखते हैं ? अुसी प्रकार क्या मुसलमानोंके लिअे भी यह अच्छा नहीं कि अधिकारी भक्त-हिन्दुओं द्वारा लिखी धार्मिक पुस्तकोंको पढ़कर वे यह जान लें कि गीता और श्रीकृष्णके बारेमें हिन्दुओंके क्या खयाल हैं; बनिस्बत अिसके कि दोनों पक्ष अुन तमाम खराब बातोंको जानें, जो अेक-दूसरेकी धार्मिक पुस्तकों तथा अुनके प्रवर्तकोंके बारेमें अज्ञानियों और तोड़-मरोड़कर बात कहनेवालोंके जबानी कही जायें ?

हिन्दी नवजीवन, २१-७-'२७

२

['दो महत्वपूर्ण प्रस्ताव' नामक लेख]

अिन्दौरके अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनमें कुछ खास अुपयोगी प्रस्ताव स्वीकृत हुअे। अेकमें तो हिन्दी भाषाकी परिभाषा बतायी गअी है और दूसरेमें यह मत प्रकट किया गया है कि अुन समस्त भाषाओंको देवनागरी लिपिमें ही लिखना चाहिये, जो या तो संस्कृतसे निकली हैं या संस्कृतका जिनके अूपर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा है।

पहला प्रस्ताव अिस तथ्य पर जोर देता है कि हिन्दी प्रान्तीय भाषाओंको नष्ट करके अुनका स्थान नहीं लेना चाहती, किन्तु अुनकी पूर्तिरूप बनना चाहती है और अखिल भारतीयताके सेवा-क्षेत्रमें हिन्दी बोलनेवाले कार्यकर्ताके ज्ञान तथा अुपयोगिताको बढ़ाती है। वह भाषा भी हिन्दी ही है, जो लिखी तो अुर्दू लिपिमें जाती है, पर जिसे मुसलमान और हिन्दू दोनों ही समझ लेते हैं। अिस बातको स्वीकार करके सम्मेलनने मुसलमानोंके अिस सन्देहको दूर कर दिया है कि अुर्दू लिपिके प्रति सम्मेलनकी कोअी दुर्भावना है। तो भी सम्मेलनकी प्रामाणिक लिपि तो देवनागरी ही रहेगी। पंजाब तथा दूसरे प्रान्तोंके हिन्दुओंके बीच देवनागरी लिपिका प्रचार/काम भी जारी रहेगा। यह प्रस्ताव किसी भी प्रकार देवनागरी लिपिके महत्वको कम नहीं करता। यह तो मुसलमानोंके अिस अधिकारको स्वीकार करता है कि अब तक जिस अुर्दू लिपिमें वे हिन्दुस्तानी भाषा लिखते आ रहे हैं, अुसमें अब भी लिख सकते हैं।

दूसरे प्रस्तावको व्यावहारिक रूप देनेकी दृष्टिसे अेक समिति बना दी गअी है, जिसके अध्यक्ष और संयोजक श्री काकासाहब कालेलकर हैं। यह समिति देवनागरी लिपिमें यथासम्भव अैसे परिवर्तन और परिवर्द्धन करेगी, जो अुसे और भी आसानीके साथ लिखनेके लिअे आवश्यक होंगे और मौजूदा अक्षरोंसे जो शब्दध्वनि व्यक्त नहीं हो सकती, अुसे व्यक्त करनेके लिअे देवनागरी लिपिको और भी पूर्ण बनायेंगे।

यदि हमें अन्तर्प्रान्तीय संपर्क बढ़ाना है और यदि हिन्दीको प्रान्त-प्रान्तके बीच लिखा-पढ़ीका माध्यम बनाना है, तो अुसमें अिस प्रकारका परिवर्तन आवश्यक है। फिर अिधर गत २५ वर्षसे हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी अुद्देश्य-पूर्तिमें योग देनेवाले सज्जनोंका यह निश्चित कर्त्तव्य भी रहा है। अिस लिपि-सम्बन्धी प्रश्न पर चर्चा तो अक्सर हुआी, परन्तु गम्भीरतापूर्वक वह कभी हाथमें नहीं लिया गया। और फिर भी अिस प्रस्तावके पहले भागमें से दूसरा अपने आप फलित होता दीखता है। अिससे भारतकी दूसरी भाषाअें सीखना अत्यन्त सरल हो जाता है। बंगाली लिपिमें लिखी हुआी 'गीतांजलि' को सिवा बंगालियोंके और पढ़ेगा ही कौन? परन्तु यदि वह देवनागरी लिपिमें लिखी जाय, तो अुसे सभी लोग पढ़ सकते हैं। संस्कृतके तत्सम और तद्भव शब्द अुसमें बहुत अधिक हैं, जिन्हें दूसरे प्रान्तोंके लोग आसानीसे समझ सकते हैं। मेरे अिस कथनकी सत्यताको हरअेक जाँच सकता है। हमें अपने बालकोंको विभिन्न प्रान्तीय लिपियाँ सीखनेका व्यर्थ कष्ट नहीं देना चाहिये। यदि यह निर्दयता नहीं तो और क्या है कि देवनागरीके अतिरिक्त तामिल, तेलगू, मलयाली, कानड़ी, अुड़िया और बंगाली अिन छः लिपियोंको सीखनेमें दिमाग़ खपानेको कहा जाय? हाँ, यह जाननेके लिअे कि हमारे मुसलमान भाअी क्या कहते और लिखते हैं, हम अुर्दू लिपि सीख सकते हैं। जो अपने देशका या मनुष्यमात्रका प्रेमी है, अुसके सामने मैंने कोअी बहुत बड़ा प्रोग्राम नहीं रखा है। यदि आज कोअी प्रान्तीय भाषाअें सीखना चाहे और प्रान्तीय भाषा-भाषी हिन्दी पढ़ना चाहें, तो लिपियोंका यह अभेद्य प्रतिबन्ध ही अुनके मार्गमें कठिनाअी अुपस्थित करता है। काकासाहबकी यह समिति अेक ओर तो अिस सुधारके पक्षमें लोकमत तैयार करेगी और दूसरी ओर सक्रिय अुद्योग द्वारा अिसकी अिस महान अुपयोगिताको प्रत्यक्ष करके दिखायेगी कि जो लोग हिन्दी या प्रान्तीय भाषाओंको सीखना चाहते हैं, अुनका समय और अुनकी शक्ति बच सकती है। किसीको भूलकर

भी यह कल्पना नहीं करनी चाहिये कि यह लिपि-सुधार प्रान्तीय भाषाओंके महत्त्वको कम कर देगा। सच पूछिये तो वह अुनकी अुस प्रकार श्री-वृद्धि ही करेगा, जिस प्रकार अेक सामान्य लिपि स्वीकार कर लेनेके फल-स्वरूप *प्रान्तीय व्यवहार — विनिमय —* सरल हो जानेसे युरोपकी तमाम भाषाअें समृद्ध हो गअी हैं।

हरिजनसेवक, १०–५–'३५

२

['और भी गलतफहमियाँ' लेखसे]

जो अलग-अलग भाषाअें संस्कृतसे निकली हैं या जिनका अुसके साथ गहरा सम्बन्ध रहा है, पर जो जुदी-जुदी लिपियोंमें लिखी जाती हैं, अुनकी अेक ही लिपि होनी चाहिये और वह लिपि निःसन्देह देवनागरी ही है। अलग-अलग लिपियाँ अेक प्रान्तके लोगोंके लिअे दूसरे प्रान्तोंकी भाषाअें सीखनेमें अनावश्यक बाधाअें हैं।

युरोप कोअी अेक राष्ट्र नहीं है, फिर भी अुसने अेक सामान्य लिपि स्वीकार कर ली है। जब भारत अेक राष्ट्र होनेका दावा करता है, और है, तो फिर अुसकी लिपि अेक क्यों न हो? मैं जानता हूँ कि अेक ही भाषाके लिअे देवनागरी और अुर्दू दोनों लिपियोंको सहन कर लेनेकी मेरी बात असंगत है। किन्तु मेरी यह असंगति मेरी मूर्खता ही नहीं है। अिस समय हिन्दू-मुसलमानोंमें संघर्ष है। पढ़े-लिखे हिन्दुओं और मुसलमानोंके लिअे अेक-दूसरेकी तरफ अधिकसे अधिक आदर और सहिष्णुता दिखाना जरूरी और बुद्धिमानीका काम है, अिसीलिअे मेरी यह राय है कि लिपि चाहे देवनागरी रहे, चाहे अुर्दू। खुशकिस्मती यह है कि प्रान्त-प्रान्तके बीच अैसा कोअी संघर्ष नहीं है। अिसलिअे जिस सुधारसे *अनेक दिशाओंमें प्रान्तोंका गहरा मेल हो सकता है, अुसकी हिमायत करना* वांछनीय है। और यह भी नहीं भूल जाना चाहिये कि राष्ट्रका बहुजन समाज बिलकुल निरक्षर है। अुस पर भिन्न-भिन्न लिपियोंका

बोझ लादना, और वह भी महज़ झूठे मोह और दिमागी आलस्यके कारण, अपने हाथों अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारना होगा।

हरिजनसेवक, १५-८-'३६

४

## हिन्दी बनाम अुर्दू

हिन्दी-अुर्दूका यह सवाल बारहमासी बन गया है। यद्यपि अिसके बारेमें मैं अकसर अपने विचार प्रकट कर चुका हूँ, और अुन्हें फिरसे प्रकट करना पुनरावृत्ति ही होगा, फिर भी अिस बारेमें मैं जो कुछ मानता हूँ, अुसे बिना किसी दलीलके सीधे-सादे रूपमें रख देना ठीक होगा :

मेरा विश्वास है कि —

१. हिन्दी, हिन्दुस्तानी और अुर्दू शब्द अुस अेक ही भाषाके सूचक हैं, जिसे अुत्तर भारतमें हिन्दू-मुसलमान दोनों बोलते हैं, और जो देवनागरी या फ़ारसी लिपिमें लिखी जाती है।

२. अिस भाषाके लिअे 'अुर्दू' शब्द शुरू होनेसे पहले हिन्दू-मुसलमान दोनों अिसे 'हिन्दी' ही कहते थे।

३. 'हिन्दुस्तानी' शब्द भी बादमें (यह मैं नहीं जानता कि कबसे) अिसी भाषाके लिअे काममें लिया जाने लगा है।

४. हिन्दू-मुसलमान दोनोंको यह भाषा अुसी रूपमें बोलनेका प्रयत्न करना चाहिये, जिसमें अुत्तर भारतके ज्यादातर लोग अिसे समझते हैं।

५. अनेक हिन्दू और बहुतसे मुसलमान संस्कृत और फ़ारसी या अरबीके ही शब्दोंका व्यवहार करनेका आग्रह करेंगे। यह स्थिति हमें तब तक बरदाश्त करनी पड़ेगी, जब तक हमारे बीच अेक दूसरेके तअीं अविश्वास और अलगावका भाव बना हुआ है। परन्तु जो हिन्दू किसी

खास तरहके मुस्लिम विचारोंको जानना चाहेंगे, वे फ़ारसी लिपिमें लिखी हुअी अुर्दूका अध्ययन करेंगे; और अिसी तरह जो मुसलमान हिन्दुओंकी किसी खास बातका ज्ञान प्राप्त करना चाहेंगे, अुन्हें देवनागरी लिपिमें लिखी हुअी हिन्दीका अध्ययन करना होगा।

६. अन्तमें जाकर जब हमारे दिल घुल-मिल जायँगे, हम सब अपने-अपने प्रान्तके बजाय भारत पर गर्वका अनुभव करने लगेंगे और सब धर्मोंको अेक ही वृक्षके विभिन्न फलोंके रूपमें जानने और तदनुसार अुन पर अमल करने लगेंगे, तब हम प्रान्तीय भाषाओंको प्रान्तीय कामकाजके लिअे क़ायम रखते हुअे अेक ही सामान्य लिपिवाली अेक राष्ट्रभाषा पर पहुँच जायँगे।

७. किसी प्रान्त या जिले अथवा जाति पर अेक भाषा या हिन्दीके अेक रूपको लादनेका प्रयत्न करना देशके सर्वोत्तम हितकी दृष्टिसे घातक है।

८. राष्ट्रभाषाके सवाल पर विचार करते समय धार्मिक भेदभावोंका खयाल नहीं करना चाहिये।

९. रोमन लिपि न तो भारतकी राष्ट्रलिपि हो सकती है, और न होनी चाहिये। यह होड़ तो फ़ारसी और देवनागरीके बीच ही हो सकती है। और अिसके अपने मौलिक गुणोंको अलग रख दें, तो भी देवनागरी ही सारे भारतकी राष्ट्रलिपि होनी चाहिये; क्योंकि विविध प्रान्तोंमें प्रचलित ज्यादातर लिपियाँ मूलतः देवनागरीसे ही निकली हैं, और अिसलिअे अुनके लिअे अुसे सीखना ही सबसे ज्यादा आसान है। किन्तु अिसके साथ ही, मुसलमानों पर या दूसरे अैसे लोगों पर, जो अिससे अनजान हैं, अिसे जबरदस्ती लादनेका हमें किसी तरहका कोअी प्रयत्न न करना चाहिये।

१०. यदि अुर्दूको हम हिन्दीसे अलग मानें, तो मैं कहूँगा कि अिन्दौरमें जब मेरे कहने पर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनने अुपरोक्त धारा नं० १ में दी हुअी व्याख्याको स्वीकार कर लिया, और नागपुरमें मेरे कहने पर भारतीय साहित्य-परिषद्ने भी अुस व्याख्याको स्वीकार करके अन्तर्प्रान्तीय

व्यवहारकी सामान्य भाषाको 'हिन्दी या हिन्दुस्तानी ' कहा, तो अिस प्रकार मैंने अुर्दूकी सेवा ही की है; क्योंकि अिससे हिन्दू-मुसलमान दोनोंको सामान्य भाषाको समृद्ध बनानेके यत्नमें शामिल होने और प्रान्तीय भाषाओंके सर्वोत्तम विचारोंको अुस भाषामें लानेका पूरा-पूरा मौक़ा मिल गया है।

हरिजनसेवक, ३-७-'३७

५

# अखिल भारतीय साहित्य-परिषद्

१

[अिस परिषद्का ध्येय भारतके अलग-अलग प्रान्तोंके बीच आपसके सांस्कारिक और साहित्यिक सम्बन्ध बढ़ाना है। ये सम्बन्ध कुछ गिने-गिने किताब लिखनेवालों तक ही अपना असर डालनेवाले नहीं होंगे, बल्कि ज़रूरी यह है कि अिनका असर अलग-अलग प्रान्तोंकी देहाती जनता तक पहुँचे।

नागपुरमें परिषद्की पहली बैठकके सभापति-पदसे दिये गये लिखित हिन्दी भाषणसे।]

विद्वान लोग अेक-दूसरेके साहित्यका कुछ ज्ञान प्राप्त करें, अिसीसे हमें कोअी सन्तोष नहीं हो सकता। हमें तो देहाती साहित्यकी भी दरकार है और देहातियोंमें आधुनिक साहित्यके प्रचारकी भी। शरमकी बात है कि आज चैतन्यकी प्रसादी भारतवर्षके सभी भाषा-भाषियोंको अप्राप्य है। तिरुवेल्लुवरका नाम तक शायद हम सब नहीं जानते होंगे। अुत्तर भारतकी जनता तो अुस सन्तका नाम जानती ही नहीं। अुसने थोड़े शब्दोंमें जैसा ज्ञान दिया है, वैसा बहुत कम सन्त लोग दे सके हैं। अिस बारेमें अिस वक्त तो तुकारामका ही दूसरा नाम मेरे खयालमें आता है।

अगर हम सारे हिन्दुस्तानके साहित्यके विशाल क्षेत्रमें प्रवेश करें, तो क्या असकी कुछ सीमा-मर्यादा होनी चाहिये? मेरी रायमें अवश्य होनी चाहिये। मुझे पुस्तकोंकी संख्या बढ़ानेका मोह कभी नहीं रहा। मैं अिसे आवश्यक नहीं मानता कि प्रत्येक प्रान्तकी भाषामें लिखी और छपी प्रत्येक पुस्तकका परिचय दूसरी सब भाषाओंमें कराया जाय। अैसा प्रयत्न सम्भव भी हो, तो असे मैं हानिकर ही समझता हूँ। जो साहित्य अैक्यका, नीतिका, शौर्यादि गुणोंका और विज्ञानका पोषक है, असका प्रचार प्रत्येक प्रान्तमें होना आवश्यक और लाभदायक है।

आजकल शृंगारयुक्त अश्लील साहित्यकी बाढ़ सब प्रान्तोंमें आ रही है। कुछ लोग तो यहाँ तक कहते हैं कि अेक शृंगारको छोड़कर और कोओ रस है ही नहीं। शृंगार-रसको बढ़ानेके कारण अैसे सज्जन दूसरोंको 'त्यागी' कहकर अनकी अपेक्षा और अपहास करते हैं। जो सब चीज़ोंका त्याग कर बैठते हैं, वे भी रसका त्याग तो नहीं कर पाते। किसी न किसी प्रकारके रससे हम सब भरे हैं। दादाभाअीने देशके लिअे सब-कुछ छोड़ा था; फिर भी वे बड़े रसिक थे। देशसेवामें ही अुन्होंने अपना रस बना रखा था। अुसीमें अुन्हें प्रसन्नता मिलती थी। चैतन्यको रसहीन कहना रस ही को न जानना है। नरसिंह मेहताने अपनेको भोगी बताया है, यद्यपि वे गुजरातके भक्त-शिरोमणि थे। अगर आपको मेरी बात न अखरे, तो मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि मैं शृंगार-रसको तुच्छ रस समझता हूँ; और जब अुसमें अश्लीलता आती है, तब अुसे सर्वथा त्याज्य मानता हूँ। यदि मेरी चले तो मैं अिस संस्थामें अैसे रसको त्याज्य मनवा दूँ। अिसी तरह कौमी भेदोंको, धर्मान्धताको तथा प्रजामें अथवा व्यक्तियोंमें जो साहित्य वैमनस्यको बढ़ाता है, अुसका भी त्याग होना आवश्यक है।

यह कार्य कैसे किया जाय? मुंशीजी और कालेलकरने हमारा मार्ग अेक हद तक साफ़ कर रखा है। व्यापक साहित्यका प्रचार व्यापक भाषामें ही हो सकता है। अैसी भाषा अन्य भाषाओंकी अपेक्षा हिन्दी-

हिन्दुस्तानी ही है । हिन्दीको हिन्दुस्तानी कहनेका मतलब यह है कि अुस भाषामें फारसी मुहावरोंका त्याग न किया जाय ।

अंग्रेजी भाषा कभी सब प्रान्तोंके लिअे वाहन या माध्यम नहीं हो सकती । यदि सचमुच ही हम हिन्दुस्तानके साहित्यकी वृद्धि चाहते हैं, और भिन्न-भिन्न भाषाओंमें जो रत्न छिपे पड़े हैं, अुनका प्रचार भारत-वर्षके करोड़ों मनुष्योंमें करना चाहते हैं, तो यह सब हम हिन्दुस्तानीकी मारफत ही कर सकते हैं ।

हरिजन-सेवक, २७-५-'३६

## २

[भारतीय साहित्य-परिषद्को मद्रासवाली दूसरी बैठकके सभापति-पदसे दिये गये भाषणसे । ]

अिस परिषद्का अुद्देश्य यह है कि सब प्रान्तीय साहित्योंकी सारभूत बातें संग्रह करके हिन्दीमें अुन्हें अुपलब्ध किया जाय । अिसके लिअे मैं आपसे अेक प्रार्थना करूँगा। निःसन्देह हरअेक आदमीको अपनी मातृभाषा अच्छी तरह जानना चाहिये । और अिसके साथ ही हिन्दी द्वारा अन्य भाषाओंके महान साहित्यका भी अुसे ज्ञान होना चाहिये । किन्तु साथ ही, परिषद्का यह भी अुद्देश्य है कि वह हम लोगोंमें अन्य प्रान्तोंकी भाषाअें जाननेकी अिच्छाको प्रोत्साहन दे। जैसे, गुजराती लोग तामिल जानें, बंगाली गुजराती जानें, और दूसरे प्रान्तोंके लोग भी अैसा ही करें । मैं अनुभवसे आपसे कहता हूँ कि दूसरी देशी भाषा सीख लेना कोअी मुश्किल बात नहीं है । किन्तु अिसके साथ अेक सर्व-सामान्य लिपिका होना आवश्यक है । तामिलनाड़में अैसा करना कुछ मुश्किल नहीं है । क्योंकि अिस सीधी-सादी बात पर ध्यान दीजिये कि ९० फीसदीसे भी ज्यादा हमारे देशवासी अशिक्षित हैं । हमें नये सिरेसे अुनकी शिक्षा शुरू करनी होगी। तब सामान्य लिपि द्वारा ही हम अुन्हें शिक्षित बनानेकी शुरुआत क्यों न करें ? युरोपमें वहाँवालोंने सामान्य

लिपिका प्रयोग किया और वह बिलकुल सफल रहा। कुछ लोग तो यहाँ तक कहते हैं कि हम भी युरोपकी रोमन लिपिको ही ग्रहण कर लें। किन्तु फिर वाद-विवादके बाद यह विचार बन चुका है कि हमारी सामान्य लिपि देवनागरी ही हो सकती है और कोअी नहीं। अुर्दूको अुसकी प्रतिस्पर्द्धी बताया जाता है, किन्तु मैं समझता हूँ कि अुर्दू या रोमन किसीमें भी वैसी संपूर्णता और ध्वन्यात्मक शक्ति नहीं है, जैसी देवनागरीमें है। याद रखिये कि आपकी मातृभाषाओंके खिलाफ मैं कुछ नहीं कह रहा हूँ। तामिल, तेलगू, मलयालम, कन्नड़ तो जरूर रहनी चाहियें और रहेंगी, किन्तु अिन प्रदेशोंके अशिक्षितोंको हम देवनागरी लिपिके द्वारा अिन भाषाओंके साहित्यकी शिक्षा क्यों न दें? हम जो राष्ट्रीय अेकता प्राप्त करना चाहते हैं, अुसकी खातिर देवनागरीको सामान्य लिपि स्वीकार करना आवश्यक है। अिसमें कोअी कठिनाअी नहीं है। बात सिर्फ यह है कि हम अपनी प्रान्तीयता और संकीर्णता छोड़ दें। तामिल और अुर्दू लिपियाँ मुझे पसन्द न हों, सो बात नहीं है। मैं अिन दोनोंको जानता हूँ। लेकिन मातृभूमिकी सेवाने, जिसके लिअे मैंने अपना सारा जीवन अर्पण कर दिया है और जिसके बिना मेरा जीवन निरर्थक होगा, मुझे सिखाया है कि हमारे देशके लोगों पर जो अनावश्यक बोझ हैं, अुनसे अुन्हें मुक्त करनेका हमें प्रयत्न करना चाहिये। तमाम लिपियोंको जाननेका बोझ अनावश्यक है और अुससे आसानीसे बचा जा सकता है। अिसलिअे सभी प्रान्तोंके साहित्यिकोंसे मैं प्रार्थना करूँगा कि वे अिस सम्बन्धके अपने भेदभावोंको भुलाकर अिस अत्यन्त आवश्यक विषय पर अेकमत हो जायँ। तभी भारतीय साहित्य-परिषद् अपने अुद्देश्यमें सफल हो सकती है।

× × ×

मैं साहित्यके लिअे साहित्यका रसिक नहीं हूँ। यह जरूरी नहीं कि बौद्धिक विकासके जो अनेक साधन हैं, अुनमें साक्षरताको भी अेक साधन माना ही जाय। हमारे प्राचीन कालमें अैसे-अैसे बुद्धिशाली महा-

पुरुष हुअे हैं, जो बिलकुल अशिक्षित थे। यही कारण है कि हमने अपनेको अैसे ही साहित्य तक सीमित रखा है, जो अधिकसे अधिक स्पष्ट और हितकर हो। जब तक हमें आपका हार्दिक सहयोग नहीं मिलता, और आप अपनी-अपनी भाषामें अुपयुक्त सत्साहित्य चुननेमें लिअे तैयार नहीं होते, तब तक हमें अिसमें सफलता कैसे प्राप्त हो सकती है?

हरिजनसेवक, ३-४-'३७

# ६

# कांग्रेस और राष्ट्रभाषा

[हिन्दी साहित्य-सम्मेलनके मद्रासवाले अधिवेशनमें अिस आशयका अेक सिफ़ारिशी प्रस्ताव* पास किया गया था कि अखिल भारत राष्ट्रीय कांग्रेसको अपना सारा काम हिन्दी-हिन्दुस्तानीमें ही करना चाहिये। अिस प्रस्ताव पर गांधीजीने नीचे लिखा भाषण किया था।]

हिन्दीको सामान्य भाषा बनानेके पक्षमें हमारे प्रस्ताव पास करते रहने पर भी यदि कांग्रेसका काम अिसी तरह होता रहा, तो हमारा काम

* वह प्रस्ताव अिस प्रकार था —

"यह सम्मेलन हिन्दुस्तानकी राष्ट्रीय महासभाकी कार्य-कारिणी समितिसे प्रार्थना करता है कि अबसे आगे महासभा, महासमिति, और कार्य-कारिणी समितिके काम-काजमें अंग्रेज़ीका अुपयोग न करके अुसके स्थान पर हिन्दी-हिन्दुस्तानीका ही अुपयोग करनेका प्रस्ताव पास किया जाय; और जो लोग हिन्दी-हिन्दुस्तानीमें अपने भाव पूरी तरह प्रकट न कर सकें, अुन्हींके लिअे अंग्रेज़ीमें बोलनेकी छूट रखी जाय। यदि कोअी सदस्य हिन्दी-हिन्दुस्तानीमें न बोल सकता हो, और वह अपनी प्रान्तीय भाषामें बोलना चाहे, तो अुसे वैसा करनेकी छूट होनी चाहिये और हिन्दी-हिन्दुस्तानीमें अुसके भाषणका अनुवाद करनेकी व्यवस्था की जानी चाहिये।

खेदजनक रूपमें ढीला पड़ जायगा । अिस प्रस्तावमें कांग्रेससे प्रार्थना की गअी है कि वह अन्तर्प्रान्तीय काम-काजकी भाषाके रूपमें अंग्रेजीका व्यवहार छोड़ दे । अुसमें कहा गया है कि अंग्रेजीको प्रान्तीय भाषाओंका या हिन्दीका स्थान नहीं देना चाहिये । यदि अंग्रेजीने यहाँके लोगोंकी भाषाओंको निकाल न दिया होता, तो प्रान्तीय भाषाअें आज आश्चर्यजनक रूपमें समृद्ध होतीं । यदि अिंग्लैण्ड फ्रेन्च भाषाको अपने राष्ट्रीय काम-काजकी भाषा मान लेता, तो आज हमें अंग्रेजीका साहित्य अितना समृद्ध न मिलता । नॉर्मन विजयके बाद वहाँ फ्रेन्च भाषाका ही जोर था, किन्तु अुसके बाद लोकप्रवाह 'विशुद्ध अंग्रेजी' के पक्षमें हो गया । अंग्रेजी साहित्यको आज हम जिस महान रूपमें देखते हैं, वह अुसीका फल है । याकुब हुसेन साहबने जो कहा वह बिलकुल सही है । मुसलमानोंके संपर्कका हमारी संस्कृति और सभ्यता पर बहुत ज्यादा असर पड़ा है । अितना ज्यादा कि स्वर्गीय पं० अयोध्यानाथ जैसे लोग भी हमारे यहाँ हुअे हैं, जो फारसी और अरबीके बहुत बड़े आलिम थे । अुन्होंने अरबी और फ़ारसीके अध्ययनमें जो समय लगाया, वह सब समय अपनी मातृभाषाको दिया होता, तो अुनकी मातृभाषाकी कितनी अुन्नति हो जाती ? अिसके बाद अंग्रेजीने वह अस्वाभाविक स्थिति प्राप्त कर ली, जिस पर वह अभी तक आसीन है। विश्वविद्यालयके अध्यापक अंग्रेजीमें धाराप्रवाह बोल सकते हैं, किन्तु अपनी मातृभाषामें अपने विचारोंको प्रकट नहीं कर सकते । सर चन्द्रशेखर रमणकी सारी खोजें अंग्रेजीमें ही हैं । जो लोग अंग्रेजी नहीं जानते, अुनके लिअे वे मुहरबन्द पुस्तककी तरह हैं । किन्तु रूसको देखिये । रूसवालोंने राज्यक्रान्तिसे भी पहले यह निश्चय कर लिया था कि वे अपनी पाठ्य-पुस्तकें (वैज्ञानिक भी) रूसी भाषामें लिखवायेंगे । दरअसल अिसीसे लेनिनके लिअे राज्यक्रान्तिका रास्ता तैयार हुआ । जब तक कांग्रेस यह

"यदि किसी सज्जनको किसी मौके पर सभासदोंके अमुक वर्गको अपनी बात समझानेके लिअे अंग्रेजीमें बोलनेकी ज़रूरत मालूम हो, तो अुन्हें सभापतिकी अनुमतिसे अंग्रेजीमें बोलनेकी छूट होनी चाहिये ।"

निश्चय न कर ले कि अुसका सारा काम-काज हिन्दीमें, और अुसकी प्रान्तीय संस्थाओंका प्रान्तीय भाषाओंमें ही होगा, तब तक वास्तविक रूपमें हम जन-संपर्क स्थापित नहीं कर सकते ।

* * *

यह बात नहीं कि भाषाके पीछे मैं दीवाना हो गया हूँ । न अिसका यह मतलब ही है कि यदि भाषाके मोल पर स्वराज्य मिलता हो, तो मैं अुसे लेनेसे अिनकार कर दूँगा । किन्तु जैसा कि मैं कहता रहा हूँ, सत्य और अहिंसाकी बलि देनेसे मिलनेवाला स्वराज्य मैं हरगिज़ न लूँगा । फिर भी, मैं भाषा पर अितना जोर अिसीलिअे देता हूँ कि राष्ट्रीय अेकता प्राप्त करनेका यह अेक बहुत जबरदस्त साधन है और जितना दृढ़ अिसका आधार होगा, अुतनी ही प्रशस्त हमारी अेकता होगी ।

मेरी अिस बातसे आप कोअी भयभीत न हों कि हिन्दी सीखनेवाले हरअेक व्यक्तिको अपनी मातृभाषाके अलावा कोअी अेक प्रान्तीय भाषा भी सीखनी चाहिये । भाषाअें सीखना कोअी मुश्किल काम नहीं है । मैक्समूलर १४ भाषाअें जानता था; और मैं अेक अैसी जर्मन लड़कीको जानता हूँ, जो ५ साल पहले जब यहाँ आयी थी, तब ११ भाषाअें जानती थी, और अब २–३ भारतीय भाषाअें भी जानती है । किन्तु आपने तो अपने मनमें अेक हौआ-सा बैठा लिया है, और किसी तरह यह महसूस करने लगे हैं कि आप हिन्दीमें अपने भाव प्रकट नहीं कर सकते । यह हमारी मानसिक काहिली ही है, जिसके कारण कांग्रेस-विधानमें १२ बरसोंसे हिन्दुस्तानीको मंजूर कर लेने पर भी हम अिस दिशामें कोअी प्रगति नहीं कर पाये हैं ।

याकुब हुसेन साहबने मुझसे पूछा है कि मैं सामान्य भाषाके रूपमें सीधे-सादे 'हिन्दुस्तानी' शब्द पर संतोष न करके 'हिन्दी-हिन्दुस्तानी' पर क्यों अितना जोर देता हूँ ? अिसके लिअे मुझे आपको सब बातोंकी तहमें ले जाना होगा । सन् १९१८ में मैं हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका सभापति हुआ था, तभी मैंने हिन्दी-भाषी जगतको सुझाया था कि वह हिन्दीकी अपनी व्याख्याको

अितना प्रशस्त बना ले कि अुसमें अुर्दूका भी समावेश हो जाय। सन् १९३५ में जब मैं दुबारा सम्मेलनका सभापति बना, तो मैंने हिन्दी शब्दकी यह व्याख्या करायी कि हिन्दी वह भाषा है, जिसे हिन्दू-मुसलमान दोनों बोल सकें और जो देवनागरी या अुर्दू लिपिमें लिखी जाय। अैसा करनेमें मेरा अुद्देश्य यह था कि मैं हिन्दीमें मौलाना शिबलीकी धाराप्रवाह अुर्दू और बाबू श्यामसुन्दरदासकी धाराप्रवाह हिन्दीको शामिल कर दूँ। 'हिन्दी' की जगह यह 'हिन्दी-हिन्दुस्तानी' नाम मेरी ही तजवीज़से स्वीकार किया गया था। अब्दुल हक़ साहबने वहाँ जोरोंसे मेरा विरोध किया। मैं अुनका सुझाव मंज़ूर न कर सका। जो शब्द हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका था, और जिसकी अिस प्रकारकी व्याख्या करनेके लिअे मैंने सम्मेलनवालोंको मना लिया था कि अुसमें अुर्दूको भी शामिल कर लिया जाय, अुस हिन्दी शब्दको मैं छोड़ देता, तो मैं खुद अपने तअीं और सम्मेलनके प्रति भी हिंसा करनेका दोषी होता। यहाँ हमें यह याद रखना चाहिये कि यह 'हिन्दी' शब्द हिन्दुओंका गढ़ा हुआ नहीं है, यह तो अिस देशमें मुसलमानोंके आनेके बाद अुस भाषाको बतलानेके लिअे बनाया गया, जिसे अुत्तर हिन्दुस्तानके हिन्दू बोलते और लिखते-पढ़ते थे। अनेक नामी-गरामी मुसलमान लेखकोंने अपनी ज़बानको 'हिन्दी' या 'हिन्दवी' कहा है, और अब जब कि हिन्दीके अन्दर अुन विभिन्न रूपोंको शामिल कर लिया गया है, जिन्हें हिन्दू और मुसलमान दोनों बोलते और लिखते हैं, तब यह महज़ शब्दोंका झगड़ा कैसा?

फिर अेक दूसरी बात भी ध्यानमें रखनी है। जहाँ तक दक्षिण भारतकी भाषाओंका सम्बन्ध है, बहुत अधिक संस्कृत शब्दोंसे युक्त हिन्दी ही अेक अैसी भाषा है, जो दक्षिणके लोगोंको अपील कर सकती है; क्योंकि कुछ संस्कृत शब्दों और संस्कृत ध्वनिसे तो वे पहलेसे ही परिचित होते हैं। जब ये दोनों — हिन्दी और हिन्दुस्तानी या अुर्दू — घुल-मिल जायँगी, और जब दर असल सारे हिन्दुस्तानकी अेक भाषा बन जायगी, और प्रान्तीय शब्दोंके दाखिल होनेसे वह प्रतिदिन अुन्नति करती

जायगी, तब हमारा शब्द-भण्डार अंग्रेजी शब्द-कोशसे भी अधिक समृद्ध बन जायगा। मैं आशा करता हूँ कि अब आप समझ गये होंगे कि 'हिन्दी-हिन्दुस्तानी' के लिअे मेरा अितना आग्रह क्यों है।

अिसके बाद मैं अैसे लोगोंको छोटीसी सूचना देना चाहता हूँ, जो कांग्रेसमें सिर्फ हिन्दी-हिन्दुस्तानीका प्रयोग शुरू करनेसे डरते हैं। आप कोअी हिन्दी दैनिक पत्र या अच्छी पुस्तक खरीद लीजिये, रोज पाँच मिनटके लिअे तो भी अुसमें से नियमित कोअी भाग अूँचेसे पढ़िये, प्रसिद्ध हिन्दी लेखों और भाषणोंमें से कुछ हिस्से चुन लीजिये और अुन्हें शुद्ध अुच्चारणकी दृष्टिसे अकेले बैठकर पढ़ जाअिये और रोज थोड़े नये हिन्दी शब्द सीखनेका नियम बना लीजिये। अितना करेंगे तो मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि अितने नियमित नित्यपाठसे आप छः महीनेमें, स्मरणशक्ति पर ज्यादा भार डाले बिना, हिन्दी-हिन्दुस्तानीमें अच्छी तरह अपने विचार प्रकट करने लग जायँगे।

हरिजनसेवक, १८–४–'३७

७

# हिन्दी प्रचार और चारित्र्य

[ वर्धामें हिन्दी-प्रचारकोंके अध्यापन-मन्दिरका शुद्घाटन करते समय दिये गये भाषणसे । ]

राजेन्द्रबाबूने यह कहकर कि प्रचारकोंको चारित्र्यवान होना चाहिये, मेरा काम बहुत हलका कर दिया है। यह कहनेकी जरूरत नहीं कि जो प्रचारक साहित्यिक योग्यता नहीं रखते, अुनसे यह काम नहीं हो सकेगा । परन्तु यह ध्यानमें रखना आवश्यक है कि जिनमें चारित्रिक योग्यताका अभाव होगा, वे किसी कामके नहीं ।

अिन्दौरके हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके अधिवेशनमें हिन्दीकी जो व्याख्या की गअी थी — अर्थात् वह भाषा जिसे अुत्तर भारतके हिन्दू और मुसलमान बोलते हैं और जो देवनागरी और फ़ारसी दोनों ही लिपियोंमें लिखी जाती है — अुस हिन्दी पर अुनका अच्छा अधिकार होना चाहिये । अिस भाषा पर आधिपत्य प्राप्त करनेका मतलब यही नहीं है कि जनता जिस आसान हिन्दी-हिन्दुस्तानीको बोलती है, अुस पर हम प्रभुत्व प्राप्त कर लें, बल्कि संस्कृत शब्दोंसे पूर्ण अूँची परिष्कृत हिन्दी तथा फ़ारसी और अरबी शब्दोंसे भरी हुअी अुर्दू भाषा पर भी हम कमाल हासिल कर लें । अिनके ज्ञानके बगैर हमारा भाषाका अधिकार अधूरा ही रहेगा; जिस तरह चॉसर, स्विफ्ट और जॉन्सनकी अंग्रेज़ीके ज्ञानके बिना या वाल्मीकि और कालिदासकी साहित्यिक संस्कृतसे अपरिचित रहकर कोअी यह दावा नहीं कर सकता कि अंग्रेज़ी या संस्कृत पर अुसका पूरा-पूरा अधिकार है ।

मैं अुनके देवनागरी या फ़ारसी लिपिके अथवा हिन्दी व्याकरणके अज्ञानको बरदाश्त कर लूँगा, किन्तु अुनके चारित्र्यकी कमी को तो मैं अेक क्षणके लिअे भी बरदाश्त नहीं कर सकता । हमें यहाँ अैसे

आदमियोंकी ज़रूरत नहीं है। और यदि अिन अुम्मीदवारोंमें यहाँ कोअी अैसा व्यक्ति हो, जो अिस कसौटी पर खरा न अुतर सकता हो, तो अुसे अभी चले जाना चाहिये। जिस कामके लिअे वे बुलाये गये हैं, वह कोअी आसान काम नहीं है। अैसे अंग्रेज़ी जाननेवाले लोगोंका भी देशमें अेक मजबूत दल है, जो यह कहते हैं कि अेक अंग्रेज़ी ही भारतकी राष्ट्रभाषा हो सकती है। काशी और प्रयागके पण्डित तो संस्कृतमयी हिन्दीको चाहते हैं, और दिल्ली और लखनअूके आलिम फ़ारसी शब्दोंसे लदी हुअी अुर्दूको। अेक तीसरा दल भी है, जिससे हमें लड़ना पड़ता है। यह दल हमेशा यह आवाज़ अुठाता रहता है कि 'प्रान्तीय भाषाअें खतरेमें हैं'।

कोरे पांडित्यसे अिन विरोधी शक्तियोंका हम सफलतापूर्वक मुकाबला नहीं कर सकते। यह काम विद्वानोंका नहीं है, यह तो 'फ़क़ीरों' का काम है — जिनका चारित्र्य बिलकुल शुद्ध हो और जो स्वार्थ-साधनसे परे हों। यदि लोग आपको न चाहें और जिन लोगोंके बीच जाकर आप काम कर रहे हों, वे आप पर हाथ तक चला बैठें, तो भी मैं अुन्हें दोष नहीं दूँगा। अुन्होंने अहिंसाका कोअी व्रत तो लिया नहीं है।

अिसी तरह धनसे भी हमको ज्यादा मदद नहीं मिलेगी। अकेले धनसे क्या हो सकता है? रुपयेसे भी अधिक हम चारित्र्यको प्रधानता देते हैं। आज सुबह मैं आप लोगोंसे यही कहने आया हूँ कि आप चरित्रवान बनकर अिस काममें मदद दें।

हरिजनसेवक, १७–७–'३७

---

# सूची